

प्राक्कथन

पावनता एवं प्रोज्ज्वलता के विशाल तथा आदर्श तपोवनो में विहार करने वाली, स्वर्गलोक और मर्त्यलोक को परस्पर अनुस्यूत करने वाली, नाना भाव-भगियो से छलाछल भरी हुई, दिव्य-संगीतमयी तथा ससार की प्रत्येक वस्तु के साथ अठखेलियाँ करने वाली महाकवि भास की प्रतिभा की तुलना इस जीवलोक में दुर्लभ ही है ।

सच बात तो यह है कि महाकवि की प्रतिभा, सब प्राणियों के साथ, चाहे वे ससार में अवहेलना के पात्र समझे गए हों अथवा स्पृहणीय, एक-सा व्यवहार करती है । वह न तो किसी को साक्षात् भगवान् ही समझती है और न किसी को सर्वथा जघन्य, उपेक्षणीय एवं घृणा का भाजन ही ।

हम पहले कह चुके हैं कि महाकवि की प्रतिभा प्रत्येक वस्तु के साथ अठखेलियाँ करती है, उसके साथ दौड़ लगाती है, ऊपर उछलती है, नीचे कूदती है और सर्वथा तन्मय एवं तद्रूप हो जाती है ।

सहृदय वाचक वृन्द ! आप कहेंगे कि यह तो भास पर इस प्रकार

सामने अग्नि में धाँय धाँय करके जल रही है और उसका जलता हुआ पहिया सूर्य के समान जगमगा रहा है ।

वायु-विकंपित चाँस थे, जलते छू मख-ज्वाल ।

जाते जन के भाग्य ज्यों, नीचे औ उत्ताल ॥

यहाँ पर, जरा ध्यान से देखिएगा कि—कवि की प्रतिभा-बाला, वायु से झूटे दिए गए बासों के झूले पर, किस प्रकार जगमग करती झूल रही है ! और देखिए,

‘स्रक्, अरणी, कुश-जाल का, करे अनल उपभोग ।

वसन, विभूषण का यथा, व्यसनी, निर्धन लोग ॥’

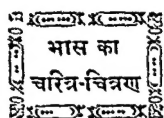
यहाँ मुनिवर भास की प्रतिभा-श्रुति कितना सुंदर एवं कल्याण-मय उपदेश दे रही है ! अनल स्रक्, अरणी आदि यज्ञ-सबधी वस्तुओं का इस प्रकार उपभोग कर रहा है, जैसे कि व्यसनी मनुष्य, निर्धन होकर, वस्त्र और आभूषण बेच बेचकर अपना पेट भरने लगता है । क्या संसार में, किसी भी कवि की प्रतिभा-नटी ने, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करके, उनकी भक्ति के प्रसाद-स्वरूप उन्हें इतना सुंदर उपदेश दिया है ? प्राचीन काल में भारतीय रंग-मंच का क्या वास्तविक उद्देश्य था—इसका आभास हमें महाकवि की इस प्रकार की अनेक सूक्तियों से मिलता है । नाट्यशास्त्र में लिखा है कि —

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।

ना ना भा वो प सं प न्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ॥

लो क वृ त्ता नु क र णं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।

उ त्त मा ध म म ध्या नां नराणां कर्मसंश्रयम् ॥



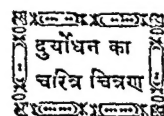
भास का

चरित्र-चित्रण

अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में तो भास ने कमाल ही कर दिया है। सांसारिक दृष्टि-कोण से उनका दृष्टि-कोण सर्वथा विभिन्न है। हम कह चुके हैं कि—वे न तो किसी को संसार में सर्वथा उपेक्षणीय एवं तिरस्कार का भाजन ही समझते हैं और ना ही किसी को साक्षात् भगवान् ही। 'प्रतिभा' नाटक में वे जहाँ राम की स्वर्गीयता का वर्णन करते हैं, वहाँ मर्त्य-लोक-संबंधी विचारों से भी उन्हें सर्वथा अछूता नहीं रखते। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि राम के चरित्र-चित्रण में कुछ त्रुटि है। राम का चरित्र आदर्श-रूप एवं सर्वथा अनुकरणीय है। किंतु, किसी भी प्राणी को सर्वथा भगवान्-रूप बताना कर सर्व साधारण के चरित्र को उतना उन्नत नहीं बनाया जा सकता, जितना कि उनके-जैसे पुरुष की विशेषताओं को चित्रित करके उन्हें सत्य पर चलाया जा सकता है।

अपने इस निराले दृष्टि-कोण के कारण ही भास ने कैकेयी आदि के चरित्र को भी सर्वथा गृहणीय एवं उपेक्षणीय नहीं रहने दिया है। अपनी प्रतिभा के बल पर उसमें भी उन्होंने स्पृहणीयता उत्पन्न कर दी है। वस, भास के और अन्य कवियों के दृष्टि-कोण में यही एक महान अंतर है।

प्रस्तुत नाटक 'पंचरात्र' में भी महाकवि ने महाभारत के प्रतिकूल दुर्योधन तथा कर्णादि के चरित्र को भी स्पृहणीय एवं अनुकरणीय बना दिया है।



दुर्योधन का

चरित्र चित्रण

कवि ने, दुर्योधन के जीवन-रूपी चित्र-पट में, अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से किस चातुर्य से रंग भरकर, उसमें आकर्षण उत्पन्न कर दिया है, यह

‘दुर्योधन—सारथि ! कहो, कहो । अभिमन्यु को कौन हर ले गया ? मैं ही उसे छुड़ाऊँगा । क्योंकि,

कुल-रिपुता इसके पितरों से मैंने ठानी ,
दोष मुझे ही इससे देंगे सब जन ज्ञानी ।
किंतु प्रथम वह मम सुत, पीछे पांडवगण का ,
कुल-विरोध मैं क्या कसूर है बालकजन का ॥’

कैसे पुनीत एवं स्वर्गीय उद्धार है ! भास ! तुम धन्य हो, मुनि हो, आदर्श के पुतले हो । तुम्हारा प्रत्येक अक्षर ससार के कल्याण के लिए, दिव्य आदर्श की निर्मरिणी बहा रहा है । अहो ! कविता-कामिनी की अलौकिक मुसकान तुम्हारे साथ ही विलुप्त होगई !

दुर्योधन के गुट में शामिल होने के कारण महा-
कर्ण का भारत में कर्ण का चरित्र भी गर्हणीय ही-सा हो गया है । भास ने इनके चरित्र में भी स्पष्टदृष्टीयता उत्पन्न करके एक प्रकार का आदर्श उपरिथित किया है ।

द्रोणाचार्य के, दक्षिणा में पांडवों का आधा राज्य देने की भिक्षा माँगने पर, जब दुर्योधन शकुनि के साथ सलाह कर रहा था तो वह कर्ण को चुप देखकर कहता है—‘मित्र अंगराज ! आपने अभी कुछ नहीं कहा !’ देखिए, कर्ण इसका क्या उत्तर देते हैं:—

‘कर्ण—मैं अब क्या कहूँगा !

श्रीराम ने जिसका प्रथम अनुभव तथा पालन किया,
प्रतिषेध उस सौभ्रात्र का करता नहीं मेरा दिया ।

‘राज्याद देना चाहिए अधमा न आप प्रमाण हैं,
समर स्थली में यम सहायक ये हमारे प्राण हैं ॥’

कितना सचित्त उद्यम है किन्तु कितना सहृदयता पूर्ण !

और छात्रिण अभिमन्यु के बड़ी होशान पर कण दुर्योधन से क्या
कहत है—गांधारी पुत्र !

स्व जन भीति से, पुत्र-प्रेम से मत तुम ठानो—
उमे लुटाने की, निज दिन रण बंदी आनो ।
रक्षित यह अभिमन्यु नहीं हा, हमसे अपना,
घारो चलकल, त्याग धनुष का अथ तो सपना ॥’

कैसी मधुर एवं तात्पर्य भासना है ! पवित्र निरङ्कुल प्रेममय एवं
कर्तव्य-परायण हृदय का कैसा विद्वज्ज रसातल है !

महाभारत का सब से अधन्य धृष्टित एवं उपद्रव्याय मममा
जान वाला अब कवल एक ही पात्र रह जाता है और वह है शकुनि ।
यद्यपि वास्तविकता को परस्पर वाल कवि न उसके चरित्र में स्वरूपी
यता एवं अनुकरणीयता उत्पन्न नहीं की और उल्लग उमे अपराधी ही
टहराया है किन्तु फिर भी—समर में कोई प्राणी निरा घुरा हा होता है
और वह कभी भी सहृदय नहीं हो सकता—हम झाक-बाग को के
नहीं सह सक । अभिमन्यु के बड़ी हा जान पर, दम्निण मुनि जी
शकुनि के मुँह से क्या कहलात है —

‘अपुन-सुन—यह जान विराट नरेभर तज दे !
रण-बंदी उसे—याद कर दामोदर तज दे !
तज दे कुपित हली से अधया मय म्या के !
यली भीम या लआप, कर अरि-वध जा के !’

यहाँ पर शकुनि के गुणज्ञ हृदय का स्पष्ट आभास मिलता है। यद्यपि महाकवि ने भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, अभिमन्यु, विराट तथा उत्तर आदि सभी नाटकीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में अद्भुत चातुर्य का परिचय दिया है, किंतु इनके विषय में विस्तार के भय से हमें यहाँ कुछ नहीं कहना। फिर भी अभिमन्यु और उत्तर इन दो राजकुमारों के विषय में हमसे बिना कुछ कहे नहीं रहा जाता।

सहृदयगण ! यदि आप भास की तूलिका की
 अभिमन्यु का स्वच्छ एव मधुर छवि का साक्षात् दर्शन किया
 चरित्र-चित्रण चाहते हैं, तो आप अभिमन्यु के चरित्र को पढ़ें।
 देखिए, महाकवि अथवा चतुर चित्तेरे ने, उसके चरित्र को चित्रित करने में कैसे छविमय रंग भरे हैं। बड़ी अभिमन्यु के साथ छत्र-वेपी भीम और अर्जुन यातचीत कर रहे हैं। वे दोनों उसे उसका नाम लेकर पुकारते हैं और उसकी माता का कुशल-समाचार पूछते हैं। इस पर अभिमन्यु अत्यंत क्रुद्ध होता है, और कहता है —

‘अभिमन्यु—क्यों, क्यों ! माता के विषय में पूछते हो ?

धर्मराज क्या भीम तुम, अथवा अर्जुन तात।

पितृ-सम स्वर में पूछते, जो मुझसे खी-वात ॥’

बृहत्तला-वेप-धारी अर्जुन फिर देवकी-पुत्र कृष्ण का मंगल-समाचार पूछ बैठते हैं। अभिमन्यु इसका ‘क्यों, उनका भी नाम लेते हो ? जी, हाँ ! जी, हाँ ! कुशलपूर्वक है—आपका बधु !’—इस प्रकार व्यंगपूर्वक उत्तर देता है। इस पर भीम और अर्जुन दोनों हँस देते हैं। अभिमन्यु इस हँसी को सहन न करके कहता है —

‘अभिमन्यु—आप लोग, क्यों अब मेरी हँसी उदा रहे हैं ?

सुहृन्नला—क्या कुछ भी कारण नहीं ?

पाथ जनक, मातुल तथा मधुसूधन सुकुमार !

अस्त्र निपुण क्या युवक की समुचित रण में द्वार ? ॥'

यह सुनकर अभिमन्यु भभक उठता है और निम्न लिखित उत्तर देता है —

'अभिमन्यु—बद करो—स्वयं की शकवाद !

निज स्तुति करना है नहीं, कुल में मम सौजन्य ।

शत्रु-गण में शत्रु-गण लखो, नाम न होगा अ-य ॥'

कितनी अप्रव चीरता है ! कितना गौरव है ! शत्रु का ज्वालासुधी किस प्रकार पूरा चाहता है ! यमा प्रतीत होता है कि साधना मूर्ति मान् पराक्रम सामने घुट रहा हो ! विश्व की संपूर्ण शक्ति को एक स्थान पर केंद्रित कर दिया गया हो ! अथवा पाँचों महाभूतों के गुणों को लेकर विधाता न अकस्मात् एक अनासी, गारवमयी, तरलतामयी, दीप्तिमयी, स्फूर्तिमयी एवं छायावमयी प्रतिमा में प्राणों का संचार कर दिया हो ! अथवा सारयुक्त एवं वीरतामय मधुर अभिमान को दह प्रदान कर दिया हो !

अभिमन्यु कैरी की दरवा में राजा विराट के आगे उपस्थित होता है । किन्तु यह राजा का अभिवादन नहीं करता । उसके इस व्यवहार से उत्पन्न होकर विराट सहसा कह उठत है कि—भहो ! यह पत्रिव-कुमार सचमुच बड़ा घमही है ! अथवा मैं इसका गर्व को उड़ाऊँगा । अथवा तो हमने किसने पकड़ा है ! भीमसन एकदम खोज उठत है कि—महाराज ! मैं न । शत्रु हीन न—यह कहा —अभिमन्यु तबक कर उत्तर देता है । इस पर राजा अभिमन्यु के प्रति कुछ करपा

का-सा भाव प्रकट करते हैं । किंतु, उसे यह सख्त नहीं हो सका और वह उठता है—‘यदि मुझ पर अनुग्रह ही करना है, तो—

वंदी-समुचित वेड़ी मेरे
चरण-युगल में तुम डालो ।
ले जाएगा भीम भुजा से
हे भुज से हरने वालो !’

कितनी निरूपम निर्भीकता है ! भय किस चिड़िया का नाम है—यह उसे पता ही नहीं ! दैन्य क्या वस्तु है—इसका उसे तनिक भी ज्ञान नहीं । शत्रु के आगे सिर झुकाना उस बालक ने सीखा ही नहीं, और सिर झुकाता भी कैसे !—‘कुल-युग-तेज अनन्य’ जो ठहरा ! भगवान् करे, भारत के वर्तमान बालक भी ऐसे ही बनें !

उत्तर का चरित्र-चित्रण महाकवि ने किस खूबी से किया है, यह देखते ही बनता है । मनुष्य का स्वभाव है कि जो काम वह स्वयं नहीं कर सकता, यदि कोई दूसरा आदमी उसके नाम पर वह काम कर दे और उसके कारण जो उसे बढ़ाई मिले, तो वह फूला नहीं समाता । और अपना उत्कर्ष दिखाने के लिए वह उस रहस्य को केवल छिपाता ही नहीं, अपितु जबतक भी उससे लाभ उठा सके तबतक पूरा पूरा लाभ उठाने के अनेक उपाय करता रहता है । वह ढीठ एवं निर्लज्ज दूसरों को धोखे में रखने में ही अपनी इतिश्री समझता है—यद्यपि कुछ ही काल बाद पोल खुल जाने पर उसकी सारी आनंद-क्रियाएँ किरकिरी हो जाती हैं । उत्तर भी यदि चाहता, तो कुछ काल तक, कौरवों पर विजय

प्राप्त करने के सम्मान का तूर भानद लूट सकता था । किन्तु, हमारे कवि को इस प्रकार की मवधा आदर्श हीन बातें कब सख थीं ! देखिए, ये उत्तर के मुँह से ऐस समय पर क्या कहवाते हैं —

‘मिथ्या प्रशंसा अति षष्ट देती
मिथ्या-प्रशंसा-रत यदियों की ।
देते मुझे ये रण की बढाई ,
देता हुँकारी, मन में लज्जाता ॥’

कैम स्वर्गीय विचार है ! कितनी अलौकिकता है ! विनय की कैसी पराकाष्ठा है ! राजकुमार उत्तर के हृदय में सात्त्विक जीवों के प्रतिकूल जरा भी मृग बढाई पाने की इच्छा नहीं । ये लज्जा से गद जा रह है । और सचाई को प्रकट करने के लिए अत्यन्त उद्दिग्ध हो रहे हैं । यह महाकवि भास की प्रतिभा के कुछ नमून निहैं कि विश पाठकों के समुल उपदिष्ट करते हुए हमारी असमय खेसनी लज्जाती है । किन्तु भास की कविता में कुछ एसी समाहनी क्षिपी हुई है कि त्रिमके वश होकर उसे अपनी अममर्थता का वास्तविक ज्ञान ही नहीं हो पाता । यही कारण है कि यह दु ग्राहस कर ही पैठी है ।

॥—॥—॥—॥
भास की
मूचम शीता
॥—॥—॥—॥
यन की समाप्ति पर जब मव राजा आग दुर्पाधन का बढाई दे रहे थे तो विराट पुर से राजा विराट का दूत आकर यह समाचार सुनाता है कि—‘रात्रि में किमी शस्त्र-हीन न सी कीचकों को मार राजा । भीष्म द्रोण से कहते हैं कि यह काम मिशाय भीम के और काई नहीं कर सकता । इस पर द्रोण पूवन हैं कि—आपने यह कमे जाना ? भीष्म इसका क्या उत्तर दते हैं, जरा महाकवि के शब्दों में ही सुनिष्ठा —

‘क्यों, बछड़ों की चपलता, करते तीर-विहार ।

महावृषभ जानें न बुध ! उनका शृंग-प्रहार ? ॥’

भला, तीर-विहारी बछड़ों की चपलता तथा उनका शृंग-प्रहार कभी महावृषभो से छिप सकता है ! कवि की सूक्ष्म-दर्शिता का इससे सुंदर उदाहरण और क्या हो सकता है !

भास के युद्ध-वर्णन के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं । ‘स्थाली-पुलाक’ न्याय से एक ही पद्य में पाठकों को उसका पता लग जाता है । वृहन्नला-वेष-धारी अर्जुन को कौरवों के साथ भयकर युद्ध-तांडव को सचमुच राजकुमार उत्तर का रण-तांडव समझकर भट उसका वर्णन राजा विराट के सामने इस प्रकार करता है —

‘शर मार सौ सौ नील हाथी लाल रंग में हैं रंगे ,
है कौन हथ भट वा, न जिसके बाण सौ तन में लगे !
शर-विद्ध रथ-वर हैं हुए शर-जाल से निश्चल अहा ,
पथ रुद्ध बाणों से, धनुष शर-धार उग्र बहा रहा ॥’

वर्णन क्या है, जादू है ! कवि की चंचल प्रतिभा कैसा अपूर्व एवं भैरव नृत्य कर रही है ! कैसा निरालापन है ! ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् आँखों के आगे कोई धन्वी बाणों की धारा इस प्रकार बहा रहा है—मानो—ग्रीष्म-काल का मध्याह्न-मार्तंड अपनी अनंत किरणों से जल-लोक को उत्तप्त कर रहा हो ! सैकड़ों हाथी खून में लथपथ हुए लौट रहे हैं । कोई भी घोड़ा अथवा योद्धा ऐसा नहीं, जिसका शरीर सैकड़ों बाणों से न बिधा हो । शत्रुओं के रथ बाणों से विद्ध होकर निश्चल हो रहे हैं । मार्ग बाणों से रुक गया है और धनुष भीषण

भास के इस कथन की पुष्टि कविता-कामिनी-विलास महाकवि कालिदास इस प्रकार करते हैं —

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रम.

पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।

ब्रह्मचारी के वेश में पार्वती की परीक्षा लेने के लिए आए हुए शिव पार्वती से कहते हैं कि—‘हे देवी ! यदि तुम्हें स्वर्ग की कामना है, तो यह भयंकर व्रत वृथा है । क्योंकि तुम्हारे पिता—हिमालय—के प्रदेश ही तो स्वर्ग-स्थान हैं ।’

अधिक क्या कहें, एक विद्वान् समालोचक के शब्दों में—
‘मिश्री का यह कूजा जिधर से तोड़ो मीठा ही निकलता है । इस गन्ने की हर पुरी में मिठास बढ़ता ही जाता है । भाव, भाषा और कला किसी भी दृष्टि से देखो भास की कृति अपने जैसी आप ठहरती है,—संक्षेप में इतना ही कह देना पर्याप्त है ।

संस्कृत-सागर में निम्न इस अप्रतिम एवं अमूल्य रत्न को हिन्दी जनता के करकमलों तक पहुँचाने में हम कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही करेंगे ।

लाहौर
जन्माष्टमी १९६३ }

—वलदेव

नाटक की कथा

द्रोण एवं भीष्म की प्रेरणा से कुरुराज दुर्योधन गंगा के किनारे किसी पुराण वन में विशाल यज्ञ रचता है। पृथिवी भर के सारे राजा लोग, राजकुमारों एवं राज-रानियों के साथ उसमें सम्मिलित होते हैं। यज्ञ के दर्शनार्थ आए हुए ब्राह्मण दुर्योधन के यज्ञ-वैभव से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। यज्ञ के अंत में यज्ञशाला में अग्नि-संदीपन होता है। दुर्योधन यज्ञ-दीक्षांत-स्नान करता है। यज्ञ करने के कारण उसका मन प्रशान्त होजाता है, जिससे कि द्रोण और भीष्म को महान संतोष होता है। भीष्म और द्रोण तथा देश देशांतरों से आए हुए राजा दुर्योधन को वधाई देते हैं। अंत में वह द्रोण से दक्षिणा के लिए याचना करता है। बार बार प्रार्थना करने पर भी जब द्रोण दक्षिणा के लिए टाल-मटोल करते रहते हैं, तो दुर्योधन उन्हें विश्वास दिलाने के लिए उनके कर-कमल में जल-दान कर देता है, जिससे कि द्रोण के

मन में दक्षिणा के प्रति विश्वास हो जाता है और वे पांडवों का आधा राज्य दे देने की दक्षिणा माँग बैठते हैं।

भला, शकुनि को यह क्या सहा था ! यह यह सुनने ही मचक उठता है और आचार्य पर दक्षिणा के बढ़ाने घोखा देने का लाछन लगाता है। द्रोण को भी क्रोध आजाता है और वे कहते हैं कि—“ए गांधार देश का राज्य पाकर गव में चूर हुए शकुनि ! तुम अनार्य हो, इसलिए क्या सारे ससार को अनार्य समझने हो ? ओह ! क्या, यधुओं का पैतृक राज्य देने के लिए कहना भी घोखा है ?” भीष्म और कर्ण युधिष्ठिर के द्रोण और शकुनि को शान करते हैं। दुर्योधन, शकुनि के साथ सलाह करने के अनंतर, यदि “पंचरात्र—(पाँच रात्रियों)—के भीतर भीतर आप पांडवों का पता लगा लेंगे तो मैं उ दूँ उनका आधा राज्य लौटा दूँगा”—यह निश्चय सुना देता है।

यह सुनकर द्रोण अत्यंत चिंतित होते हैं और दुर्योधन से कहते हैं कि—

तुमने धन-काम दे लता—

त्रिको कारह अब स नही ।

पिर क्योंकर पंचरात्र में ।

कह दए हसय नही यही ॥

हाँ ! इसी समय विराट के पास से दूत आजाता है और यह बिना शत्रु दी सी कीचों के मोरे जाने का समाचार है। भीष्म एकदम ताक आते हैं कि हो न हो यह

काम भीमसेन का है, क्योंकि बिना हथियार और किसमें इतनी शक्ति है जो कीचकों को मार सके ! इसलिए वे द्रोण से एक ओर को कहते हैं कि—‘पंच-रात्र’ की अवधि स्वीकार कर लेनी चाहिए ।

अपने निकट के संबंधी कीचकों की मृत्यु के कारण शोक से विह्वल हुए महाराजा विराट दुर्योधन के यज्ञ में सम्मिलित नहीं हो सके थे । उनके इसी अपराध के बढ़ाने, भीष्म अपनी कार्य-सिद्धि का ध्यान रखते हुए, दुर्योधन को उनकी- गाँव हरने के लिए भड़का देते हैं । परिणाम-स्वरूप दुर्योधनादि विराट की गाँव हर लेते हैं ।

यह समाचार पाते ही राजकुमार उत्तर, बृहन्नला को रथ का सारथि बना, कौरवों से युद्ध कर गाँव छुड़ाने को निकल पड़ता है । बृहन्नला को राजकुमार के रथ का सारथि सुनकर राजा को बड़ी चिंता हो जाती है । ब्राह्मण-वेप-धारी युधिष्ठिर ‘बृहन्नला की सारथ्य-विद्या के प्रभाव से विजय अवश्य होगी’ यह कहकर राजा की चिंता को दूर कर देते हैं ।

कुछ ही देर बाद राजा विराट को यह समाचार मिलता है कि राजकुमार उत्तर कौरवों को परास्त कर आ गए हैं, और कौरवों की सहायता के लिए आए हुए अभिमन्यु को राजा के रसोइए ने (जो कि कपट-वेप-धारी भीमसेन थे) पकड़ लिया है । राजा को यह सब सुनकर बड़ा कौतूहल होता है और वे अभिमन्यु को शीघ्र ही लिवा लाने के लिए कहते हैं । भगवान् (अर्थात् ब्राह्मण-वेप-धारी युधिष्ठिर) की

प्रेमणा से बृहन्नला (अर्थात् कपट-वेष धारी अर्जुन) को अभिमन्यु का लिये लाने लिए भेजा जाता है। इस मौके पर कपट वेष धारा भीमसन और अर्जुन की अभिमन्यु के साथ वानवान, लालाक्ष्य वृक्षों से परिपूर्ण दान के कारण, अत्यन्त राक्षक द्वागदृष्टि। बृहन्नला—अर्थात् कपट वेष धारी अर्जुन—सूद-वेष-धारा भीमसन के साथ अभिमन्यु का राजा के पास लिये लाता है।

इतने में ही गानकुमार उत्तर सहसा आकर—बृहन्नला वेष धारा अर्जुन न ही कौरवों का जाता है—इस रहस्य को उद्घाटन कर देता है। फिर अर्जुन कपट वेष धारा युधिष्ठिर और भीमसन का वास्तावकता प्रकट कर देता है। विराट् प्रसन्न हो अर्जुन का गा हरण के पारितोषिक रूप में अपने कन्या उत्तरा के पाणिप्रदण्य के लिए कहता है किंतु अर्जुन,

किया सभा इन्धाम का जनना यम मन्कार ।

अर्पित जा यह उत्तमा मुन दिन इ म्बीकार ॥

पढ़ कहकर उस अभिमन्यु के लिए स्वीकार कर लेता है। युधिष्ठिर, सपूण राज मंडल का विवाह का निमन्त्रण देने के लिए, उत्तर की शीघ्र ही भीष्मादि के पास भेज देता है।

इधर कौरवों के पराजित हो जान पर नय भीष्मादि के अभिमन्यु के सारथि से यह पता लगा कि अभिमन्यु का एक अत्यन्त योग शाली पैदल पकड़कर भाग गया ता उन्हें निश्चय हो जाता है कि अभिमन्यु को भीमसन के सिवाय और किसी ने नहीं पकड़ा। इसी समय भीष्म का सारथि

भी भीष्म की ध्वजा पर लगे हुए बाण को लेकर आजाता है और भीष्म की आज्ञा से शकुनि उस पर 'अर्जुन' नाम पढ़ कर उसे फेंक देता है और कहता है कि—अर्जुन नाम का कोई दूसरा योद्धा हो सकता है जिसका कि यह बाण हो; इसलिए उत्तर से इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए । इतने में ही राजकुमार उत्तर युधिष्ठिर का संदेश लेकर आ जाता है । इस प्रकार, पांडवों का 'पंचरात्र' के भीतर ही पता लग जाने पर, दुर्योधन उनको उनका आधा राज्य दे देता है ।

नाटक के पात्र

✓ दुर्योधन
 कण
 ✓ भीष्म
 ✓ द्रोण
 1 भगवान्
 ✓ अर्जुन
 शूद्रधला
 भीमसेन
 राजा
 उत्तर
 अभिमन्यु
 भट
 सारथि
 ✓ शकुनि
 दूत
 शूद्र गोपालक
 गोमित्रक
 कचुकी
 प्रथम
 द्वितीय
 तृतीय

हस्तिनापुर का राजा
 अगदेश का राजा—दुर्योधन का मित्र
 कौरवों के पितामह
 कौरवों के आचार्य
 ब्राह्मण-वेप धारी महाराज युधिष्ठिर
 युधिष्ठिर का भाई
 नपुंसक-वेप धारी अर्जुन
 युधिष्ठिर का भाई
 विराट नामक मत्स्य देश का राजा
 विराट का पुत्र
 अर्जुन का पुत्र
 दुर्योधन तथा विराट का मृत्यु
 विराट, अभिमन्यु और भीष्मकरथ-वाहा
 दुर्योधन का मामा
 विराट का मदेश-वाहक
 गोकुल का अध्वरु
 एक ग्वाला
 विराट का मृत्यु

यज्ञ के दशनाथ आए हुए तीन ब्राह्मण

पंचरात्र

(नादी के अंत में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—

भीमार्जुन सब पांडव-दल का, पृथिवी-हित जो दूत ।
कर्णधार जो शुकनीश्वर का, द्रोण महा अवधूत ॥
भीष्म, युधिष्ठिर, उत्तर-पथ-चर, यदुकुल का सम्राट ।
दुर्योधन, अभिमन्यु करे वह, रत्ना कृष्ण विराट ॥१॥

१ (घूमकर) आर्य-जनों से मेरा यह निवेदन है !—अये !
क्या कारण है कि मेरे सूचना देने के लिए तत्पर होते ही,

शब्द-सा सुनाइ पड़ रहा है ! अच्छा, अभी देखता हूँ !

(नेपथ्य में)

क्या कहना है—कुरराज की यश-समृद्धि का !

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया ।

आप नृप सप्रेम सय, नारी परिजन बाल ।

दुर्योधन कुरराज का, होता यश विशाल ॥२॥

(प्रस्थान)

स्थापना

पहला अंक

(तीन ब्राह्मणों का प्रवेश)

सब—क्या कहना है—कुरु राज की यज्ञ-समृद्धि का !

पहला—यहाँ, सचमुच,

द्विज-शेष मानों अन्न से सब ओर काश सिले हुए ,

है दीखते हवि-धूम ये तरु-कुसुम-गंध-मिले हुए ।

चींते हरिण-सम घूमते, गिरि-सिंह हिंसा-हीन है ,

दीक्षित नृपति के साथ मानों लोक दीक्षा-लीन है ॥३॥

दूसरा—आप ठीक कहते हैं ।

सुर मुख अनल है तब हवि से, तब घन से विप्र भी,
पशु पक्षि आदिक तुष्ट हैं सब, तुष्ट जग के जन सभी ।
गुण-गान करता नृप-गुणों का दृष्ट सब ससार है,
इस भाँति सुर-आवास को भी दे रहा धिक्कार है ॥४॥

तीसरा—ये पूजनीय ब्राह्मण हैं,

सृष्ट मौलि-चदित चरण जिनके, जो पढ़े सब शास्त्र हैं,
जो वेद पढ़ते वृद्ध भी तप से तपाते गात्र हैं ।
ये विप्र, जो दुर्वल जरा से यष्टि लेकर आ रहे-
धरदाय शिष्य स्कंध पर, अति-वृद्ध-गज छवि छारहे ॥५॥

सब—ऐ ब्राह्मचारियो ! ऐ ब्राह्मचारियो ! जब तक, यह-दीक्षात
ज्ञान समाप्त न हो जाए, यह-शाला में आग मत देना ।

पहला—ओह ! बाल-चपलता दिसाई ही दी !

यह यूप से—जलते कनकमय बाहु से शोभित मही,
यहामि लौकिक अग्नि को, दिज शब्द-सम, सहती नहीं ।
कुछ कुछ हरित कुश-जाल से आच्छन्न वेदी-तल जला,
यह धूम, ज्यों गज विकच-नलिनी ओर, प्राण्ड को चला ॥६॥

दूसरा—यह ठीक है ।

अनल के भय से भयभीत हो,
अनल को द्विज-श्रेष्ठ निकालते ।

चरित-हीन यथा कुल से करें—

पृथक बंधु, न संक्रम-दोष हो ॥७॥

तीसरा

~~पहला~~—यह और देखें—आप लोग,

शकटी यह घृत से भरी, सिंचित भी-जल-जाल—
जलती, मृत-वाला यथा, तप्त स्नेह से-वाल ॥८॥

पहला—आप ठीक कहते हैं,

नव तृण जलाती, मंद जलती वह्नि छूकर दर्भ को,
कुरुराज की इस यज्ञ-शकटी के जलाती गर्भ को ।
भड़की पवन से, उच्च लपटें, चक्र में आकर लगी,
अव नेमि के चहुँ ओर फिरती सूर्य के सम जगमगी ॥९॥

दूसरा—यह और देखें—आप लोग,

बॉबी-बिल से साथ ही, निकले पाँच भुजंग—
अनल-भीत, पाँचों यथा इंद्रिय तज मृत-अंग ॥१०॥

तीसरा—यह और देखें—आप लोग,

पवन-दीप्त यज्ञाग्नि से, जलता घृत महान ।
कोटर-गत ये निकलते, खग-गण प्राण-समान ॥११॥

पहला—यह ठीक है ।

नीरस पादप एक ही, कुसुमित विपिन प्रात-
चरित हीन कुल को यथा, करता दग्ध नितात ॥१२॥

दूसरा—

धायु विकपित शौंस ये, जलते छू मध-ज्वाला ।
जाते जन के भाग्य ज्यों, नीचे श्री उचाला ॥१३॥

तीसरा—आप ठीक कहते हैं ।

शुष्क लता से स्वध में, घेष्टित बिटपि मदान—
दुष्कुल में श्री दोष से, जलता साधु-समान ॥१४॥

पहला—यह और देखें—आप लोग,

यह घन, युत भाङ्गी, वृक्ष, शुल्मावली से,
अशन अनल मानों खूब छा, घुस दोहे-
अब कुश-नाण का से मूलमूर्ती सद्गारा,
सरित निकट मानों आ गया अबु र्पाने ॥१५॥

दूसरा—यह, यह,

पैले हुए कुश चीर से प्रतिकृष्ट पर है जा रहा ,
मानों पहा हो दग्ध कइली-फल घरा पर आ रहा !
है ताल यह समुद्र, लटकता मधु-पटल जिस पर अदा ,
निज मूल जलते ही परशु सम यद्र के है गिर रहा ॥१६॥

तीसरा—अहा ! सत्पुरुष के क्रोध के समान, भगवान् 'हुताशन' तांत हो गया !

जलते ही सब वस्तु के, अनल हुआ यह शांत ।
दान-शक्तिज्यों आर्य की, धन-क्षय-क्षीण नितांत ॥१७॥

पहला—

स्रुक, अरणी, कुश-जाल का, करे अनल उपभोग ।
वसन, विभूषण का यथा, व्यसनी निर्धन लोग ॥१८॥

दूसरा—

यह कूलवर्ती ढाक, जिसकी शाख जल को छू रही ,
यह वायु से हिलता हुआ मृदु हस्त जिसका पर्ण ही ।
हैं खो चुके जो प्राण अपने वन-अनल के वश अहा ,
उन पादपों को ही यहाँ मानों जलांजलि दे रहा ॥१९॥

तीसरा—तो आइएगा, हम भी आचमन कर लें !

(सब विधिपूर्वक आचमन करते हैं)

पहला—अये ! ये महाराज कुरुराज दुर्योधन, भीष्म और द्रोण
जिनके आगे आगे हैं, संपूर्ण राज-मंडल के साथ इधर ही चले आ रहे
हैं । देखो, ये—

'मख से करो जग तृप्त, बल से मेदिनी को जय' कपो,
 तज शोध नृप ! निज बधु जन के दुःख को सत्वर द्रो'-
 इस मौलि सुदर बचन कहते पौर जन अति दक्ष हैं,
 यों ले रहे अत्र पाइवों का ही अहो ! ये पक्ष है ॥२॥

दोनों—बहुत अच्छा !

सब—जय हो, जय हो, देव की ।

(सब का प्रस्थान)

विष्कम्भ

(भीष्म तथा द्रोण का अंतर)

द्रोण—यमानुष्ठान करके दुर्योधन ने सचमुच मेरे ही सम्मान को बनाया है ! क्योंकि,

तज निज जन को भी, छोड़ के मित्र को भी,
 गुरु-सिर मढ़ने हैं शिष्य का दोष साध ।
 जनक, जननि दोनों बाल्य से सौंप देते-
 निजसुत गुरु को दी, दोष भागी नहीं ये ॥२१॥

भीष्म—यह दुर्योधन,

सुवर्ण, चोदी हर जो हुआ धनी,

अकीर्ति युद्ध-प्रिय है जिसे मिली ।

सु-पुण्य-भागी कर यह जो हुआ,

वही सुहाता इस पुण्य वेश में ॥२२॥

(दुर्योधन, कर्ण तथा शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—

संतुष्ट है मुझ से हुए गुरु-जन, हृदय श्रद्धा-पगा ,

विश्वस्त जन, गुण-सदन हूँ, सारा श्रयश मेरा भगा ।

‘नर प्राप्त करते स्वर्ग मर कर’, भूठ कहता लोक है ,

है मर्त्य जिसको भोगते, विस्तृत यहाँ सुर-लोक है ॥२३॥

कर्ण—गांधारी-पुत्र ! न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धन को दान करके
अपने उचित ही किया है ! क्योंकि,

है प्राप्त करता समर से संपत्ति को क्षत्रिय यहाँ ,

धन पुत्र के हित जोड़ता जो फल उसे मिलता कहीं !

सब विप्र की ही गोद में धन भेंट करके इसलिये .

नृप को सदा निज-पुत्र-कर में चाप देना चाहिए ॥२४॥

शकुनि—गंगा-जल में विधिपूर्वक आचमन करने के कारण
द्ध देह वाले अंगराज ठीक कहते हैं ।

कण—

रत्नाकु, शय्याति, ययाति, राम,

माधाव, नाभाग नृग, ऽम्बरीष ।

म-कोश ये राष्ट्र-समेत राजा-

सभी मरे, जीवित यज्ञ से हैं ॥२५॥

सय—गांधारी-पुत्र ! सौभाग्य से, यज्ञ समाप्त हो जाने
कारण आपकी वृद्धि हो रही है ।

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । गुरु जी ! मैं आपको
करता हूँ ।

द्रोण—आओ, आओ, पुत्र ! यह कम नहीं है ।

दुर्योधन—तो कौन-सा कम है ?

द्रोण—क्या आप नहीं जानते ?

मनुज रूप में देवता, इनको करो प्रणाम ।

छोड़ भीष्म मम बदना, ठीक नहीं यह काम ॥२६॥

भीष्म—नहीं, आप जमा न करें ! मैं अनेक कारणों
आपकी अपेक्षा निष्ठ हूँ । क्योंकि,

तुम हो स्वयम्भू और मैं उत्पन्न जननी से तथा ,

है शत्रु मम आज्ञाधिका जग प्रेम रत तुम सवथा ।

है सत्र-कुल में जन्म मेरा, आप ब्राह्मण धेष्ट हैं ,

हैं आप गुरु सब के तथा दम शिष्य-कुल के ज्येष्ठ हैं ॥२७॥

द्रोण—महात्मा लोग अपने को निःकृष्ट कहने का साहस कर
! बैठते हैं ! आओ, पुत्र ! मुझे प्रणाम करो ।

दुर्योधन—गुरु जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

द्रोण—आओ, आओ, पुत्र ! तुम इसी प्रकार यज्ञ-दीक्षात-स्नानों
में खेद प्राप्त करते रहो !

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । बाबा जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भीष्म—आओ, आओ, पौत्र ! तुम्हारा मन इसी प्रकार सदा
प्रशांत रहे !

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । मामा जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

शकुनि—वत्स !

इस प्रकार कर यज्ञ सब दानसहित स्वच्छंद ।

नृप-मल मे नृप जीत, कर जरासंध-सम वंद ॥२८॥

द्रोण—ओह ! आशीर्वाद के समय में भी शकुनि युद्ध के लिए
उत्तेजित कर रहा है ! अहो ! यह क्षत्रिय-कुमार सचमुच वैर का
बड़ा प्रेमी है !

दुर्योधन—मित्र ! कर्ण ! गुरुजनों को प्रणाम करने के अनंतर
अब हमारी बारी आई है; आओ, दोनों मित्र गले मिल लें ।

कर्ण—गांधारी पुत्र !

यह यज्ञ व्रत से वृश्च कलेजर है तुम्हारा हो रहा !
 क्या गाद आलिगन करूँ यदि जा सके तुम से सदा !
 योले बिना सप्रेम अथ पीडित हृदय कैसे करूँ !
 राजर्षि-तुल्य प्रयात स्वर से भीत, भय कैसे हूँ !

दुर्योधन—तुम्हारा मन सदा ऐसा ही बना रहे !

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! ये इंद्र के प्रिय मित्र भीष्मक
 बधाई देते हैं ।

दुर्योधन—स्वागत है, आर्य का । अभिवादन करता हूँ !

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! ये दक्षिण देश के रक्षक
 आपको बधाई देते हैं ।

दुर्योधन—स्वागत है, आर्य का ।

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! ये अभिमन्यु जिन्हें आपको
 देते हुए श्रीकृष्ण जी ने भेजा है, आपको बधाई देते हैं ।

शकुनि—वत्स ! दुर्योधन ! ये जरणमध के पुत्र महर्षि आ
 अभिवादन करते हैं ।

दुर्योधन—आओ, आओ, वत्स ! पिता के समान पर
 बनो !

सत्य—यह संपूर्ण राज महान आपको बधाई देता है ।

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । क्यों !—सब राजाओं के आने पर विराट क्यों नहीं आए ?

शकुनि—मैंने उनके पास दूत भेजा था । सभव है, बीच-मार्ग में हों !

दुर्योधन—गुरु जी ! ऐ मेरे धर्म और धनुष के गुरु जी ! दक्षिणा स्वीकार कीजिएगा ।

द्रोण—क्या दक्षिणा ?—रहने दो, रहने दो । मैं आपसे एक विनती करूँगा ।

दुर्योधन—क्या गुरु जी विनती करेंगे ?

भीष्म—अजी ! कुछ भी प्रयोजन नहीं, जब कि—

विधिसहित यौवन में जिन्होंने सोम-रस को है पिया,
रहते तुम्हारे राज्य में, यश भी जिन्होंने पा लिया !
है द्रव्य, फल वह कौन-सा, वह कौन गुण सविशेष है,
जो विप्र क्षत्राचार्य को अब प्राप्त करना शेष है ॥३०॥

दुर्योधन—आज्ञा कीजिएगा, आप । आप क्या चाहते हैं ?
मैं आपके लिए क्या करूँ ?

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! मैं कहता हूँ ।

दुर्योधन—आप अब क्या सोच रहे हैं ?

अत्यंत प्रिय मैं हूँ तुम्हें, उपदेश तुमने ही दिया,
 है शूर-भाग मैं नाम मेरा, समर मैं विक्रम किया।
 क्या चाहते ? क्या हूँ तुम्हें ? स्वच्छन्द बतला दो अमा,
 है हाथ मैं मेरे मर्दा, बस आपका ही है समी॥
 द्रोण—पुत्र ! अभी कहता हूँ। किंतु, अशु-पवाह मुझे र
 रहा है।

मय—क्या गुरु जी रो रहे हैं ?

भीष्म—पौत्र ! तुम्हारा परिश्रम निष्फल है।

दुर्योधन—कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महायज्ञ की।

दुर्योधन—पानी ले आओ।

भट—जो महायज्ञ की आज्ञा ! (बाहर जाकर सौटकर) जय हो
 महायज्ञ की। यह रहा, पानी।

दुर्योधन—ले आओ। (कलश लेकर) गुरु जी ! आँसुओं।
 मलिन दृष्टि मुझ को घे लीजिएगा।

द्रोण—रहने दो, रहने दो। मेरी कार्य सिद्धि ही मेरे हूँ
 को घोषणी।

दुर्योधन—ओह ! धिक्कार दे मुझे !

प्रथम कुटिलता का ध्यान आता तुम्हें जो ,
यदि निज मन में हो जानते 'मैं न दूँगा' ।
शर-कठिन करों को तात ! दोनों पसारो ,
यह जल तजता मैं दान-स्वीकार-कारी ॥३२॥

द्रोण—अहा ! मेरे मन में विश्वास हो गया ! पुत्र ! सुनो ।
मारे मारे जो फिरें, बीते बारह साल ।
'दे दो पांडव-भाग' यह भीख, दान नरपाल ! ॥३३॥

शकुनि—(आवेगपूर्वक) अजी !

जिसने गुरु-विश्वास से कहा—अहो ! 'लो दान' ।
कर प्रवृत्त मख मे उसे, उचित न अतिसंधान ॥३४॥

द्रोण—क्या अतिसंधान ?—ऐ गांधार देश का राज्य पाकर
गर्व में चूर हुए शकुनि ! तुम अनार्य हो, इसलिए क्या सारे संसार
को अनार्य समझते हो ? ओ हो !

'बांधव-पैतृक-राज्य दो', क्या यह अतिसंधान ?
उचित न माँगे से दिया, बल से वा ह्वियमाण ॥३५॥

सब—क्या बलपूर्वक ?

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! यह तो यज्ञ-दीक्षांत-स्तन का
समय है । नाममात्र के मित्र एवं वास्तविक शत्रु शकुनि की बात
मत सुनो । देखो, पौत्र !

जो भूमि-तल पर धूमते घन-रज लेपटे अग में,
 हा ! पाइ के सुत दुपद-चूष की बालिका के सग में !
 यह बड़ रहा जो भार्यों में अथ परस्पर द्वेष है,
 कारण अहो ! उसमें हुआ यह शत्रुनि-दर्प विशेष है ॥१॥

दुर्योधन—पुत्र ! कहो ।

द्रोण—

पूत समा में जय हरा राज्य, किया अधमान ।
 बल-समर्थ उनका कहों तब या कीध महान ।

द्रोण—इस विषय में, धर्म के धोखे से ठगे गए,
 युधिष्ठिर से पूछना चाहिए !

समा-स्तम की सोलता, रोका जिसने—भीम ।
 यदि ना रोके, क्यों कर निदा शत्रुनि असीम ॥२॥

भीष्म—कहों की बात कहों आ गई ! आचार्य जी ! इस समय
 कार्य प्रधान है, न कि कलह ।

द्रोण—यहो, दीन-वचनों की आवश्यकता नहीं,—कलह ही
 ठीक है ।

भीष्म—समा कीजिएगा, आचार्य जी ! देखो, देता !

नियंत्रण दुखी, जग में नहीं जिनका ठिकाना है कहीं,
 है चाहते जो साम तुमसे, गर्व भी करते । नहीं ।

तुम हो बड़े, वे प्रेम तुमसे नित्य ही करते अहो ,
उनको शरण दोगे तथा मृग-संग रक्खोगे कहो ? ॥३६॥

शकुनि—मृगों के साथ ही रहें ! मृगों के साथ ही रहें !!

कर्ण—आचार्य जी ! क्रोध न कीजिए । क्योंकि, दुर्योधन,
सुनकर परुष हितकर वचन भी क्रुद्ध होता है महा ,
सज्जन-पुरुष-विरुदावली को चाहता मानी कहाँ !
बस हो चुकी यह बात, साधो शिष्य-गण के काम को ,
तृप्त में करो अब साम से गज-सम महा उद्दाम को ॥४०॥

द्रोण—वत्स ! कर्ण ! ब्राह्मण में तेज छिपा रहता है ! समय
मुझे सचेत कर दिया ! यह मैं तुम्हारी इच्छा के अनुकूल ही
ता हूँ । पुत्र ! दुर्योधन ! क्या मेरा तुम पर कुछ अधिकार है ?

भीष्म—अब इन्होंने ठीक मार्ग ग्रहण किया है । क्योंकि,
लता ही दुर्विनीतों की औषध है ।

दुर्योधन—केवल मेरे ही नहीं, आप मेरे कुल के भी प्रभु हैं ।

द्रोण—यह बात सर्वथा तुम्हारे अनुरूप है । तो, पुत्र !

ठगता तुम्हें यदि, दोष लगता कुछ नहीं तुम पर यहाँ ,
पीड़ित तुम्हें यदि कर रहा, हो लाभ तुमको ही वहाँ !

कुलशालियों में जो परस्पर फूट पड़ता द्वेष है,
धर्मोपदेष्टा ही उसे करता सदा निःशेष है ॥४१॥

दुर्योधन—अच्छा तो मैं सलाह करना चाहता हूँ।

द्रोण—पुत्र ! किसके साथ सलाह करना चाहते हो ?

भीष्म, कण, दृप, सिंधु-नृप, जयद्रथ से इस बात।

द्रोण, विदुर क्या जनक औ, जननी से ? कह बाल !

दुर्योधन—नहीं, नहीं, मामा जी से।

द्रोण—क्या शकुनि से ? (स्वगत) अहो ! काम ।

दुर्योधन—मामा जी ! जरा इधर आइए । बयस्य । कर्ण !
इधर आओ ।

द्रोण—(स्वगत) अच्छा तो यों कहूँगा ! (प्रष्ट)

गांधार-राज ! जरा इधर आओ ।

शकुनि—यह आ गया ।

द्रोण—वत्स !

वीर-बहुल वय है जरा, सहो चपलता-बाल !

है इस रुखे वचन का, आलिंगन प्रतिकार ।

भीष्म—(स्वगत)

करते ये शुरु शकुनि की, विनती शिष्य-सराग

इस विषय यह अनुनीत भी, करे न शठता-त्याग

शकुनि—(स्वगत) अहो ! आचार्य बड़ा धूर्त है ! अपना काम धने की इच्छा से मुझे बना रहा है !

{ सब धूमकर बैठ जाते हैं }

दुर्योधन—मामा जी ! पांडवों के आधे राज्य के विषय में क्या निश्चय है ?

शकुनि—‘नहीं देना चाहिए’—यह मेरा निश्चय है ।

दुर्योधन—मामा जी को—‘देना चाहिए’—यह कहना चाहिए ।

शकुनि—यदि राज्य देना ही है, हमसे क्यों सलाह लेते हो ?—
। सभी कुछ दे डालो !

दुर्योधन—मित्र ! अंगराज ! आपने अभी कुछ नहीं कहा !

कर्ण—मैं अब क्या कहूँगा !

श्रीराम ने जिसका प्रथम अनुभव तथा पालन किया,
प्रतिषेध उस सौभ्रात्र का करता नहीं मेरा दिया ।
‘राज्यार्द्ध देना चाहिए अथवा न’ आप प्रमाण हैं,
समर-स्थली में बस सहायक ये हमारे प्राण हैं ॥४५॥

दुर्योधन—मामा जी ! बलवान् शत्रुओं से युक्त और आजी-
वेका के अयोग्य कोई कुदेश सोचो । पांडव लोग वहाँ रहें !

शकुनि—ओह !

‘नहीं’—कहूँगा, पार्थ से कौन अधिक यत्नवान !
जहाँ युधिष्ठिर नृप, वहाँ ऊसर में भी धान ॥४॥

दुर्योधन—अच्छा तो अब,

कर-कमल में गुरु के किया मैंने सलिल का दान है
हूँ सुन चुका मैं गुरुजनों से जो नितात प्रमाण है।
हो वह अनीति प्रवचना वा जो कहो सब कुछ वहा
हूँ चाहता करना सलिल में वह नृपति ! सचमुच

शकुनि—क्या आप मूठ से पिंड छुड़ाना चाहते हैं ?

दुर्योधन—जी, हाँ !

शकुनि—तो जरा इधर मेरे साथ आओ । (द्रोण के
जाकर) गुरु जी ! महाराज कुरुराज आपको इस विषय में
करते हैं ।

द्रोण—वत्स ! गांधारराज ! कहो ।

शकुनि—यदि ‘पंचरात्र’ के भीतर पादवों का पता
तो आपा राग्य दे देंगे । अब आप उनका पता लगा लें !

द्रोण—नहीं जी ! नहीं ।

तुमने छल-काम है लक्षा,
जिनको बारह षण से नहीं ।

फिर क्यों अब 'पंचरात्र' में !

कह देते इससे 'नहीं' यही ॥४८॥

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! धर्म छल-हीन होता है । हम भी
उ काम में प्रसन्न हैं । देखो, पौत्र !

एक वर्ष शत वर्ष में तथा,

पांडु-पुत्र-गण-अर्द्ध-राज्य दो ।

सत्य-संध वन वीर ! सर्वथा,

सत्य-संध कुरु-वंश है सदा ॥४९॥

दुर्योधन—मेरा यही निश्चय है ।

द्रोण—(स्वगत)

कार्य-लोभ से चाहता, 'आज वनूँ हनुमान' ।

जलधि लाँघ जिसने दिया, हत सीता का श्वान ॥५०॥

तो कहाँ से पांडवों का पता लगाया जाए !

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । विराट नगर से दूत आया है ।

सब—जल्दी भेजो ।

भट—जो आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(दूत का प्रवेश)

दूत—जय हो, महाराज की ।

मव—क्या विशादेव आ गए ?

दूत—वे दुखी हैं, इमीलिए नहीं आते ।

मव—वन्हें क्या हुआ है ?

दूत—सुन सकते हैं, महाराज । जो उनके अत्यंत ।
सबधी सौ भा कीचक हैं, वन्हें—

किसी पुरुष ने रात में मारा हो तम लीन—
थाहु-युगल से, दीखता शय-वध शस्त्र विहीन ॥

मव—क्या बिना हथियार के मार दिया ?

भीष्म—क्या शस्त्र-रहित ने ? (एक ओर को) आचार्य
'पंचरात्र' की अवधि को स्वीकार कर लीजिए ?

द्रोण—(एक ओर को) किमलिए ?

भीष्म—

भुजशाली यह भीम का, ही है हत्य नलाम ।
भोगा बुद-गत बोध का, कीचक शत परिणाम

द्रोण—आप कैसे जानते हैं ?

भीष्म—

— क्यों, बछड़ों की चपलता, करते तीर-विहार ।
महावृषभ जाने न बुध ! उनका शृंग-प्रहार ? ॥१३॥

द्रोण—क्या महावृषभ ? अहा ! काम बन गया ! (प्रकट)
३ ! दुर्योधन ! सही—'पंचरात्र' !

दुर्योधन—जी, हाँ ! सही—पंचरात्र !

द्रोण—ऐ यज्ञ में समुपस्थित राजाओं ! सुनें, सुनें, आप
योग । ये श्रीमान् कुरुराज दुर्योधन, न न न, मामा जी सहित, यदि
,डवों का पता लग सके, तो आधा राज्य दे देंगे । क्यों पुत्र !

दुर्योधन—जी, हाँ !

द्रोण—यह ठीक ठीक सोच लो !

शकुनि—अवसर आने पर जान लूँगा !

द्रोण—क्यों गांगेय जी !

भीष्म—(स्वगत)

प्रकटित जो आचार्य हैं, करते हर्ष महान ।

छलित दुर्योधन ने छला इनको—पड़ता जान ॥१४॥

(प्रकट) पौत्र ! दुर्योधन ! विराट मेरा छिपा हुआ शत्रु है; और
वह आपके यज्ञ में भी सम्मिलित नहीं हुआ !—इसलिए उसकी
गाँव हर लो ।

द्रोण—(एक ओर से) गागेय जी ! श्रीमान् विष्णुर्ग
मेरे प्रिय शिष्य हैं । उनकी गाथों को हरने से क्या प्रयोजन है।

भीष्म—(एक ओर से) ऐ ऋजु बुद्धि ! ब्राह्मण !

होगे पाण्डव कुपित अति, सुनकर रथ रथ घोर ।

इष्ट-सिद्धि गो द्रव्य में, वे कृतज्ञ सिरमौर ॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । नगर में सीधा प्रवेश कर
लिए रथ तैयार हैं ।

दुर्योधन—

हर लो सत्वर धेनु सय, इन्हीं रथों के साथ ।

यह शात अपनी गदा, एकदूँगा फिर हाथ ॥१६॥

द्रोण—

तो रथ मेरा लाओ पुरुषो !

शकुनि—

हाथी मेरा भी लाओ ;

कण—

भारार्थ सुसज्जित, दण्ड गण सज्जित ,

रथ मेरा ले आओ ।

भीष्म—

विराट-पुर जाने को उत्सुक—

मन मम, धनु लाओ, जाओ ;

सब—

सेवक हम सब सज्जित, तज धनु

आप यही पर सुख पाओ ॥५७॥

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! हम दोनों युद्ध में तुम्हारा पराक्रम देखने के इच्छुक हैं ।

दुर्योधन—जैसी आपकी इच्छा !

द्रोण—वत्स ! गांधारराज ! इस गो-हरण में पहला रथ तुम्हारा होगा ।

शकुनि—अच्छा, बहुत अच्छी बात है !

(सब का प्रस्थान)

दूसरा अंक

(बृद्ध ग्वाल का प्रवेश)

बृद्ध ग्वाला—मेरी गाँवें सदा बड़कों से युक्त रहें ! गो-
युवतियों मदा मुहागिनी बनी रहें ! हमारे महाराज बिण
मारभौम राजा बनें ! महाराज रिगट के वार्षिक जन्म-जन्म
शुभ अवसर पर, गो-दान के निमित्त नगर-वाटिका के मार्ग पर
आने के लिए गाँवें मजार्ई गई हैं, और ग्वालों के सब बालक
पालिकाएँ, नए नए कपड़े और गहने पहने, आनन्द-मगल मन
रहे हैं ! इनमें से नायक के पास जाकर बातचीत करूँगा । (दखल

न्या कारण है कि, यह कौआ, सूखे हुए वृक्ष पर बैठकर, शुष्क डाली के साथ चोंच रगड़ रगड़ कर, सूर्य की ओर मुँह किए, भीषण गर्जना कर रहा है ! ईश्वर, हमारा और गो-धन का कल्याण करे ! अब मैं, इनमें से नायक के पास जाकर, ग्वालों के बालक और बालिकाओं को बुलाऊँगा ! (घूमकर) अरे ! गोमित्रक ! गोमित्रक !

(गोमित्रक का प्रवेश)

गोमित्रक—मामा जी ! प्रणाम ।

वृद्ध ग्वाला—ईश्वर, हमारा और गो-धन का कल्याण करे ! कल्याण करे !! महाराज विराट के वार्षिक जन्म-नक्षत्र के शुभ अवसर पर, गो-दान के निमित्त, नगर-वाटिका के मार्ग पर आने के लिए गाएँ सजाई गई हैं ! और ग्वालों के बालक और बालिकाएँ—सब के सब—नए नए कपड़े और गहने पहने, आनंद-मंगल मना रहे हैं ! अरे ! गोमित्रक ! ग्वालों के बालक और बालिकाओं को बुलाओ ।

गोमित्रक—जो मामा जी की आज्ञा । गोरक्षिणी ! धृतपिंड ! स्वामिनी ! वृषभदत्त ! कुंभदत्त ! महिषदत्त ! आओ, जल्दी आओ ।

(सब गोप बालक तथा बालिकाओं का प्रवेश)

सब—मामा जी ! प्रणाम ।

वृद्ध ग्वाला—ईश्वर, हमारा और गो-धन का, गोप-बालक

और बालिकाओं का कल्याण करे । कल्याण करे ॥ महार
विराट के वार्षिक जन्म-नेत्र के शुभ अवसर पर, गो-दान
निमित्त, नगर-वाटिका के मार्ग पर आने के लिए गाएँ सज्ज
हैं । आओ, हम तब तक गाएँ और नाचें !

सब—जो मामा जी की आज्ञा ।

(सब नाचते हैं)

बृद्ध ग्याला—ही ! ही ॥ खूब नाचे ! खूब गाया ! अब
भी नाचता हूँ । (नाचता है)

सब—हा ! हा ! मामा जी ! बड़ी धूल उड़ी है !

बृद्ध ग्याला—सिर्फ धूल ही नहीं, शस्त्र और नगाड़ों ।
शब्द भी उठ सजा हुआ !

सब—हा ! हा ! मामा जी ! दिन के चाँद की रोशनी के
साथ सफ़ेद, धूल से ढका हुआ सूरज का गोला, कहीं दीख पड़ा
है, कहीं नहीं ।

गोमित्रक—हा ! हा ! मामा जी ! ये कोई चोर आदमी
थोड़ा-गाड़ी पर सवार होकर, दही के चकत्ते की तरह सफ़ेद छ
लगाए, ग्यालों की बस्ती को रौंदे जा रहे हैं !

बृद्ध ग्याला—ओ हो ! बाण छुटने लगे ! लड़को ! लड़को
मट पड़ पड़ों में घुम जाओ ।

सब—जो मामा जी की आज्ञा ।

(सब का प्रस्थान)

वृद्ध ग्वाला—हा ! हा ! ठहरो, ठहरो । 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो'—यह वृत्तांत महाराज को सूचित करेंगे ।

(प्रस्थान)

प्रवेशक

(भट का प्रवेश)

भट—ऐ ऐ ! सूचित कर दो, सूचित कर दो महाराज विराटेश्वर को—चोरों के समान बहादुरी दिखाने वाले कौरव गाँव हरे ले जा रहे हैं ! क्योंकि,

हैं भग रहे बछड़े तथा हैं पा रही गाँव व्यथा ,
हा ! साँड लख लख हो रहे भयभीत-मुख हैं सर्वथा ।
इस भाँति हाहाकार चारों ओर गो-कुल कर रहा ,
हा ! शोचनीय बना यहाँ दुख-जलधि में है तर रहा ! ॥१॥

(नेपथ्य में)

क्या, 'कौरव'—यह कहते हो ?

भट—आर्य ! जी, हाँ !

(कचुकी का प्रवेश)

कचुकी—भाइयों से भी द्रोह करने वालों के लिए यह ही है। ये, सचमुच,

कर बाँध गोघा अगुनित, सन्धाप, बल ढँडे हुए,
होकर सुसज्जित निज रथों पर, कवच धर, बैठे हुए।
हैं अस्त्र-विद्या में निपुण जो, युद्ध को तैयार हैं,
नृप शत्रुता का घेनु कुल में कर रहे प्रतिकार हैं

जयसेन ! महाराज जन्म-मृत्यु-भवधी कार्य में लगे हुए
इसलिए, बिना अवसर सूचना देने से वे शत्रु हो जाएँगे।
मैं पुरण्य दिन के काम की समाप्ति पर ही निवेदन करूँगा।

भट—आर्य ! यह काम विलय करने का नहीं है, जल्दी
सूचित कर दो।

कचुकी—अभी सूचित किए देता हूँ।

(राजा का प्रवेश)

राजा—

धिकार ! रथ के शब्द से डर, वत्स-गण करके त्वरा—
है भग रहे जिसके, अहो ! वह धेनु-कुल जाता हरा !
अतिपीन कंधों से सजा, चंदन-सुशोभित जो तथा ,
चंचल-वलय कर ढीठ मेरा भोगता कर सर्वथा ! ॥३॥

जयसेन ! जयसेन !

(जयसेन का प्रवेश)

भट—जय हो, जय हो, महाराज की ।

राजा—मुझे महाराज मत कहो । मेरा क्षत्रियत्व जाता रहा ।
का सविस्तर वर्णन करो ।

भट—महाराज ! अप्रिय बातों को विस्तारपूर्वक नहीं कहना
यह संक्षेप है—

गायों के वस एक-से, रथ-रज से सब अंग ।

कशाघात में दीखते, रंग-विरंगे रंग ॥४॥

राजा—तब तो,

शीघ्र धनुष तुम मेरा लाओ,

लाओ रथ भी वीर !

भक्ति हृदय में जिसके, मेरे—

साथ चले रण-धीर ॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ।

राजा—अब दुर्योधन क्या कर रहा है ?

भट—केवल दुर्योधन ही नहीं, पृथिवी पर के सारे राजा हैं ।

द्रोण, भीष्म, कृप, शकुनि और कर्ण, जयद्रथ, शल्य ।

चंचल-पट रथ-केतु से देते शल्य, न शल्य ॥११॥

राजा—(उठकर, हाथ जोड़कर) क्या पूजनीय गागेय भी हैं ?

भगवान्—(स्वगत) ठीक है, अपमानित होकर भी सदाचार उलंघन नहीं किया ! क्यों,

कुरु-बाबा ये किसलिए, हैं आप इस चार !

स्मरण कराते हों ! मुझे, 'तीर्ण प्रतिज्ञा-भार' ॥१२॥

-कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ।

राजा—सारथि को तो बुलाओ ।

सारथि—जो महाराज की आज्ञा ।

राजा—अथवा, जरा इधर आओ ।

सारथि—राजन् ! यह आगया ।

राजा—

रथ-चालन तुमने न क्यो, किया कुँवर का आज ?

रोका उसने ही तुम्हें, तथा तजा यह काज ? ॥१६॥

सारथि—प्रसन्न हों, महाराज । रथ को भली भाँति सजाने के बाद मैं सारथी के योग्य आचार के साथ, उनके पास गया था । किंतु, कुँवर जी ने,

वाल-खेल ! कौशल लखा, उस में तथा ललाम !

वृहन्नला को, तज मुझे, साँपा सारथि-काम ॥१७॥

राजा—क्या वृहन्नला को ?

भगवान्—राजन् ! घबराइएगा नहीं ।

यदि धूलि-वितान से ढकी,

रथ-आसीन वृहन्नला गई ।

क्षण मे रथ नेमि-शब्द से-

रिपु जीते, शर-वृष्टि-हीन ही ॥१८॥

राजा—तो शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो ।

सारथि—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(भट का प्रवेश)

भट—बुँवर जी के रथ का आगे बटना रोक दिया !

राजा—क्या आगे बटना रोक दिया ?

भगवान्—क्या अब आगे बटना रोक दिया ?

भट—मुन सकते हैं, महाराज ।

रथ पट्ट हथ पथ में डटे, रिपु मण जब घनघोर ।

परिमर पर घन लोम से, रथ श्मशान की ओर ॥१॥

भगवान्—(स्वगत) आ ! यहाँ गाड़ीय है । (प्रकट) ठे शत्रु !

रथ श्मशान की ओर जो, समझो शत्रुन महान ।

घातराष्ट्र अब हैं जहाँ, होगा वही श्मशान ॥२॥

राजा—भगवन् ! बिना अवसर के शुभ-सूचक वचन
अप्यप्र करता है ।

भगवान्—क्रोध मत कीजिएगा । मैंने कभी पहले
नहीं बोला !

राजा—हाँ ! यह ठीक है ! जाओ, फिर समाचार मालूम करो !

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

राजा—

कंपित-सी जिससे धरा, सहसा शब्द महान ।

कौन नदी-सम वक्र यह, क्षण क्षण में ध्वनमान ! ॥२१॥

देखो, कैसा शब्द है ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । श्मशान में पहुँच कुछ देर
घोड़ों के विश्राम कर चुकने पर कुँवर जी ने तो,

भगवान्—यह मुझे झूठा न सिद्ध कर दे !

राजा—क्या किया राजकुमार ने ?

भट—

शर मार सौ सौ नील हाथी लाल रंग में हैं रंगे !

है कौन हय, भट वा न जिरुके बाण सौ तन में लगे !

शर-विद्ध रथ-वर हैं हुप शर-जाल से निश्चल अहा !

पथ रुद्ध बाणों से, धनुष शर-धार उग्र बहा रहा ! ॥२२॥

भगवान्—(स्वगत)

ये अक्षय तूर्णर हैं जिनसे खाडव दाह—
घाराएँ जितनी, तजा उतना बाण प्रगाह ॥२३॥

राजा—अच्छा तो शत्रुओं के विषय में अब समाचार है ?

मट—मैं प्रत्यक्ष-रूप में उनके विषय में कुछ नहीं
किंतु, सवाददाता कहते हैं—

घनुष घोष यह वही' इसी से
द्रोण न लड़ता है पदचान
'उचित न रण' यह सोच मीप्स भी,
शात हुआ लख ध्वज पर बाण ।
मग्न मनोरथ कण शरों से,
'क्या यह ! सत्र नृप करते ध्यान
अभिमन्यु मयकर रण में जूझा,
बालक तनिक न मय को मान ॥२४॥

भगवान्—क्या अभिमन्यु आया है ? ऐ राजन् !

लड़ता यदि भीमद्र है, पुल युग तेज अनय !

एहप्रस्ता लाचार है, भेजो साराधि अन्य ॥२५॥

राजा—नहीं, आप ऐसा न कहें !

अचल-कवच जो राम-शरों से-

भीष्म, द्रोण मंत्रायुध धन्य !

कर्ण, जयद्रथ विचलित करके,

उन उन राजाओं को अन्य !

क्या न पिता के भय से करता,

धर्षण उसका शर-गण मार !

सख्य-भाव-समुचित सम-वय की,

करे सखा भी यों रखवार ! ॥२६॥

भट—कुँवर जी का यह रथ,

है रोकने पर घूमता अति, छोड़ने पर भागता,

पाकर समय लंघन तथा परिभव न करना चाहता ।

चंचल समीप-स्थान में, चारों तरफ भगता अहा !

इस भौंति मानों रथ कुँवर का योग्य-शिक्षा दे रहा ! ॥२७॥

राजा—जाओ, फिर समाचार मालूम करो ।

भट—जो महाराज की आज्ञा । (बाहर जाकर, लौटकर)

जय हो, महाराज की । जय हो, विराटाधिपति की । कुँवर जी ने गो-हरण पर विजय प्राप्त कर ली । कौरव भाग गए ।

भगवान्—सौभाग्य से, आपकी वृद्धि हो रही है ।

राजा—नहीं, नहीं; यह भगवान् की ही वृद्धि है । अच्छा तो, अब कुँवर जी कहाँ हैं ?

भट—कुँवर जी, जिन योद्धाओं को उद्धोंने रण में मरते देखा है, उनके कारनामे पुस्तक में लिख रहे हैं।

राजा—अहो ! राजकुमार सचमुच प्रशसनीय काम कर रहे

कर विश्रम जो समर में, भट पाता व्रणजाल।

हरता उसकी वेदना, सत्वर ही सत्कार।

अच्छा तो वृद्धनला अब कहाँ हैं ?

भट—प्रिय सूचना देने के लिए भीतर गई हैं।

राजा—वृद्धनला को तो बुलाओ।

भट—जो मशायर की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(वृद्धनला का प्रवेश)

वृद्धनला—(देखकर विचारपूर्वक)

धनुष स गुण करने को करता—

या मैं कुछ क्षण यज्ञ मदान !

कुछ क्षण याण चलाने, लेने—

मैं भी मुष्टि न थी बलवान !

येएन पड़ता नष्ट हुई था,

ठीक न कुछ क्षण या सस्थान, !

अबला-वेश-निवास-शिथिल फिर,
निजका पीछे आया ध्यान ॥२६॥

क्योंकि, मैंने,

स्त्री-वेश धारी नृप-मध्य में हा,
सलज्ज हो के निज चाप खींचा ।
तथापि यात्रा शर-वृष्टि में थी,
थी रक्त-भीगी रज भूमि-लीना ॥३०॥ ?

अजी !

मैं जीत धेनु, जय भी कर भूप सारे,
मानूँ न हर्ष अपने मन में ज़रा भी ।
जो युद्ध में रिपु दुशासन को विना ही—
बोधे विराट-पुर में अब आगया हूँ ॥३१॥

उ त्तरा के प्रीतिपूर्वक दिए हुए इस अलंकार को पहने हुए मुझे
राजा से मिलने में लज्जा-सी प्रतीत होती है । अच्छा तो विराटेधर से
मिलता हूँ । (घूमकर, देखकर) अये ! ये आर्य युधिष्ठिर हैं ।

युवा तपस्वी तप ते वनांत में,
नरेश भी ब्राह्मण-वृत्ति धारते ।
विशोभि श्री से अति राज्य-हीन भी,
त्रिदंड-धारी नहीं दंड धारते ॥३२॥

(सर्वांग जञ्जर) भगवान् ! प्रणाम ।

भगवान्—स्वस्ति ।

शूद्रधत्ता—जय हो, भर्ता जी की ।

राजा—

शुलानता हेतु न हेतु रूप है

मदान हो नीच, प्रधान कम है ।

अहो ! इसी का अपमान था किया

सु मान मागी अब रूप है बही ॥३३॥

बूढ़ने ! यही हुरे भी तुम्हें मैं फिर कर दूँगा । मुँह
मविस्तर बणन करो ।

शूद्रधत्ता—मुने भर्ता जी ।

राजा—आनसा कम है । ससृज में कहो ।

शूद्रधत्ता—मुन ससृते हैं, महायज्ञ ।

(मन्त्र का प्रसार)

भट्ट—जय हो, महायज्ञ की ।

राजा—

सब पड़ने दारिद्र्य पड़े, कहो चरित क्यों आन ?

भट—

‘कैद हुआ अभिमन्यु’ यह प्रिय अर्चित्य नृपराज ! ॥३४॥

बृहन्नला—क्या पकड़ा गया ? (स्वगत)

यह नृप-बल मैंने आज जॉचा गिना है ,
फिर वह उसका भी शौर्य मैंने लखा है ।
सदृश न उसके है ‘सैन्य’ मे वीर कोई ,
फिर अब मरने से कौन हो कीचकों के ! ॥३५॥

भगवान्—बृहन्नले ! यह क्या है ?

बृहन्नला—भगवन् !

न जाने जेता कौन, वह शिक्षित औ बल-धाम ।
पकड़ा भी वह जा सके, जनक-भाग्य यदि वाम ! ॥३६॥

राजा—वह अब कैसे पकड़ा गया ?

भट—

अहो ! उतारा यान चढ़, धर निज बाहु ललाम ।

राजा—किसने ?

भट—

सौपा है नृपराज ने, जिसे महानस-काम- ॥३७॥

शृङ्गला—(एक ओर का) इस प्रकार आप मीन ने रुद्र
आलिंगन किया है ! पकड़ा नहीं गया !

तब अहो ! हम ये हुए, पा यस दर्शन-योग ।

प्रकट उ-होने पा लिया, पुत्र प्रेम का भोग ॥३८॥

राजा—अच्छा तो सत्कारपूर्वक अभिमन्यु को लिवा लाओ।

भगवान्—हे राजन् ! ससार यह समझेगा कि—यादवों तथा
पाण्डवों से रक्षित अभिमन्यु का सत्कार उनके भय से किया है
इसलिए, इसका तिरस्कार करना ही ठीक है ।

राजा—यादवी-पुत्र तिरस्कार का भाजन नहीं हो सकता !
क्योंकि,

हे यह युधिष्ठिर-भूत, सम-वय पुत्र के मम सर्वथा ,

सम-वय हैं मैं हुएद का है दोहता इससे तथा ।

होगा जमार शीघ्र ही, क्या-जनक कहते हमें ,

हे पूज्य अभ्यागत यथा धन इष्ट पाण्डव हैं हमें ॥३९॥

भगवान्—आप ठीक कहते हैं । हमें ऐसा कहना भी चाहिए
या और उसका परिहार भी होना चाहिए या ।

राजा—अच्छा तो इसे कौन लिवाकर लाए ?

भगवान्—शृङ्गला लिवा लाए !

राजा अभिमन्यु को लिवा लाओ ।

बृहन्नला—जो महाराज की आज्ञा । (स्वगत) मुझे अपनी रकालीन प्रार्थना के अनुकूल काम मिला है ।

(प्रस्थान)

भगवान्—(स्वगत)

वस, आज इसको इस समय निज-पुत्र का दर्शन मिले !
लखकर विजन में और उसका गाढ़ आर्लिगन मिले !
स्वच्छंद होकर छोड़ दे आनंद-वाष्पों की लड़ी !
प्रत्यक्ष इस व्यापार में आती इसे लज्जा बड़ी ॥४०॥

राजा—आप राजकुमार की बहादुरी देखिएगा !

जीते नृप भीष्मादि सब, कैद सुभद्रा-बाल ।
उत्तर ने संक्षेप में, जीती भूमि विशाल ॥४१॥

(भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—

घर भुज जननी बंधुगण, जतु-गृह-ज्वाला-काल ।
तुल्य श्रान्त रथ से उठा, आज सुभद्रा-बाल ॥४२॥

इधर को, इधर को, राजकुमार !

(अभिमन्यु तथा वृद्धमत्ता का प्रसंग)

अभिमन्यु—अरे ! यह कौन है !

उर विशाल, सुंदर उदर, स्कन्ध पीन, कटि क्षीण
महाजघ, धर मुज, सचल, लाया, किया दुस्ती न

वृद्धमत्ता—इपर को, इपर को, राजकुमार !

अभिमन्यु—अये ! यह दूसरा कौन है !

जो अनुचित स्त्री-वेश में, गज ज्यों दधिनी रूप ।
यल महान लघु घसन से, हर ज्यों

वृद्धमत्ता—(एक ओर को) इसको यहाँ लाकर आर्य ने
यह क्या किया ?

‘प्रथम समर द्वारा’ दोष मागी बनाया,
त्रिय-सुन रहिता दा । शोचनीया सुमद्रा ।

समस्त ‘जित इसे धीरुष्ण भी कुछ होंगे,
बहुन बस कहूँ क्या, बाहु दोषी बनाए ॥३५॥

भीमसेन—अजुन !

वृद्धमत्ता—जी हों ! जी हों ! यह अजुन-पुत्र है !
(एक ओर को)

सकल ग्रहण के ये दोष मैं जानता हूँ,
निज सुत सहता है कौन वा शत्रु-बंदी !
पर, प्रिय-तनया जो भोगती दुःख भारी,
द्रुपद-नृपति-वाला देख ले, तात ! लाया ॥४६॥

बृहन्नला—(एक ओर को) आर्य ! मुझे इससे बातचीत करने
वड़ी भारी उत्कंठा है । आर्य इसे बोलने के लिए प्रेरित करें !

भीमसेन—अच्छा । अभिमन्यो !

अभिमन्यु—‘अभिमन्यु !’—सचमुच !

भीमसेन—यह मुझ से रूढ़ होता है । तुम्हीं इससे बात-

बृहन्नला—अभिमन्यो !

अभिमन्यु—क्यों, क्यों ! मैं ‘अभिमन्यु’ हूँ !—सचमुच ! ओह !

नीच पुरुष भी क्या कभी, लेते क्षत्रिय-नाम ?

देश-रीति, वा वंदि का यह परिभव उद्दाम ? ॥४७॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! क्या तुम्हारी माता सकुशल है ?

अभिमन्यु—क्यों, क्यों ! माता के विषय में पूछते हो ?

धर्मराज क्या भीम तुम, अथवा अर्जुन तात ।

पितृ-सम स्वर में पूछते, जो मुझसे खी-यात ? ॥४८॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! क्या देवकी-पुत्र कृष्ण कुशलपूर्वक हैं ?

अभिमन्यु—क्यों, उनका भी नाम लेते हो ? जी, हाँ !
जी, हाँ ! कुशलपूर्वक है—आपका बहुत !

(दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं)

अभिमन्यु—आप लोग क्यों अब मेरी हँसी उड़ा रहे हैं ?
शृङ्गला—क्या कुछ भी कारण नहीं ?

पार्थ जनक, मातुल तथा मधुसूदन, सुकुमार !
अरु निपुण क्या युवक की समुचित रण में हार ?

अभिमन्यु—बद करो—व्यर्थ ही बक्वाद !

निज स्तुति करना है नहीं, कुल में मम सौजन्य !
शत्रु-बाण में शर-बाण लखो, नाम न होगा अन्य ॥

शृङ्गला—(स्वगत) कुमार ने ठीक कहा ।

रथ, अभ्युत्थान, मदमत्त हाथी, शूर शोभित ये जहाँ,
किसको न शर विधा निपुण ने समर में बाँधा यहाँ !
करता मुझे भी बाण से निज बाल धायल शीघ्र ही,
रथ को न अपने फेरता मैं शीघ्रता से जो कहीं ॥

(प्रष्ट) ऐसी अभिमान भरी बात ! फिर उस पैदल ने
पकड़ लिया ?

अभिमन्यु—

शस्त्र-हीन आया निकट, इससे हुआ गृहीत ।

अशस्त्र को क्यों मारता, कर पितृ-स्मरण पुनीत ? ॥५२॥

भीमसेन—(स्वगत)

जिसने संमुख ही सुना, रण मे शौर्य अनन्य—

निज सुत का अपना तथा, है वह अर्जुन धन्य ! ॥५३॥

राजा—जल्दी लाओ, जल्दी लाओ अभिमन्यु को ।

बृहन्नला—इधर को, इधर को, राजकुमार ! ये महाराज हैं ।
राजकुमार पास चले जाएँ !

अभिमन्यु—आः ! किसके महाराज ?

बृहन्नला—न न न ! ब्राह्मण के साथ बैठे हैं !

अभिमन्यु—क्या ब्राह्मण के साथ ? (पास जाकर) भगवन् !
प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—आओ, आओ, वत्स !

जो धीर वीर विनीत करुणा-युक्त निज-जन में तथा ,

है जो प्रियंवद तेजधारी धनुष-विजयी सर्वथा ।

हों एक ही ये जनक के गुण प्राप्त तुमको शीघ्र ही !

बस, शेष चारो में तुम्हें जो भी रुचे पाओ वही ! ॥५४॥

जरासंध को बाँध के, बाहु कंठ में डाल ।

मार उसे वंचित किया, उससे वह नंदलाल ॥५७॥

राजा—

कुपित न निंदा-वचन से, सुख देता तव रोष ।

‘क्यों खड़ा, भग जा’—कहूँ यदि मैं, मिले न दोष ? ॥५८॥

अभिमन्यु—यदि मुझ पर अनुग्रह ही करना है तो,

बंदी-समुचित वेड़ी मेरे-

चरण-युगल में तुम डालो ।

ले जायगा भीम भुजा से ,

हे भुज से हरने वालो ! ॥५९॥

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—

मिथ्या प्रशंसा अति कष्ट देती ,

मिथ्या-प्रशंसा-रत बंदियों की ।

देते मुझे ये रण की बड़ाई ,

देता ‘हुँकारी’ मन मैं लजाता ॥६०॥

(पास पहुँच कर) भगवन् ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—स्वस्ति ।

उत्तर—पिता जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ आओ, पुत्र ! चिरजीवी होओ । पुत्र ! साहसी योद्धाओं का सम्मान कर चुके ?

उत्तर—जी, हाँ, उनका सम्मान हो चुका । अब ,
की पूजा कीजिएगा ।

राजा—पुत्र ! किसकी ?

उत्तर—इन पूजनीय धनजय की !

राजा—क्या धनजय की ?

उत्तर—जी, हाँ ! पूजनीय इन्होंने,

धनु , अक्षय याण युक्त ला—
निज तूणीर श्मशान से अहो !
रण में कर मग्न थे सभी—
नृप भीष्मादि, हथें पचा लिया । ॥६१॥

राजा—ऐसी बात है !

शूद्रभला—दया करें, दया करें, महाराज ।

अति व्यग्र स्व-बाल भाव से ,
लड़ता भी निज को न जानता ।
शुद्ध ही कर काम भी सभी ,
पर का ही उसको बखानता ॥६२॥

उत्तर—आप अपनी शंका दूर कर लें ! यह, ठीक ठीक बता
 देगा—

गांडीव-डोरी-कृत चिन्ह सूखा ,
 प्रकोष्ठ में जो इनके छिपा है ।
 सवर्णता को जिसने न पाया—
 प्रकोष्ठ की बारह वर्ष में भी ॥६३॥

बृहन्नला—

रुकने से यह चलय के, होकर मलिन महान ।
 फिर फिर फिरने से हुआ, चिन्ह प्रकोष्ठ-स्थान ॥६४॥

राजा—जरा देखें तो !

बृहन्नला—

भिन्न-देह यदि रुद्र-बाण से ,
 पार्थ में भरत-वंश में हुआ !
 स्पष्ट तो नृपति ! आज जान लो ,
 भीमसेन, नृप धर्मराज ये ॥६५॥

राजा—ऐ धर्मराज ! वृकोदर ! धनंजय ! क्यों आप लोग

मेरा विश्वास नहीं करते ? अच्छा अच्छा ! समय आने पर सही
बुझने ! तुम भीतर जाओ ।

शुद्धभला—जो महायज्ञ की आशा ।

भगवान्—अर्जुन ! नहीं, भीतर मत जाओ । हमारी प्रति
पूण हो चुकी ।

अर्जुन—जो आशा, आर्य की ।

राजा—

सत्य-सध अति धीर जो, प्रण पालक निष्पाप—
पादव जन के पास से, नष्ट हुए कुल पाप ॥६॥
अभिमन्यु—यहाँ पूजनीय मेरे पिता हैं ! ठीक इसी नि

निंदित भी ये क्षुपित न होते ,
हँस उलटा देते ताना !
धेनु द्रवण भी अच्छा, जिससे
पितृ-पद-दशन मनमाना ॥६७॥

(मामनेन अ लक्ष्य करव) ते तात !

अभियादन मैंने न जो, किया प्रथम अनजान ।
सुत के उस अपराध को, करदो क्षमा प्रदान ॥६८॥

भीमसेन—आओ, आओ, बेग ! अपने पिता जी के हुए
परश्वर्मी बनो !

अभिमन्यु—अनुगृहीत हूँ ।

भीमसेन—पुत्र ! पिता जी को अभिवादन करो ।

अभिमन्यु—पिता जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

अर्जुन—आओ, आओ, वत्स ! (छाती से लगाकर)

मन-सुखदायी यह वही, पुत्र-अंग का स्पर्श !

नष्ट जिसे फिर पा लिया, पीछे तेरह वर्ष ॥६६॥

पुत्र ! महाराज विराटेश्वर को अभिवादन करो ।

अभिमन्यु—मैं प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ, आओ, वत्स !

पाओ युधिष्ठिर-धैर्य तुम, बल भीम अद्भुत वीर का ,

पाओ समर-कौशल तथा तुम पार्थ उसरण-धीर का ।

सुंदर नकुल-सहदेव-सम उनके सदृश विद्वान हो !

उन लोक-प्रिय श्रीकृष्ण जैसी प्राप्त कीर्ति महान हो ॥७०॥

(स्वगत) किंतु, उत्तरा के साथ अत्यंत परिचय मुझे विकल कर रहा है ! अब, कैसे करूँगा ! अच्छा, सोच लिया ! (प्रकट)
कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ।

राजा—पानी तो ले आओ ।

भट्ट—जो महाराज की आज्ञा । (बाहर आकर लौटकर)
यह लीजिएगा पानी ।

राजा—(लेकर) अजुन ! गो-हरण विजय के पारितोषिक
के रूप में उत्तर को स्वीकार करो ।

भगवान्—यह—कलक लग गया !

अजुन—(स्वगत) क्या मेरे चरित्र की परीक्षा कर रहे हैं !
(शब्द) ठे राजन् !

किया सभी रनवास का, जननी-सम सत्कार ।

अर्पित जो यह उत्तरा, सुत-हित है स्वीकार ॥७५॥

युधिष्ठिर—यह—कलक दूर हो गया !

राजा—

रण-वीरों के चरित में, पाया जिसने नाम ।

अथ अत पुर वास के, योग्य किं सय काम ॥७६॥

आज ही शुभ नक्षत्र है । आज ही हमका विवाह होजाना चाहिए !

युधिष्ठिर—बहुत अच्छा ! पितामह जी के पास उत्तर को
भेजे देते हैं ।

राजा—जैसी आपकी इच्छा हो ! धर्मराज ! वृकोदर ! धनं-
जय ! इधर को, इधर को, आप लोग । इसी महान हर्ष के साथ
भीतर चलते हैं ।

सब—बहुत अच्छा ।

(सब का प्रस्थान)

तीसरा अंक

(सारथि का प्रवेश)

सारथि—अरे ! सूनित करदो, सूचित करने—सब क्षत्रियों को, जिनके कि सेनापति सब क्षत्रियों के आचार्य होण हैं, कि—

यस भूलकर मगधान के उस क्षत्र के मय को तथा ,
द्विर-लुप्त कर उन पाइयों का भी परामय सवथा ।
रक्षा न जिसकी कर सके कौरव धनुषारी अहो ,
अमिमंयु को दे हर लिया, लज्जा बड़ी भारी अहो । ॥१॥

(भीष्म, और द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—सारथि ! कहो, कहो !

रण में निपुण अभिमन्यु को हर कौन अपराधी बना ,
है कौन रण में चाहता मम दिव्य शर से खेलना ?
था कौन वह नर-श्रेष्ठ, कैसा अस्त्र, बल उसका अहो ,
भेजूँ वही बलवान शर-गण-दूत मैं अपने, कहो ! ॥२॥

भीष्म—सारथि ! कहो, कहो !

दोष यही जो द्वार समर में भगना नहीं जाने ,
यौवन-मद में भ्रूम वही रहने की ठानें ।
गज-ग्रहण-समुद्यत किसने यह सहसा आ के ,
पकड़ा कलभ, यूथ के भगने पर, अवसर पा के ? ॥३॥

(दुर्योधन, कर्ण और शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—सारथि ! कहो, कहो ! अभिमन्यु को कौन हर
ले गया ? मैं ही उसे छुड़ाऊँगा । क्योंकि,

कुल-रिपुता इसके पितरों से मैंने ठानी ,
दोष मुझे ही इससे देंगे सब जन शानी ।
किंतु, प्रथम वह मम सुत, पीछे पांडव-गण का ,
कुल-विरोध में क्या कसूर है बालक-जन का ! ॥४॥

कर्ण—आपने अत्यंत प्रेममय और अपने अनुरूप रक्त कहा है ! गांधारी-पुत्र !

स्व-जन भीति से, पुत्र प्रेम से मत तुम ठानो—
उसे छुड़ाने की, निज हित रण-वदी जानो ।
रक्षित वह अभिमन्यु नहीं हा ! हमसे अपना ,
घारो बल्कल, त्याग धनुष का अब तो सपना ॥३॥

शकुनि—सौमद्र के अनेक रक्त हैं । उसे छुटा हुआ है
समझो । क्योंकि,

अर्जुन-सुत—यह जान विराट नरेश्वर तज दे ,
रण-वदी उमे याद कर दामोदर तज दे !
तज दे कुपित हस्ती से मघया वह मय खा के ,
बली भीम या ले आए कर अरि-वध जा के ! ॥४॥

द्राण—सारथि ! कहो, कहो ! वह अब कैसे पकड़ा गया !

उलटा रथ क्या ! घोड़े बिगड़े ?

चक्र हुआ या पृथिवी लीन !

बाण-रक्षित तरकस ! तुम भूले ?

विफल हुआ धनु वा गुण हीन ?

विधि-वश पाते हैं सब रण में,
रथी अहो ! ये निग्रह-स्थान !
अरि वश चाणो से भी करते,
पर वह युद्ध प्रवीण महान ? ॥७॥

सारथि—राजन् ! वे पुरुष-वेश-धारी साक्षात् धनुर्वेद हैं ।
क्या महाराज नहीं जानते ?

दोष नहीं इन में था कोई,
जो कुछ भी कहते हैं आप ,
महारथी वह भी शर वरसा
दिखलाता था प्रबल प्रताप ।
अलात-चक्र-समान चमकते
रथ को परंतु हा ! मेरे ,
आकर सहसा पैदल ने ही
पकड़ा, जब लेता धीरे ॥८॥

सब—क्या पैदल ने ?

द्रोण—अच्छा तो, वह पदाति किस प्रकार का था ?

सारथि—क्या वर्णन करूँगा—उसके रूप अथवा पराक्रम का !

भीष्म—स्त्रियों के रूप का और पुरुषों के पराक्रम का वर्णन
किया जाता है । इस लिए उसके पराक्रम का वर्णन करो ।

सारथि—राजन् !

दुर्योधन—

स्तुति क्यों करते दूत ! किसी की,
कहकर गर्वित बात ?
बढ़ दो, मुझको आस नहीं, यदि—
बढ़ जब मैं सम-घात ॥६॥

सारथि—सुन सकते हैं, महाराज । उसने, सबमुच,

तज निज जब से पीछे घोड़े,
पकड़ा कर से अगला भाग ।
फैल गई अश्वों की गरदन,
स्तब्ध हुआ रथ, सका न भाग ॥७॥

भीष्म—तब तो हथियार डाल दो ।

सद्य—किस लिए ?

भीष्म—

यदि कर भुज से ही घेग से हीन रोका—
रथ, तब समझो है गोद में भीष्म की ही ।
जब जयद्रथ ने दा । द्रौपदी को हरा था,
तब पद-चर ने ही भीष्म जीता उसे था ॥८॥

द्रोण—गांगेय जी ठीक कहते हैं। मैं बचपन से ही, उसे पढ़ाने के समय से लेकर, उसके वेग को जानता हूँ। क्योंकि, शस्त्र-शाला में,

खींच कान तक उसने छोड़ा—
शर जब, 'कंपित शीश' कहा—
मैंने, भग तब वाण-सदृश ही
लक्ष्य-हीन वह वाण गहा ! ॥१२॥

शकुनि—अहो! कैसी हँसी की बात है! अजी! मैं आपसे यह पूछता हूँ—

और न जग में क्या बली, कहते प्रिय-गुण-जात।
क्या जग-न्यापक देखते, पांडव-गण को तात ? ॥१३॥

भीष्म—गांधारराज! सब कुछ अनुमान से कहा जाता है।

जाते ले धनु शस्त्र हम, रण में, चढ़कर यान।
भुज-युग ले दो ही गए—भीम, हली बलवान ॥१४॥

शकुनि—

सहसा हम सब एक ने, जीते साहसि राज।
उत्तर को भी उस कहे, कुछ जन अर्जुन आज ! ॥१५॥

द्रोण—गांधारराज! क्या इसमें भी आपको कुछ संदेह है ?

उत्तर भी क्या खींचे रण में,
 धनुष वज्र ध्वनि घनघोर ?
 उत्तर के भी बाणों ने क्या,
 ढके किसी क्षण रवि के छोर ? ॥१६॥

भीष्म—गांधारी-पुत्र ! मैं स्पष्ट कहे देता हूँ। क्या तुमने

बाण लिखित वचन से, जिनका
 गुण रसना आख्यान किया—
 नहिं जाना ? अर्जुन ने खींचा—
 धनुष, न तुमने ध्यान दिया ? ॥१७॥

(सारथि का प्रवेश)

सारथि—जय हो, महाराज की। शांति-क्रम का
 कीर्तिगाथा ।

भीष्म—किस लिए ?

सारथि—

तुमको यह शांति योग्य थी—
 पहले ही, जब बाण धा लगा—
 प्यज में, यह बाण, पुल्ल वै—
 पड़ लो नाम किसी सुवीर का ॥१८॥

भीष्म—ले आओ ।

(सारथि बाण समीप ले जाता है)

भीष्म—(बाण हाथ में लेकर, देखकर) वत्स ! गाधारराज ! मेरी दृष्टि बुढ़ापे के कारण मंद पड़ गई है । इस बाण पर क्या लिखा है, बाँचो ।

शकुनि—(बाण हाथ में लेकर, बाँचकर) अर्जुन का । (यह कहकर फेंक देता है और द्रोण के चरणों में गिर पड़ता है)

द्रोण—(बाण हाथ में लेकर) आओ, आओ, वत्स !

करने यह भीष्म-वंदना
शर फेका मम शिष्यने अहो !
करने फिर वंदना मम
चरणों में गिर भूमि चूमता ॥१६॥

शकुनि—नहीं जी ! बाण में विश्वास मत करो ।

योद्धा अर्जुन नाम था, छोड़ा जिसने बाण ।
उत्तर से भी स्पष्ट ही, ले लो लेख-प्रमाण ॥२०॥

दुर्योधन—

देने को यदि राज्य वह, लिख दे झूठा लेख !
दूंगा आधा राज्य मैं, तभी युधिष्ठिर देख ॥२१॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । विराट नगर से हूँ
है ।

दुर्योधन—लिवा लाओ ।

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—

अल्प भाग, अति वेग अश्व भी,
पात ने फिर विलस है किया ।
पाय बाण-दत्त हस्ति-वृद्ध से,
दुःख से दम चलें, पटी घरा ॥२॥

(भीतर आकर हाथ जोड़कर) अजी । मैं आचार्य तप
वितामद-मदित सपूर्ण राज-महल को अभिवादन करता हूँ ।

सब—चिन्तनीय बनो ।

द्रोण—महाराज विराटेश्वर क्या कहने हैं ?

उत्तर—मुझे महाराज विराटेश्वर ने नहीं भेजा ।

द्रोण—तो तुम्हें किसने भेजा है ?

उत्तर—महाराज युधिष्ठिर ने ।

द्रोण—धर्मराज ने क्या कहा है ?

उत्तर—सुनिष्ठा,

उत्तरा नव-वधू मिली हमे ,

मैं नरेंद्र-गण-वाट जोहता ।

हो वहीं, अथ यहीं ? कहों, कहो ,

हो विवाह यह कौन स्थान में ? ॥२३॥

शकुनि—वही, वही ।

द्रोण—

इस विध पांडव-गण का हमने पता लगाया ,

‘पंचरात्र’ का काल अभी भी चीत न पाया ।

विधिवत् जिसको प्रथम दिया था तुमने प्यारे !

धर्म-सहित दो भीख वही आँखो के तारे ! ॥२४॥

दुर्योधन—

पांडव-गण को राज्य मैं, देता पूर्व-समान ।

सत्य रहे यदि, नर रहें होकर भी निष्प्राण ॥२५॥

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	विराट	विराट
५	५	पहला	तीसरा
१६	५	दुर्योधन	द्रोण
१६	६	द्रोण	दुर्योधन
३४	१५	वन-भूमि	वन-भू
४३	१३	उत्तरा	उत्तरा

मोतीमाला का दसवाँ रत्न



डा० बनारसीदास

गल्प-माला

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गल्पों का संग्रह

संग्रहकर्ता और सम्पादक—

डा० बनारसीदास एम० ए०, पी० एच० डी०

लेक्चरर इन हिन्दी

ओरियंटल कॉलिज, लाहौर

प्रकाशक—

मोतीलाल बनारसीदास

हिन्दी-संस्कृत पुस्तकविक्रेता

सैदमिठा बाजार, लाहौर



दूसरी बार]

सन १९३७

{ मूल्य १।=)
सजिद्ध १॥)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क
भूमिका	
श्री प्रेमचन्द	१-४७
सुजान-भगत	२-२२
ईदगाह	२३-४७
श्री सुदर्शन	४६-६४
प्रेम-तरु	५०-७६
राजा	७७-६४
श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	६५-१३६
राजपूत	६६-११८
मोह	११६-१३६
श्री ज्वालादत्त शर्मा	१३७-१५३
मृत्यु शय्या	१३८-१५३
श्री जैनेन्द्रकुमार 'जैन'	१५५-१७३
फोटोग्राफी	१५६-१७३
श्री चतुरसेन शास्त्री	१७५-१८४
जैसलमेर की राजकुमारी	१७६-१८४
पं० श्रीराम शर्मा	१८५-२०५
स्मृति	१८६-२०५
श्री जयशङ्कर 'प्रसाद'	२०७-२१४
समता	२०८-२१४

भूमिका

पशु पक्षियों को राग-द्वेष आदि मनोभावों को प्रकट करने के लिये एक सकुचित देश, पात्र और काल की सीमा के अन्दर ही रहना पड़ता है। चिड़िया बच्चे जनती है। बच्चे अंडा में ही होते हैं कि वह उनका पालन करने लगती है। बच्चे निकलने पर उनका लालन-पालन करती है। उसे गरमी का दुःख होता है, न सरदी का कष्ट। वे बच्चे ही उसका सार हैं। बच्चे बड़े हुए, उन्हें माता की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे स्वतन्त्र होकर उड़ जाते हैं, साथ ही उड़ जाती है माता (चिड़िया) की मोह ममता। यही हाल पशुओं का भी है।

पर मनुष्य की दशा भिन्न है। मनुष्य का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। अपने कुटुम्ब के बाद उसका क्षेत्र है क्रमशः अपना समाज, देश और मनुष्यमात्र। उसके सुख दुःख में उसे संवेदना होती है। उनका रिचय पाने को वह सदा उत्कंठित रहता है। इस उत्कंठा की पूर्ति कहानियों में होती है। जहाँ हम अपना सुख-दुःख प्रकट करना चाहते हैं वहाँ दूसरों के सुनने के भी उत्सुक रहते हैं। अपने और दूसरों के हाल नना सुनाना ही तो कहानियाँ हैं।

कहानी कहने की प्रथा प्राचीनतम काल से चली आ रही है। मनुष्य मुख में जिह्वा लगने के साथ ही कहानी की उत्पत्ति है। अन्यविषयक बातों का वर्णन करना ही कहानी नहीं, आत्मविषयक घटनाओं को सुनाना ही कहानी है।

संसार के प्राचीनतम साहित्य में भी कहानी अस्तुर किसी न १०
रूप में विद्यमान है । कई लोगों की धारणा है कि श्रुवेद में
आख्यायिकायें लिखी हैं । यह बात निर्विवाद नहीं है ।
गल्पमाहित्य के प्राचीनतम होने में कोई दोष नहीं अतः
विवादस्थान, कुरान, बाइबल में तो कहानियाँ हैं ही, इसमें किसी
विवाद नहीं ।

वैदिक काल के बाद ब्राह्मण साहित्य में जगद् जगद् पर आत्मा
कायें आती हैं । पुराण तो है ही आख्यायिकायें । प्रत्येक समुदाय में
में आख्यान तथा आख्यायिकाओं का स्थान अत्युच्च है । ये साहित्य
महान् और आवश्यक अङ्ग हैं । नाटककारों और कवियों की अपेक्षा
न्यासकारों की संख्या बहुत अधिक रहती है । संस्कृत के
में कवियों की प्रतिभा भी आख्यायिका वर्णन में चमक उठी है ।

हिन्दी के आदि और मध्यकाल में आख्यायिका को साहित्य
स्थान मिल चुका था । बदलमित्र का नासिकेतोषाख्यान अच्छी
है । लल्लूलाल का प्रेमसागर मानों प्रेमसागर है । जायसी ने ब्रज
पदावली की कथा में कथा सुन्दरता से इतिहास और कथना का सं
किया है । लूनी मध्ये न कई आख्यायिकाओं के आधार पर
स्थिर किये हैं । कुछ समय बाद इराजाला खाँ की 'रानी का
निकली । आधुनिक समय में लाला श्रीनिवासदास ने 'परसापुर
राधाकृष्ण दास ने निरुद्धाद हिन्दू पालकृष्ण भट्ट ने नूतन
चारी और 'सो अज्ञान एक सुज्ञान उपन्यासों का निर्माण किया ।
दशरथदास खत्री की चन्द्रकांता और चन्द्रकांता सत्यति एवं चन्द्र
गोस्वामी भिष्मापलात न तो उपन्यासों की जाड़ ही चला दी । इस

कोई सप्ताह खाली नहीं जाता जब एक दो उपन्यास मौलिक या अनूदित-काशित नहीं होते ।

वर्तमान काल के प्रारम्भ में अनेकों विद्वान उपन्यास और कहानियाँ लेखने लगे । उनमें बा० प्रेमचन्द्र जी का स्थान सर्वोच्च है ।

कुछ समय पहले कहानी और उपन्यास में कोई भेद न समझा जाता था । वास्तव में कुछ बड़ा भेद है ही नहीं । कहानी होती है छोटी और उपन्यास होता है बड़ा । जब से हमारा अंग्रेजों के साथ संपर्क हुआ, उनके साहित्य का हमारे विद्वानों को परिचय हुआ—तब से उपन्यास और कहानी में अन्तर देख पड़ने लगा है । छोटी बड़ी कहानिना तो पहले भी लिखी जाती थीं । हितोपदेश और पञ्चतन्त्र में ही दोनों तरह की कहानियों के उदाहरण विद्यमान हैं । भेद केवल इतना है कि पुरानी कहानियों में कला को कोई ध्यान नहीं दिया गया केवल कुछ उपदेशमात्र देकर ही कहानी समाप्त की गई है । पर आजकल कहानी लिखना एक कला है, उसका जिसमें अधिकता से निदर्शन होता है वही कहानी उत्तम मानी जाती है ।

आजकल जिसे कहानी कहा जाता है अंग्रेजी में उसके लिये शॉर्ट स्टोरी (Short story) नाम है । वास्तव में कथानक का छोटा होना ही कहानी का लक्षण नहीं । कई चार सौ-सौ पृष्ठों के कथानक कहानी-कोटि में आते हैं और पचास-साठ पृष्ठों के उपन्यास-श्रेणी में । छोटापन कहानी का एक अंग है पर केवल अंग नहीं । तो भी यह बात अवश्य माननीय है कि कहानी को उपन्यास की अपेक्षा अधिक नियन्त्रित रहना पड़ता है । उपन्यास में यह बात नहीं । उसमें लेखक को इधर उधर ताकने भाँकने की पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है । कहा गया है पं० गिरिजादत्त जी शुक्ल एक उपन्यास लिख रहे हैं जिसमें पृष्ठ होंगे चार हजार या इससे भी अधिक । सच पूछा

आय तो बड़ी कहानी लिखना है ही कठिन । अवकाश के प्रलोभन में लेखक परिस्थितियों, संवेदनाओं और चरित्र चित्रण आदि की पग-पग पर चलने लगने से सीधा मार्ग छोड़ देता है । फिर न वह कहानी बरतै है और न उपन्यास हा । वह 'उभयतो भ्रष्ट' हो जाता है ।

कहानी और उपन्यास में मुख्य अन्तर यह है कि कहानी किसी एक तथ्य का लेकर लिखा जाता है और उसी की संवेदना उत्पन्न करना उसका उद्देश्य होता है । उपन्यास में यह बात नहीं । इसमें कोई संशय नहीं कि उपन्यास लिखने का भी ध्येय एक ही होता है किन्तु उस ध्येय का पहुचते पहुचते कई और तथ्यों का वर्णन करना पड़ जाता है । कहानी के चरित्र चित्रण विराट् अवसर होता है पर बहुत विस्तार से नहीं होना । उपन्यास में प्रत्येक पात्र के चरित्र पर घटनाओं और परिस्थितियों द्वारा इच्छानुकूल प्रकाश डाला जाता है । रणभूमि में 'सूर' के चरित्र के लेखक ने जितना विस्तृत और स्पष्ट रूप से चित्रण किया है क्या उहाँ लिये समान होता कि एक छोटी सी कहानी में उतना स्पष्टता और जोर-शोर सकता । कहानी में पात्रों की अतिसमीची परिस्थितियों का वर्णन हो सके है पर उपन्यास में केवल उस समय का परिस्थितियों और उपपरिस्थिति का ही वर्णन नहीं होता बल्कि उस समय का सामाजिक और राजनीतिक स्थिति की आंतराङ्ग, बहिराङ्ग, उलटी सीधी और तिरछी सड़ों का भी पूर्ण चित्र चित्रित किया जा सकता है । जि-होन डिकन (Dickens) का *A tale of two cities* उपन्यास पढ़ा होगा उनके हाथ होगा इंग्लैंड और फ्रांस की तारकातान परिस्थितियों का उसमें कैसा अच्छा वर्णन किया हुआ है ।

कहानियों के आगमन से पूर्व उपन्यास-दुग्ध था । लोग उपन्यासों के लिये लालायित रहते थे । कोई उपन्यास चाहे जैसा हो निकला नहीं और हाथो-हाथ बिच नहीं । उन दिनों 'ब-दकाला' और 'ब-दकाला सन्तति' की

ूम मच रही थी। जासूमी उपन्यास सर्वप्रिय हो रहे थे। जो लोग अंग्रेजी या उर्दू जानते थे वे भी नावलॉ (novels) में मस्त रहते थे। नावल पढ़ना एक व्यसन सा हो गया था। आधी आधी रात तक लैंप जलाकर छोटे टाइप में छपे उपन्यासों को पढ़ने से कई नवयुवक नेत्र खराब कर लेते थे।

आखिर, इतना समय निमालना भी तो कठिन था। उदरपूर्ति उपन्यासों से न हो सकती थी। जीवन-सघर्ष तीव्र हो चला था। पर साहित्यिक विनोद की सामग्री के बिना भी जीवन नीरस था। फल यह हुआ छोटी कहानियों (short-stories) का उदय हुआ। अंग्रेजी में उत्तम से उत्तम कहानियाँ निकलने लगीं। उनको पढ़ने का शौक बढ़ा। एक कहानी एक आध घंटे में पढ़ी जा सकती थी। इससे समय की बचत के साथ-साथ मनोविनोद भी हो जाता था।

भारत में कहानी लिखने का पहले पहले बंगला में आरम्भ हुआ। बंगला में अच्छे अच्छे लेखकों की कहानियाँ लिखी जाने लगीं। बंगालियों के अनुकरण पर हिन्दी में भी कहानियाँ लिखी जाने लगीं। उनमें कुछ मौलिक होती थीं और कुछ अनूदित। धीरे धीरे कहानियों का प्रचार इतना बढ़ा कि अब कोई ही मासिक, पाक्षिक वा साप्ताहिक पत्र होगा जिस में दो चार कहानियों को स्थान न दिया जाता हो। उनकी उपादेयता ही कहानियों की उपादेयता पर निर्भर हो गई है। परिणामस्वरूप आजकल जितना भी साहित्य का निर्माण होता है उसमें कहानियों का अंश अत्यधिक रहता है।

हिन्दी के कहानी लेखकों में श्रीयुत प्रेमचन्द जी का स्थान सर्वोच्च है। उनकी कहानियों का प्रसारक्षेत्र प्रायः प्रामाण्य जीवन रहता है। न के पात्र सजीव वास्तविक रूप में आपके सामने खड़े मालूम देते हैं। इनके अतिरिक्त श्री सुदर्शन, श्री विश्वम्भरनाथ, श्री ज्वालादत्त, श्री जयशकरप्रसाद,

की ढायरी का प्रयोग किया जाता है) —आदि कतिपय रीतियाँ हैं। प्रत्येक रीति का अनुसरण करने में सुविधायें भी हैं और कठिनाइयाँ भी। लेखक को चाहिये कि जिस प्रणाली का वह पूर्णरूप से प्रयोग कर सके उसी को काम में लाये। हिन्दी में ऐतिहासिक, आत्मचरित्र और कथोपकथन द्वारा वर्णित कहानियों की संख्या क्रमशः अधिक वा कम है।

हिन्दी-कहानी का अभी प्रारम्भिक काल है। पिछले दस-बारह वर्षों से कहानी युग चला है। किन्तु इस थोड़े से समय में ही इस कला की आशातीति उन्नति हुई है। यदि इसी तरह समुन्नति होती रही तो अनिरास कहानियाँ भी हिन्दी के साहित्य-कोष की अमूल्य रत्न होंगी और समय-प्रभाव से ऐसे ऐसे धुरन्धर लेखक निकलेंगे जो सक्षारभर के साहित्यिक नभोमण्डल में सूर्य और चन्द्र की तरह देदीप्यमान होंगे।

प्रस्तुत संग्रह में हमने जहाँ तक हो सका है अपने उद्देश्य पूर्ति का यत्न किया है। सब की सब कहानियाँ कहानी-कलाविद् लेखकों की लेखनियों का चमत्कार हैं। साथ ही किसी कहानी में एक भी पद ऐसा नहीं है जो किसी भी अंश में अश्लील कहा जा सके और सुकुमार पाठक और पाठिकाओं की मनोवृत्तियों में कुछ विकारकारक हो। प्रत्येक कहानी इस विशेष शिक्षा (moral) को लिए हुए है।

हमारा विचार है कि योग्य पाठक इस संग्रह में अपनी मनोऽनुकूल सामग्री को प्राप्त करेंगे।

वनारसीदास

श्री प्रेमचन्द

श्रीयुत प्रेमचन्द जी का जन्म सन् १८६० में हुआ और देहान्त सन् १९३६ में। काशी जी के पास ही एक छोटा सा गाव है— दवा।



आप वहीं के निवासी थे।

प्रेमचन्द आपका उपनाम है—

असली नाम ~~द्वौ~~ धनपतराय।

पहले पहल आप उर्दू में ही

लिखा करते थे। तब भी आपके

लेख अत्युच्च श्रेणी के होते थे।

उस समय आपका उपनाम
'नवाबराय' था।

हिंदी के सद्गुणों और प्रेम
से आकर्षित होकर आपने हिंदी में

लिखना शुरू किया। आपका पहला हिंदी उपन्यास 'प्रेमा' में धारा-
रूप में सन् १९०५ में निकलता रहा। किंतु आपकी विशेष ख्याति
तब से होने लगी जब से आपके गल्प सरस्वती आदि पत्रिकाओं में
प्रकाशित होने लगे। थोड़े ही समय में जितनी प्रसिद्धि प्राप्त करने का
आपको सौभाग्य मिला है उतना किसी ही और को मिला होगा। इस

समय तो आपकी रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए हिंदी प्रत्येक पत्रिका और प्रकाशक लाञ्छित रहते हैं।

आपने कुछ समय तक माधुरी का संपादन भी किया है—तब उसमें अलग होकर 'इस (मासिक पत्र)' और 'जागरण' प्रकाशन किया है। इस अब तक चल रहा है। कुछ समय जाल बघई का सिनेमा कपना में काम किया था। इनका 'सेवासदन' उपन्यास 'महालक्ष्मी सनटान बघई' में चित्रपट रूप में बना हुआ था।

मेमचन्नी की गल्लों का हिंदी में वही स्थान है जो रवीन्द्र साहू के गल्लों का बंगला में है। आपके गहर और उपन्यासों का अनुवाद कतिपय यूरोपियन भाषाओं में भी हो चुका है। इसीलिए आपको औपन्यासिक समाद कहते हैं।

आपका पहला माक का उपन्यास था—सेवासदन। इसका पत्र रंगभूमि काया कल्प, प्रमाद्यम अणि लगभग आधा दर्जन और उपन्यास निकल। गल्लों की सख्या तो कई सैकड़ की होगी।

आपकी कहानियों में मार्मिकता अधिक रहता है और उसमें प्रभाव हृदय पर अधिक पड़ता है। भावचित्रण में आप सिद्धांत हैं। आपकी एक छोटी सी कहानी बड़ जादू करती है जो बड़ बड़ उपन्यास नहीं कर सकते। आपकी भाषा अत्यन्त सरल और सरस होती है। उन्हें के प्रशिक्षित तथा सरल शब्दों का आप हिंदी में भी सुब प्रयोग करते हैं।

सुजान-भगत

(१)

सीधे सादे किसान धन हाथ आत ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं। दिव्य समाज की भांति वे पहले अपने भोग विलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गांव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चन्द्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छोट आता, तो कुछ न कुछ पैदा हो जाता था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गई। उधर गुड़ का भाव तेज़ था। कोई दो ढाई हजार हाथ में आ गए। बस चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु संतों का आदर सत्कार होने लगा, द्वार पर धूनी जलने लगी, क्लानूनगों इलाक़े में आते तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते, हलक़े के हेड कान्सटेबल, थानेदार, शिक्षा विभाग के आफ़सर, एक न एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग ! उनके द्वार पर अब इतने बड़े-बड़े

हाकिम आकर उदरते हैं। जिन हाकिमों के सामने उनका मुँह न खुलता था उन्हीं की अब महतो महतो कहते जवन सुखती थी। कभी कभी भजन भाव हो जाता। एक महात्मा ने डोल अच्छा देखा तो गाव में आसन जमा दिया। गात्र और चरस की बहार उबने लगी। एक डोलक आई, मजारे मगवाए गए सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जलूस था। घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कठ तल एक बूँद जाने की भी कसम थी। कभी हाकिम लोग चखते, कभी महात्मा लोग। किसान को दूध घी से फया मतलब उसे तो रोटी और साग चाहिए। सुजान की नम्रता का अब पाराधार न था। सब के सामने सिर झुकाए रहता कहीं लोग यह न कहने लगे कि धन पाकर इसे घमंड हो गया है। गाव में कुल तीन ही कुएँ थे, बहुत से चेतों में पानी न पहुँचता था, खेती मारी जाती थी, सुजान ने एक पक्का कुआँ बनवा दिया। कुएँ का विवाद हुआ, यह हुआ, ब्रह्मभोज हुआ। जिस दिन कुएँ पर पहली बार पुर चला सुजान को मानों चारों पदाय मिल गए। जो काम गाव में किसी न न किया था वह बाप दादा के पुण्य प्रताप से सुजान ने कर दिखाया।

एक दिन गाव में गया के बाँधी आकर उदर। सुजान हा के द्वार पर उनका भोजन पना। सुजान के मन में भी गया

करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देख कर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा—अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।

सुजान ने गंभीर भाव से कहा—अगले साल क्या होगा, कौन जानता है। धर्म के काम में मीन-मेख निकालना अच्छा नहीं। जिंदगानी का क्या भरोसा !

बुलाकी—हाथ खाली हो जायगा।

सुजान—भगवान् की इच्छा होगी तो फिर रुपए हो जायेंगे। उनके यहां किस बात की कमी है।

बुलाकी इसका क्या जवाब देती। सत्कार्य में बाधा डालकर अपनी मुक्ति क्यों बिगाड़ती ? प्रातःकाल स्त्री और पुरुष गया करने चले। वहां से लौटे, तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरी। सारी विरादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गांवों में सुपारी बटी। इस धूम-धाम से कार्य हुआ कि चारों ओर वाह वाह मच गई। सब यही कहते थे कि भगवान् धन दे तो दिल भी ऐसा ही दे, घमंड तो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाता फिरता था, कुल का नाम जगा दिया। बेटा हो तो ऐसा हो। बाप मरा तो घर में भूनी भांग भी नहीं थी। अब लच्छमी घुटने तोड़ कर आ बैठी है।

एक ठेपी ने कहा—कहीं गढ़ा हुआ धन पा गया है। इस पर चारों ओर से उस पर चौछारें पड़ने लगी—हां तुम्हारे

बाप दादा जो खजाना छोड़ गए थे वही उसके हाथ लग गया है। अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो कुछ फाड़कर काम करते हो, पर्यो ऐसी ऊख नहीं लगती, क्या ऐसी फसल नहीं होती? भगवान् आदमी का दिल देखने के जो परख करना जानता है, उसी को देते हैं।

(२)

सुजान मढ़तो सुजान भगत हो गए। भगतों के आचार विचार कुछ और ही होने हैं। यह बिना स्नान किए कुछ नहीं खाता। गंगा जी अगर घर से दूर हों और वह रोज स्नान के दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजनभाव उसके घर अवश्य होना चाहिए। पूजा अर्चा उसके लिये अनिवार्य है। पान पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सब स यही बात यह है कि भूट का त्याग करना पड़ता है। भगत भूट नहीं धोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर भूट का दंड एक मिल, तो भगत का एक लाख से कम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अपस्था में कितने ही अपराध सम्यक् होते हैं। ज्ञान के लिये क्षमा नहीं है प्रायश्चित्त नहीं है, या है तो बहुत ही कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मयादा को निमाना पड़ा। अब तक उसका जीवन मनुष्य का जीवन था। उसका कोई आदेश, कोई मयादा उसके सामने नहीं।

अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहाँ का मार्ग कांटों से भरा हुआ है। स्वार्थ सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य था। 'इसी कांटे से वह परिस्थितियों को तौलता था। वह अब उन्हें औचित्य के कांटों पर तौलने लगा।' यों कहो कि जड़ जगत् से निकल कर उसने चेतन जगत् में प्रवेश किया। उसने कुछ लेन देन करना शुरू किया था, पर अब उसे व्याज लेते हुए आत्म-ग्लानि सी होती थी। यहाँ तक कि गउओं को दुहाते समय उसे बछड़ा का ध्यान बना रहता था—कहीं बछड़ा भूखा न रह जाय, नहीं उसका रोयां दुखी होगा। वह गाव का मुखिया था, कितने ही मुकदमों में उसने झूठी शहादतें बनवाई थीं कितनों से डाढ़ लेकर मामले को रफ़ा-दफा करा दिया था। अब इन व्यापारों से उसे घृणा होती थी। झूठ और प्रपंच से कोसों भागता था। पहले उसकी यह चेष्टा होती थी कि मजूरो से जितना काम लिया जा सके तो और मजूरी जितनी कम दी जा सके दो, पर अब उसे मजूरो के काम की कम, मजूरी की अधिक चिंता रहती थी—कहीं बिचारे मजूर का रोयां न दुखी हो जाय। यह उसका सखुनतकिया-सा हो गया—किसी का रोयां न दुखी हो जाय। उसके दोनों जवान बेटे बात बात में उस पर फव्वियां कसते, यहाँ तक कि बुलाकी भी अब उसे कोरा भगत समझने लगी, जिसे घर के भले बुरे से कोई प्रयोजन न था। चेतन जगत् में आकर सुजान भगत कोरे भगत रह गए।

सुजान के हाथों से धीरे धीरे अधिकार छीने जाने लगे। किस खेत में क्या बोना है, किसको क्या देना है, किससे क्या लेना है जिस भाव क्या चीज बिकी, ऐसी ऐसी मझत पृण बातों में भी भगत जी की सलाह न ली जाती। भगत के पास कोई जाने ही न पाता। दोनों लडके या स्वयं बुलाकी दूर ही से मामला कर लिया करती। गाव भर में सुजान का मान सम्मान बढ़ता था, अपने घर में घटता था। लडके उस का सत्कार अर बहुत करते। उसे हाथ से चारपाई उठात देख लपक कर खुद उठा लाते, उसे चिलमन भरने देते, यहा तक कि उसकी धोती छाटने के लिये भी आग्रह करते थे। मगर अधिकार उसके हाथ में न था। 'बद अब घर का स्वामी नहीं, मंदिर का देवता था।'

(३)

एक दिन बुलाकी ओपली में दाल छाट रही थी। एक भिखमंगा द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। बुलाकी ने सोचा दाल छाट लूँ तो उसे कुछ दे दूँ। इतन में बड़ा लडका भोला आकर घोला—अम्मा एक महात्मा द्वार पर खड़े गला फाड़ रहे हैं। कुछ दे दो, नहीं उनका रोया दुखी हो जायगा।

बुलाकी ने उपेक्षा भाव से कहा—भगत के पाव में क्या मँदही लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं दे देते। क्या मो चार हाथ हैं? किस किस का रोया सुखी करूँ, दिन भर तँ ताता लगा रहता है।

भोला—चौपटनास करने पर लगे हुए हैं और क्या । अभी मंहू वेंग देने आया था । हिसाब से ७ मन हुए । तौला तो पौने सात मन ही निकले । मैंने कहा दस सेर और ला, तो आप बैठे बैठे कहते हैं, अब इतनी दूर कहां लेने जायगा । भरपाई लिख दो, नहीं उसका रोयां दुखी होगा । मैंने भरपाई नहीं लिखी । दस सेर बाकी लिख दी ।

बुलाकी—बहुत अच्छा किया तुमने, वकने दिया करो, दस पांच दफ़े मुँह की खायेंगे, तो आपही बोलना छोड़ देगे ।

भोला—दिन भर एक न एक खुचड़ निकालते रहते हैं । सौ दफ़े कह दिया कि तुम घर गृहस्थी के मामले में न बोला करो, पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता ।

बुलाकी—मैं जानती कि इनका यह हाल होगा, तो गुरु-मंत्र न लेने देती ।

भोला—भगत क्या हुए कि दीन दुनिया दोनों से गए । सारा दिन पूजा-पाठ में ही उड़ जाता है । अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो गए कि कोई काम ही न कर सकें ।

बुलाकी ने आपत्ति की—भोला, यह तो तुम्हारा कुन्याय है । फावड़ा-कुदाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुछ-न-कुछ तो करते ही रहते हैं । बैलों को सानी पानी देते हैं, गाय दुहाते हैं, और भी जो कुछ हो सकता है करते हैं ।

भिक्षुक अभी तक खड़ा चिन्ता रहा था । सुजान ने जब घर में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अंदर गया

और कठोर स्वर से बोला—तुम लोगों को कुछ सुनाइ नहीं देता कि द्वार पर कौन घंटे भर से खड़ा भील माग रहा है अपना काम तो दिन भर करना ही है, एक छन भगवान् का काम भी तो किया करो ।

बुलाकी—तुम तो भगवान् का काम करने को बैठे ही हो, क्या घर भर भगवान् ही का काम करेगा ?

सुजान—बड़ा आटा रक्खा है, लाओ मैं ही निकालकर दे आऊँ । तुम रानी बनकर बैठो ।

बुलाकी—आटा मैंने मर मरकर पीसा है, अनाज दे दो । ऐसे मुड़चिरों के लिये पहर रात से उठकर चक्का नहीं चलाती हूँ ।

सुजान भंडारघर में गए और एक छोटी सी छयड़ी का जौ से भरे हुए निकले । जौ सेर भर से कम न था । सुजान ने जान बूझकर, केवल बुलाकी और भोला के चिढ़ाने के लिए भित्ति परपरा का उल्लंघन किया था । तिस पर भी यह दिखाने के लिये कि छयड़ी में बहुत ज्यादा जौ नहीं है, वा उसे चुटकी से पकड़े हुए थे । चुटकी इतना योग्य न समझ सकती थी । दाघ काप रहा था । एक क्षण का विलंब होने से छयड़ी का दाघ से छूटकर गिर पड़ने की संभावना थी । इसलिये वह अट्टरी से बाहर निकल जाना चाहते थे । सबसे भोला ने छयड़ी उनके दाघ से छीन ली और चोरिया बदल कर बोला—संत का माल नहीं है जो सुजान चले दो । दाघ

फाड़ फाड़कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।

सुजान ने खिसियाकर कहा--मैं भी तो बैठा नहीं रहता।

भोला--भीख भीख की तरह दी जाती है, लुटाई नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि पति पानी बना रहे और तुम्हे लुटाने की सूझनी है। तुम्हे क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है।

सुजान ने इसका कोई जवाब न दिया। बाहर आकर भिखारी से कह दिया--बाबा इस समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है, और पेड़ के नीचे बैठ कर विचारो भेमश हो गया। अपने ही घर में उसका यह अनादर ! अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ-पांव थके नहीं हैं, घर का कुछ न-कुछ काम करता ही रहता है। उस पर यह अनादर ! उसी ने यह घर बनाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घर वाले जो रुखा-सूखा दे दे, वह खाकर पेट भर लिया करे ! ऐसे जीवन को धिक्कार है। सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

सन्ध्या हो गई थी। भोला का छोटा भाई शंकर नारियल भर कर लाया। सुजान ने नारियल दुकान से टिका कर रख दिया। धीरे-धीरे तंबाकू जल गया। ज़रा देर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पेड़ के नीचे से न उठा।

कुछ देर और गुज़री। भोजन तैयार हुआ। भोला बुलाने

आया। सुजान ने कहा—भूख नहीं है। बहुत मनावन करने पर भी न उठा। तब बुलाकी ने आकर कहा—खाना खावे क्यों नहीं चलते? जी तो अच्छा है?

सुजान को सब से अधिक क्रोध बुलाकी पर हो था। यह भी सड़कों के साथ है। यह वैसी देखती रही और मोवा ने मेरे हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुँह से इतना भा न निकला कि ले जाते हैं ले जाने दो। तबकों को न मालूम हो कि मैंने कितने धर्म से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा, भादों की अघेरी रात में भड़ैया लगाए जुआर की रस्साता करता था जेठ बैसाख की दोपहरी में भी दम न लेता था और अथ मेरा घर पर इतना अधिकार भी नहीं है कि मर तक दे सकूँ। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती, लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिये या चाहे मैं घर में आग हा क्यों न लगा दूँ। कानून से भी तो मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता दूसरों को खिला देता हूँ। इस किसी के पाप का क्या सामना। अब इस घण्ट मनावे का है। इसे मैंने पून की छड़ी से भी नहीं चुया नहीं तो गांव में पेसी कौन औरत है जिजने घसन की लाते न खाए हो। कभी कभी निगाह से देखा तक नहीं। दण्ड पैसे, लेना देना सब इसी के हाथ में दे रक्खा था। अब दण्ड जमा कर लिए हैं, तो मुँह से घनड करती है। अब इने येठे प्यारे हैं, मैं तो

निखटू, लुटाऊ, घर-फूंकू, घोघा हूँ। मेरी इसे क्या परवा। तब लड़के न थे जब बीमार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर वैद के घर ले गया था। आज इसके बेटे हैं और यह उनकी मां है। मैं तो बाहर का आदमी हूँ, मुझ से घर से मतलब ही क्या। बोला—मैं अब खा पीकर क्या करूंगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिला कर दाने को क्यों खराब करोगी। रख दो, बेटे दूसरी बार खायंग।

बुलाकी—तुम तो ज़रा सी बात पर तिनक जाते हो। सच कहा है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने इतना ही तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ?

सुजान—हां, इतना ही कहकर रह गया। तुम्हें तो मज़ा आता जब वह ऊपर से दो चार डंडे लगा देता। क्यों? अगर यही अभिलाषा है तो पूरी कर लो। भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हीं न जमा दो दो चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाय।

बुलाकी—हां और क्या, यही तो नारी का धरम ही है। अपने भाग को सराहो कि मुझ जैसी सीधी औरत पा ली। जिस वल चाहते थे, बिठाते थे। ऐसी मुंहजोर होती, तो तुम्हारे घर में एक दिन निवाह न होता।

सुजान—हा भाई, वह तो मैं ही कह रहा हूँ कि तुम देवी थीं और हो। मैं तब भी राजस था और अब तो दैत्य हो

जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना छोड़ा था, परावर चारे के लिये दाय दाय पड़ो रहती था। शकर भी काटता था भोला भी काटता था, पर चारा पूरा न पड़ता था। आन यह इन लोंडों को दिखा देंगे चारा कैसे काटना चाहिए। उसके सामने कटिया का पड़ाव खड़ा हो गया। और दुकड़े कितने महीन और सुडौल थे मानों सार में ढाले गए हों।

मुद्द अंधेरे घुलाकी उठी तो कटिया का ढेर देखकर दहा रह गई। बोली—क्या भोला आज रात भर कटिया का काटता रह गया? कितना कहा कि बेटा जो से जवान है पर मानता ही नहीं। रात को सोया ही नहीं।

सुजान भगत ने ताने से कहा—यह सोता हो क्या है। जब देखता हू काम ही काम करता रहता है। ऐसा काम ससार में और कौन होगा?

इतने में भोला आस मलता हुआ बाहर निकला। उस यद् ढेर देखकर आश्चर्य हुआ। मा से बोला—क्या शकर आन बड़ी रात को उठा था, अम्मा?

घुलाकी—यद् तो पड़ा सो रहा है। मैंने तो समझा तुमने काटा होगी।

भोला—मैं तो सवेरे उठ ही नहीं पाता। दिन भर जो कितना काम कर लू, पर रात को मुझ से नहीं उठा जाता।

घुलाकी—तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है?

चीस घन्घे होते हैं। हंसने-बोलने के लिए, गाने बजाने के लिये उसे कुछ समय चाहिए। पड़ोस के गांव में दंगल हो रहा है। जवान आदमी कैसे अपने को वहां जाने से रोकेगा? किसी गांव में बरात आई है, नाच गाना हो रहा है, जवान आदमी क्यों उसके आनन्द से वंचित रह सकता है? वृद्ध-जनों के लिये ये बाधाएं नहीं। उन्हें न नाच-गाने से मतलब, न खेल तमाशे से रारज, केवल अपने काम से काम है।

बुलाकी ने कहा—भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गए।
भोला-जाने दो अम्मां, मुझसे तो यह नहीं हो सकता।

(५)

सुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गांव में टीकाएं हुईं। निकल गई सारी भगती। बना हुआ था। माया में फंसा हुआ है। आदमी काहे को भूत है।

मगर भगत जी के द्वार पर अब फिर साधु-संत आसन जमाए देखे जाते हैं। उनका आदर-सम्मान होता है। अब की उसकी खेती ने सोना उगल दिया है। बखारी में अनाज रखने की जगह नहीं मिलती। जिस खेत में पांच मन मुश्किल से होता था उसी खेत में अबकी दस मन की उपज हुई है।

चैत का महीना था। खलिहानों में सतयुग का राज था। जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे। यही समय है जब छपकों को भी थोड़ी देर के लिए अपना जीवन सफल मालूम

होता है, जब गध से उनका हृदय उच्चलित हो जाता है। सुजान भगत टोक्यों में अनाज भर भर देते थे और दोनों लकड़े टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे। कितने ही भाट और भिलुक भगत जी को घेरे हुए थे। उनमें वा भिलुक भी था जो आज से ८ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था।

सहसा भगत ने उस भिलुक से पूछा—क्यों बाबा, आज कदा कदा चक्कर लगा आए ?

भिलुक—अभी तो कहीं नहीं गया भगतजी, पहले तुम्हारे ही पास आया हू।

भगत—अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर है। इसमें से जितना अनाज उठाकर ले जा सको ले जाओ।

भिलुक ने लुघ नेत्रों से ढेर को देखकर कहा—जितना अपने हाथ से उठाकर दे दोगे उतना ही लूंगा।

भगत—नहीं, तुमसे जितना उठ सके, उठा लो।

भिलुक के पास एक चादर थी। उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। सकोच के मारे और अधिक मरने का उसे साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझ कर आश्वासन देते हुए बोले—यस इतना तो एक पच्चा उठा ले जाएगा।

भिलुक ने मोला की ओर सदिग्ध नेत्रों से देखकर कहा—
मेरे लिये इतना बहुत है।

भगत—नहीं तुम सकुचाते हो । अभी और भरो ।

भिजुक ने एक पंसेरी अनाज और भरा और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा ।

भगत—उसकी ओर क्या देखते हो बाबाजी, मैं जो कहता हूँ, घट्ट करो । तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो ।

भिजुक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठाने दी, तो कितनी भद्द होगी । और भिजुकों को हंसने का अवसर मिल जायगा । सब यही कहेंगे कि भिजुक कितना लोभी है । उसे और अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी ।

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बांधकर बोले—इसे उठा ले जाओ ।

भिजुक—बाबा इतना तो मुझसे उठ न सकेगा ।

भगत—अरे ! इतना भी न उठ सकेगा ! बहुत होगा तो मन भर । भला जोर तो लगाओ, देखूँ उठा सकते हो या नहीं ।

भिजुक ने गठरी को आजमाया । भारी थी । जगह से हिली भी नहीं । बोला—भगतजी, यह मुझसे न उठेगी ।

भगत—अच्छा बताओ, किस गाव में रहते हो ?

भिजुक—वहीं दूर है भगतजी, अमोला का नाम तो सुना होगा ।

भगत—अच्छा आगे-आगे चलो, मैं पहुँचा दूँगा ।

यह कहकर भगत ने जोर लगाकर गठरी उठाई और

सिर पर रखकर भिक्षुक के पीछे हो लिए। देखने वाले भग्न का यह पौध देखकर अकित हो गए उन्हें क्या मादुर था कि भगत पर इस समय कौन सा नशा था। ८ महाते के निरंतर अविरल परिश्रम का आज उन्हें फल मिला था। आज उन्होंने अपना खोया हुआ अधिकार फिर पाया था। वही तलवार जो केले को भी नहीं काट सकती, सान पर चढ़ कर लोहे को काट देती है। मानव जीवन में लाग वड़े महत् की वस्तु है। जिसमें लाग है वह बूढ़ा भी हो तो जवान है। जिसमें लाग नहीं, चैरत नहीं, वह जवान भी हो तो मृतक है। सुजान भगत में लाग थी और उसने उन्हें अमासुषीय वस्त्र प्रदान कर दिया था। चलते समय उन्होंने भोला की ओर सगर्भ नेत्रों से देखा और बोले—ये भाट और भिक्षुक बड़े हैं, कोई खाली हाथ न लौटने पाये।

भोला सिर मुकाये खड़ा था। उसे कुछ बोलने की हौसला न हुआ। वृद्ध पिता ने उसे परास्त कर दिया था।



ईदगाह

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर कितना सुहावना प्रभात है। वृत्तों पर कुछ अजीब हरयाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बघाई दे रहा है। गांव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियां हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर से सुई-डोरा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दे। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैंकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रक्खा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं। लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की

चीज है। रोज बड़े बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो रोज रोज ईद का नाम रटते थे। आज बड़े आ गई। अब उता पड़ी है कि लोग इद्गाह क्यों नहीं चलते। गृहस्थों की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन! सेवियों के लिए दूध और शर्करा घर में है या नहीं इनकी बला से, ये तो सेवैया खावगे। हाँ क्या जानें आ-राजान क्यों बदहवास चौधरी ब्रायमझला ब घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आब बदल लें तो यह सारी इद् मुहर्रम हो जाय। उनकी आयत जेम्में में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार बार जेब व अपना सजाना निकाल कर गिनते हैं और रुग होकर कि रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक, दो, दस, बारह। उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास, एक, दो, तीन, आठ नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनागिनती पैसों में अनागिनता चाँड़ लाएगे—सिलौने, मिट्टाईया, थिगुल, गेंद और जालेक्या क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद, वह बार पाव साल का गरीब सूरत, दुपला पतला लड़का जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और मा न जाने क्यों पाली होती होती एक दिन मर गए। किसी को पता न चला क्या बीमारी है। बढ़ती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ पीतती थी, यह दिल में ही सहेती थी और जब न सदा गया तो ससार से बिदा हो गए। अब महमूद अपनी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न

है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गए हैं। बहुत सी थैलियां लेकर आएंगे। अम्मीजान अल्लाह मियां के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी अच्छी चीजें लाने गई हैं। इसलिए हमिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा ! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हमिद के पांव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियां और अम्मीजान नियामते लेकर आएंगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देसेगा महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहां से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं ! आज आविद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती ! इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को ? इस घर में उसका काम नहीं है। लेकिन हमिद ! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब ? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल बल लेकर आए, हमिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हमिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्मां, मैं सबसे पहले आऊंगा। विलकुल न डरना।

भी तो उसी के साथ है। वच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जाएंगे।

गांव से मेला चला। और वच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सब के सब दौड़ कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इन्तज़ार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के चगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियां लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठा कर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहां से एक फर्लांग पर हैं। खूब हंस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया!

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कॉलेज है, यह क्लबघर है। इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे! सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े बड़े आदमी हैं, सब। उनकी बड़ी बड़ी मूंछें हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे। और क्या करेंगे इतना पढ़ कर। हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे, और क्या। क्लबघर में जादू होता है। सुना है, यहां मुरदों की

आदमी हर दुकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है। और सचमुच के रूप देता है, बिलकुल ऐसे ही रूप।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रूप जिन्नात को कहाँ से मिल जायेंगे ?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रूपों की कमी ! जिस खजाने में चाहे चले जायें। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाव, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिस से खुश हो गए उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहां बैठे हैं, पांच मिनट में कहो तो फलकत्ता पहुँच जायें।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे ?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। ज़मीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा तगे। मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायें।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे। कोई मुझे वह मन्तर बता दे तो एक जिन को खुश कर लूं।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज़ चोरी जाय चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमेराती का बछ्वा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झुक मार कर चौधरी के

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं ।

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हे कौन पकड़ेगा । पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं । लेकिन अल्लाह इन्हे सज़ा भी खूब देता है । हराम का माल हराम में जाता है । थोड़े दिन हुए मामू के घर में आग लग गई । सारी लेई पूंजी जल गई । एक बरतन तक न बचा । कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे । फिर न जाने कहां से एक सौ कर्ज लाये तो बरतन भाड़े आए ।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं ?

कहां पचास कहां एक सौ । पचास एक थैली भर होता है । सौ तो दो थैलियों में भी न आवे ।

अब वस्ती घनी होने लगी थी । ईदगाह जाने वालों की टोलियां नज़र आने लगीं । एक से एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए । कोई इक्के तांगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में वसे, सभी के दिलों में उमंग । ग्रामीणों का यह छोटा सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था । वस्त्रों के लिये नगर की सभी चीज़ें अनोखी थी । जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते । और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज़ आने पर भी न चेतते । हामिद तो मोटर के नीचे जाते जाते बचा ।

सहसा इदगाह नजर आया । ऊपर इमली के घने वृक्ष का साया है । नीचे पक्का फस है जिस पर जाज़िम बिछा हुआ है । और रोजेदारों की पक्षियाएँ के पीछे एक नया कड़ा तक चली गई हैं पक्ष जगत के नीचे तक, जहाँ जाज़िम नहीं है । नए आने वाले आकर पीछे की ऋण में खड़े हो जाते हैं । आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता । इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। हर आमीर्णी ने भी घजू किया और पिछली पक्षि में ख हो गए । कितना सुंदर सञ्चालन है कितना सुंदर व्यवस्था ! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं फिर सब के सब एक साथ खड़े हो जाते हैं। एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही किया होती है, जैसे बिजली की लाखों बलित एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाए और यहाँ रुक चलता रहे । कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक शिष्या, विस्तार और अनंतता हृदय को धुंझा, गर्व और आत्मानंद से भर देती थी मानों आवृत्त्य का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं में एक लड़ी में विरोध हुए है ।

(२)

नमाज़ खत्म हो गई है । लोग आपस में गले मिल रहे हैं । तब मिट्टाई और धिलौनों की दुकानों पर बाबा

होता है । ग्रामीणों का यह दल इस विषय में घालकों से कम उत्साही नहीं है । यह देखो हिंडोला है । एक पैसा देकर चढ़ जाओ । कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए । यह चर्रों है । लकड़ी के शथी, घोड़े, ऊंट सीखों से लटके हुए हैं । एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्कों का मज़ा लो । महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊंटों पर बैठते हैं । हामिद दूर खड़ा है । तीन ही तो पैसे उसके पास हैं । अपने कोश का एक तिहाई ज़रा सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता ।

सब चर्रियों से उतरते हैं । अब खिलौने लेंगे । इधर दूकानों की कतार लगी हुई है । तरह तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, और राजा और वकील, और भिश्ती और घोविन और साधू । वाह ! कितने सुन्दर खिलौने हैं ! बोला ही चाहते हैं । महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ी वाला, कन्धे पर बन्दूक रखे हुए, मालूम होता है अभी कवायद किए चला आ रहा है । मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया । कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए हैं, मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है । कितना प्रसन्न है । शायद कोई गीत गा रहा है । वस, मशक से पानी उड़ेलता ही चाहता है । नूरे को वकील से प्रेम है । कैसी विद्वत्ता है उनके मुँह पर, काला चुप्पा, नीचे सफ़ेद अवकन,

अचकन के सामने की जेब में घड़ी की सुनहरी जन्त्रा, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए । मालूम होता है, या किसी अदालत से जिरद या बहस किए चले आ रहे हैं। या सन दो दो पैसे के खिलौने हैं । हामिद के पास कुल्लत पैसे हैं। इतने महंगे खिलौने बह कैसे ले ? खिलौना का हाथ से छूट पड़े तो चूर चूर हो जाय । जरा पानी तो सो सारा रंग धुल जाय । ऐसे खिलौने लेकर बह न करगा, किस काम के !

मोहसिन कहता है—मेरा भिदनी रोज पानी दे जाय, साफ सघेरे ।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा । या चोर आएगा तो फौरन बन्दूक फेर कर देगा ।

नूरे—और मेरा बकील खूब मुकदमा लड़ेगा ।

सम्मी—मेरी घोड़िन रोज कपड़े धोएगी ।

हामिद खिलौनों की निंदा करता है—मिट्टी हींकेठ हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जाय । लेकिन ललचाई हुई आँखें खिलौनों को देख रदा है और चाहता है कि जरा देर लिये उन्हें हाथ में ले सकता । उसके हाथ अनायास लपकत हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेष कर जब अभी नया शौक है । हामिद ललचता रद्द जाता है ।

खिलौनों का याद मिटाइयाँ आती हैं । किसीने रेडियो ला है, किसीने गुलाब जामुन, किसीने सोहनहल्ला ! मं

से खा रहे हैं। हामिद उनकी विरादरी से पृथक् है। अभागों के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता ? ललचाई आंखों से सब की ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद यह रेउड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है !

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल कूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जान कर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेउड़ी निकाल कर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेउड़ी अपने मुंह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियां बजा-बजा कर हंसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम ले जाव।

हामिद—रक्खे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं।

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे ?

महमूद—हम से गुलाब जामुन ले जाव हामिद। मोहसिन वदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताय में इसकी कितनी बुराइयां लिखी हैं।

मोहसिन—लेजिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले जा पा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?

महमूद—हम समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जायेंगे तो हमें ललचा ललचा कर खाया।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीजों का हैं। कुछ मिलट और नरली गद्दों की। लडकों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हार लोहे की दूकान पर जाता है। कई चिमटे रक्के हुए हैं। उसे खाल आया, दाढ़ी के पास चिमटा नहीं है। तब वे रोटिया उतारती हैं तो दाढ़ी जल जाता है। अगर वह बिना ले जाकर दाढ़ी को द दे तो वह कितनी प्रसन्न होगी ! तब उनकी उगलिया न जलेंगी। घर में एक काम की बर्त हो जायगी। खिलौने से क्या फायदा। बचपन में पैसे खर्च होते हैं। जरा देर ही तो सुखी होती है। फिर तो पिक्की को कोई आख उठा कर नहीं देखता। या तो घर पहुँच पड़ते टूट फूट धरावर हो जायेंगे या छोटे बच्चे जो मर नहीं आप ही जिद्द करके ले लेंगे और ताड़ डालेंगे। बिना कितने काम की चीज है। रोटिया तब से उतार लो, चूल्हे में सेंक ला। कोई आग मागने आये तो घटपट चूल्हे से आ निकाल कर उसे दे दो। अम्मा बेचारी को कहा फुरसत है कि याज़ार आप और इतने पैसे ही कहा मिलते हैं। रात दाढ़ी जला लता है। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं।

संजील पर सबके सब शर्वत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयां ली, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा तो पूछूंगा। खायं मिठाइयां, आप मुंह सड़ेगा, फोड़े फुन्सियां निकलेगी, आप ही ज़वान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुराएंगे और मार खाएंगे। किताब में भूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों खराब होगी। अम्मां चिमटा देखते ही दौड़ कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेगी—‘मेरा बच्चा अम्मां के लिए चिमटा लाया है!’ हज़ारों दुआएं देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखाएंगी। सारे गांव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएं देगा। बड़ों की दुआएं सीधे अल्लाह के दरबार में पहुंचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊंगा। खेलें खिलौने और खायं मिठाइया। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सहूं। मैं गरीब सही, किसी से कुछ मांगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी न कभी आएंगे। अम्मां भी आएंगी ही। फिर इन लोगों से पूछूंगा कितने खिलौने लो। एक एक को टोक़रियों खिलौने दूं और दिखा दूं कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है।

यह नहीं कि एक पैसे की रेखादिया लीं तो चिढ़ा चिढ़ा खाने लगे। सरे सव खूब हँसे कि, हामिद ने चिमटा लिया है। हसे। मेरी बला से, उसने दूकानदार से पूछा— यह चिमटा कितने का है ?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी सण न देखकर कहा— यह तुम्हारे काम का नहीं है जी।

बिकाऊ है कि नहीं ?

‘बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाए हैं ?’

‘तो बनाते क्यों नहीं, के पैसे का है ?’

छे पैसे लेंगे !

हामिद का दिल बैठ गया।

‘ठीक-ठाक बताओ !’

‘ठीक ठीक पाच पैसे लेंगे तेना हो सो, नहीं चलते बता’

हामिद ने कलजा मजबूत करके कहा— तीन पैसे लो !

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार का घुड़किया न सुने।

लेकिन दूकानदार ने घुड़किया नहीं दी। गुलाबर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रक्खा माना यहूद है और शान से अकबता हुआ सगियों के पास आया। जरा सुने सरे सव क्या क्या आलोचनाएँ कर रहे हैं।

माहसिन न हस कर कहा— यह चिमटा क्यों ज़ापा पगले ? इसे क्या करेगा ?

हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटक कर कहा—जरा अपनी भिंशती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियां चूर चूर हो जायं बच्चा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं। अभी कन्धे पर रक्खा बन्दूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरो का चिमटा हो गया। चाहूं तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूं। एक चिमटा जमा दूं तो तुम लोगो के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, मेरे चिमटे का बाल भी बांका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खंजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खंजरी से बदलोगे? दो आने की है।

हामिद ने खंजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खंजरी का पेट फाड़ डाले। बस एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब ढब बोलने लगी। जरा सा पानी लग जाय तो खतम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आधी में, तुफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सबको मोहित कर लिया, लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले-से दूर निकल आए हैं, नौ कवके बज गए, धूप तेज हो रही है। घर पहुंचने की ज़िदें

हो रही है। बाप से जिद भी करें तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसी लिए बदमाश न अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बातकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद सम्मी और नूर एक तरफ हैं हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विघर्षी हो गया। दूसरेपक्ष से जा मिला। लेकिन मोहसिन, महमूद और नूर भी हामिद से एक एक दो दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतन्त्रित हो उठे हैं। उससे पास न्याय का बर है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है दूसरी ओर लोहा, जो इस बग्न अपने को फौलाद कद रहा है। बा शजेय है, घातक है अगर कोई शेर आ जाय, तो मिय भिरती के छुंके छूट जाय, मिया लिपाही मिट्टी की पट्टे छोड़ कर भागें बकील साहय की नानी मर जाय, चुपम मुह ड्रिपा कर ज़मीन पर लेट जाय, मगर यह चिमन यह बड़ादुर यह रस्तेमे हिंद लपक कर शेर को गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने पढ़ी चोटी का ज़ोर लगा कर कहा—अच्छा पानी तो नहीं मर सकता।

हामिद न चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिरती का एक डाट पतापगा तो दोहा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने कुमक पहुंचाई—
अगर वचा पकड़े जायं तो अदालत में बंधे फिरेगे । तब तो
वकील साहब ही के पैरों पड़ेंगे ।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका । उसने
पूछा—हमें पकड़ने कौन आएगा ?

नूरे ने अकड़ कर कहा—यह सिपाही बन्दूक वाला ।

हामिद ने मुंह चिढ़ा कर कहा—यह बेचारे हमारे
बहादुर रस्ते में हिन्द को पकड़ेंगे ! अच्छा लाओ अभी ज़रा
कुशती हो जाय । इसकी सूरत देख कर दूर से भागेंगे ।
पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे
का मुंह रोज आग में जलेगा ।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा लेकिन
यह बात न हुई । हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में
बहादुर ही कूदते हैं जनाव, तुम्हारे यह वकील, सिपाही
और भिखारी औरतों की तरह घर में घुस जायेंगे । आग
में कूदना वह काम है जो यह रस्ते में हिन्द ही कर सकता है ।

महमूद ने एक ज़ोर लगाया—वकील साहब कुरसी मेज़
पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बाबरचीखाने में ज़मीन पर
पड़ा रहेगा ।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया ।
कितने ठिकाने की बात कही है पढ़े ने । चिमटा बाबरची

में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है।

हामिद को कोई फटकता हुआ जमाव न सूझा तो उस धाधली शुरू की—मेरा चिमटा बाघरबीखाने में नहीं रहेगा। यकील साइर कुरसी पर बैठेंगे तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका जानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खासी गाली गलौज थी। लेकिन जानून का पेट में डालने वाली बात छु गई। ऐसी छाप कि तीनों सूत्रमा मुद्द तकने रह गए मानों कोई धक्का ककौआ किसी डण्डे वाले ककौए का खाट गया हो। जानून मुद्द से बाहर निकलने वाली चीज है। उसको पेट में अंदर डाल दिया जाये वेनुकी सी बात होने पर भी कुं नयापन रखती है। हामिद ने भैदान मार लिया। उसका चिमटा दस्ताने दि-द दे। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नू सन्मी, किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलता स्वामावि है वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन तीन, चार चार आने जैसे खच किए पर कोई काम की चीज न ल सके। हामिद ने तीन पैसों में रंग जमा लिया। सच ही तो है खिलानों का क्या भरासा। टूट फूट जायगे। हामिद का चिमटा ता बना रहेगा बरसों।

सा घ की शर्त तय होने लगी। मोहसिन ने कहा—अपना चिमटा दो हम भी देखें। तुम हमारा मिदनी लेकर देखो

हव स्वर्ग लोक से मर्त्य-लोक में आ रहे और उनका माटी चोला माटी में मिल गया ! फिर बड़े ज़ोर-शोर से तम हुआ और वकील साहब की अस्थि पारसियों की गनुसार घूर पर डाल दी गई ।

अब रहा महमूद का सिपाही । उसे चटपट गांव का इरा देने का काम मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही ई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले । वह लकी पर चलेगा । एक टोकरी आई । उसमें कुछ लाला के फटे-पुराने चिथड़े बिछाये गए, जिसमें सिपाही साहब ताराम से लेंटे । नूरे ने वह टोकरी उठाई और अपने द्वार । चक्कर लगाने लगे । उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की रक्त से 'छोने वाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं । मगर त तो अंधेरी होनी ही चाहिए । महमूद को ठोकर लगती है । टोकरी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ती है और त्यों सिपाही अपनी बन्दूक लिए ज़मीन पर आ जाते हैं और तकी टांग में विकार आ जाता है । महमूद को आज त हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है । उसको ऐसा मरहम मेल गया है जिससे वह टूटी टांग को आनन-फानन जोड़ सकता है । केवल गूलर का दूध चाहिए । गूलर का दूध प्राता है । टांग जोड़ दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्यों ही बड़ा किया जाता है, टांग जवाब दे देती है । शल्य किया असफल हुई तब उसकी दूसरी टांग भी तोड़ दी जाती है ।

को दिए। महमूद ने केचत हामिद को सांझी बनाया। उसके अन्धमित्र मुहताकते रह गए। यह उस विमते का प्रसाद था।

(३)

ग्यारह बजे सोरे गाय में हलचल मच गई। भेले चले आ गए। मोहसिन की छोटी बहिन ने दौड़ कर भिश्ती उठा हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली तो भिश्ती नौचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भी बहिन में मारपीट हुई। दोनों खूब रोए। उनकी अम्मा भी शोर सुन कर गिगरी और दोनों को ऊपर से दो दो चों और लगाए।

मिया नूरे के वकील का अंत उनकी प्रतिष्ठाबुद्धि इसल वयादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर नहीं बैठ सकता है। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो छूटिया गाड़ी गई। उन पर लकड़ा का एक पट्टा रक्खा गया। पट्टे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील सादय राजा भोज की माति इस सिंहासन पर ~~बैठा~~। नूरे ने उठे पट्टा झूलना शुरू किया। अदालतों में की छटियाँ और बिजली के पट्टे रहते हैं। क्या यहाँ भी पट्टा भी न हो। क़ानून की गर्मी विमाप पर चढ़ गयी कि नहीं। यास का पट्टा आया और नूरे हवा करते गे। मानव नहीं पट्ट की हवा से या पट्टे की चोट से बचाल

साहब स्वर्ग लोक से मर्त्य-लोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया ! फिर बड़े ज़ोर-शोर से मातम हुआ और बकील साहब की अस्थि पारसियों की प्रथानुसार घूर पर डाल दी गई ।

अब रहा महमूद का सिपाही । उसे चटपट गांव का पहरा देने का काम मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले । वह पालकी पर चलेगा । एक टोकरी आई । उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने बिथड़े बिछाये गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेंटे । नूरे ने वह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे । उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोने वाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं । मगर रात तो अंधेरी होनी ही चाहिए । महमूद को ठोकर लग जाती है । टोकरी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ती है और मियां सिपाही अपनी बन्दूक लिए ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी टांग में विकार आ जाता है । महमूद को आज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है । उसको ऐसा मरहम मिल गया है जिससे वह टूटी टांग को आनन-फानन जोड़ सकता है । केवल गूलर का दूध चाहिए । गूलर का दूध आता है । टांग जोड़ दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्यों ही खड़ा किया जाता है, टांग जवाब दे देती है । शल्य क्रिया असफल हुई तब उसकी दूसरी टांग भी तोड़ दी जाती है ।

अब कम से कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टांग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही सन्धासी हो गया है। अपनी जगह पर बैग बैठा पहरा देता है। कभी कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार, साफा खुरच दिया गया है। इससे अब उसका जितना रूपांतर चाहो कर सकते हो। कभी कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मिया हामिद का हाल सुनिये। अमीना उसका आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठा कर प्यार करने लगी। सबसे उसके हाथ में चिमटा देग कर वह बोला।

‘यह चिमटा कहा था!’

‘मैंने मोल लिया है।’

‘कैसे पैसे में?’

‘तीन पैसे दिए।’

अमीना ने छाती पीट ती। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर दुआ खुद खाया न पिया। लाया क्या था चिमटा। सार मले में तुम्हें और कोई चीज़ न मिली जो वह लाह का चिमटा उठा लाया?

हामिद ने अपराधा भाव से कहा—‘तुम्हारी उगलिया तब से जल जाती थीं। इसलिए मैंने इसे ले लिया।’

। दुनिया का कोप तुरन्त छेद में बदल गया, और छेद भी यह नहीं जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक खरों

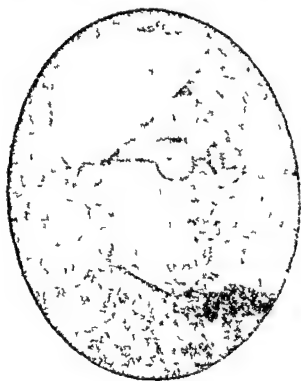
में बिखेर देता है । यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ । बच्चे में कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है । दूसरों को खिलौना लेते और मिठाई खाते देख कर इसका मन कितना ललचाया होगा । इतना ज़ुब्त इससे हुआ कैसे ? वहां भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही । अमीना का मन गद्गद हो गया ।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई । हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र । बच्चा हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था । बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई । वह रोने लगी । दामन फैलाकर हामिद को दुआएं देती जाती थी और आंसू की बड़ी बड़ी बूंदें गिराती जाती थी । हामिद इसका रहस्य क्या समझता !!



श्री सुदर्शन

श्री सुदर्शन जी सन् १८६६ में उत्पन्न हुए थे । आपका जन्म स्थान स्यालकोट है । आपको कहानी लिखने का शौक बचपन से ही रहा है ।



कालिज छोड़कर आपने लाहौर के 'हिन्दुस्तान' नाम के उर्दू पत्र के सम्पादक विभाग में नौकरी कर ली । उससे अलग होकर आपने कितने ही दूसरे उर्दू पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन किया । अग्रे तक आपका साहित्य क्षेत्र उर्दू ही रहा ।

आपकी पहली हिन्दी कहानी

सन् १९२० में सरस्वती में निकली थी । इसके बाद आपकी कहानियाँ हिन्दी में पर्याप्त संख्या में निकलती रहीं और इनका अच्छा आदर भी हुआ है । कहानियों के अतिरिक्त आप हिन्दी में एक दर्जन के लगभग पुस्तकें भी लिख चुके हैं ।

आपकी कहानियाँ सरल स्वाभाविक और मनोरञ्जक हों। साथ साथ ही भावगर्भित भी होती हैं। आपकी भाषा आप नै प्रधान रहती है। आप आजकल कलकत्ता में एक भारत खदमा मित के लिये कहानियाँ लिख रहे हैं। आपने 'रामायण', 'धूप-झोंद' कुछ चित्रपट तैयार किए हैं।

१३



प्रेम-तरु

(१)

डेढ़ सौ साल बीत चुके हैं, परन्तु देवी सुलक्खी का नाम आज भी उसी तरह ज़िन्दा है । गुरदासपुर के ज़िले में कड़याला नाम का एक छोटा सा गांव है, जहां ज्यादा आवादी हिन्दू जाटों की है । वहां आप किसी से पूछिये, वह आपको देवी सुलक्खी की समाधि का पता बता देगा । यहां प्रतिवर्ष मेला लगता है, स्त्रियां रंग-बिरंगे वस्त्र पहन कर आती हैं, और इस पर घी के दीप जलाती हैं । जब बेर पकते हैं, तो सबसे पहले बेर देवी सुलक्खी की समाधि पर चढ़ाए जाते हैं, इसके बाद लोग खाते हैं । क्या मजाल कि समाधि के बेर चढ़ाए बिना कोई बेर को मुंह भी लगा जाए । दीवाली की रात को लोग पहले यहां दीप जलाते हैं, इसके बाद अपने घरों में जलाते हैं । किसी में इतना साहस नहीं कि देवी सुलक्खी की समाधि पर रोशनी किए बिना अपने घर में रोशनी कर ले । ब्याह के बाद दुल्हिने पहले यहां आकर प्रणाम करती हैं, इसके

बाद अपने ससुराल में पाय धरती है। किसी में हिम्मा नहीं कि गाव की इस रीति को तोड़ सके। देवी का सारा गाव क मध्य में है। उसके ऊपर थंझालुओं ने सगरमर की एक सुइड़ और सुंदर छत खड़ी कर दी है। इस छत के ऊपर एक झण्डा लहराता है, जो आसपास के गावों के भी नजर आता है। देवी मुलकसी ने कोई सम्मान नहीं जगा, न कोई राज्य स्थापित किया, न कोई उसमें विशेष शक्ति थी, जो लोगों के दिलों को पकड़ लेती, न उसने लो के लिये कोई उलिदान किया। वह एक गरीब, सीधा सा अनपढ़, परन्तु सतवती ब्राह्मण महिला थी, जो एक दूध और दही जाट के शोध का शिकार हो गई। उसने अपति से जाग्रण किया था, उस पर वह भ्रुव के समान अटल रही। इसमें सन्देह नहीं, वह साधारण ब्राह्मणों के भा परीव थी परन्तु पतिव्रत धर्म की दौलत से भासमान थी। वह मर्यादा की पुजारिन थी। उसने जो कहा था, स करके दिखा दिया। उसके पति ने एक वृक्ष को अपने सत्तान कहा था, मुलकसी ने मरन दम तक पति के स वचन का निगाहा। यही बात है, जिसने उसे इतने दिलों का बाद आज भी गाव में जीनी जागती शक्ति बना रखा है। १६ दू दया देवताओं का पूजन करते हैं, मुसलमान पाले प्रकारों को मानते हैं परन्तु देवी मुलकसी का शासन दो के हृदयों पर है।

(२)

देवी सुलकणी इसी गांव के एक निर्धन ब्राह्मण जयचन्द की स्त्री थी। जयचन्द के घर में स्त्री के अतिरिक्त कोई भी न था-न मां, न चाप, न वहने, न भाई। वस, पति-पत्नी थे, कोई बाल बच्चा भी न था। कुछ दिन इलाज करते रहे, परन्तु जब सारा परिश्रम निष्फल हुआ, तो भाग्य-विधान पर सन्तुष्ट होकर बैठ रहे। उस युग में ब्राह्मण लोग प्रायः नौकरी इत्यादि न करते थे, न धन दौलत में उस समय ऐसी मोहनी थी, न लोग धन को दुर्लभ समझ कर उसकी प्राप्ति के लिए अधीर रहते थे। थोड़े ही में गुज़ारा हो जाता था। एक कमाता था दस खा लेते थे। आज वह ज़माना कहाँ? दस कमाने वाले हो, एक बेकार को नहीं खिला सकते। उस समय के ब्राह्मण सारा सारा दिन पूजा पाठ में लगे रहते थे। खाने पीने को जाट यजमानों के यहाँ से आ जाता था। दोनों को किसी प्रकार की चिन्ता न थी। हाँ, कभी कभी निःसन्तान होने पर कुढ़ा करते थे। यदि एक भी बच्चा हो जाता, तो दोनों का मन बहल जाता। उनका जीवन मधुर, प्रकाशमय तथा विनोदपूर्ण हो जाता। उनको कोई शुभल मिल जाता। अब ऐसा मालूम होता था, जैसे उनका घर सूना-सूना है। जैसे उनका जीवन लम्बी, अंधेरी, समाप्त न होने वाली रात है जिसमें कोई तारा नहीं, चांद नहीं, केवल निराशा के काले बादल घिरे हुए हैं। उन बादलों में कभी कभी, थोड़ी देर के

लिए आशा की विजली भी चमक जाती है परन्तु उस
उनके दिलों का अधिकार बढ़ता था, घटता न था। १९
सहस्र वर्ष साल गुजर गए।

एक दिन जयचन्द ने अपने आगन के कोने में नवज
बच्चे के समान बेरी का एक पौदा देखा, जो स्वयं हाथ
आया था। पौदा बहुत छोटा था और साधारण पौदा
जरा भी भिन्न न था किन्तु जयचन्द को ऐसा प्रतीत हुआ
मानों यह पौदा न था, प्रकृति का अद्भुत चमत्कार था।
उसके छोटे छोटे रंग रेशे और चिकनी चिकनी जरा ज़रा
कौपल देखा कर बेसुध से हो गए। शांति के पुत्र का
अशांति छा गई। दौड़े दौड़े मुलकजी के पास गए, और
वाले— आओ, कुछ दिखाऊँ। भगवान् ने हमारे घर में लू
लगाया है बड़ा सुन्दर है। ”

मुलकजी ने जाकर देखा तो एक नन्हा सा पौदा था।
बोली—“क्या है यह ? ऐसे प्रसन्न क्यों हो रहे हो ?”

जयचन्द— बेरी का पौदा है। अभी छोटा है वन
दिनों में बड़ा हो जायगा। इसमें धीरे धीरे पत्ते आएंगे।
माठ-माँटे फल लगेंगे। लम्बी लम्बी डालियाँ फैला कर
बड़ा होगा। ”

“ १ मुलकजी ने पुलकित होकर कहा—‘ सारे आगन में बाँट
दो जाएगी। ’

जयचन्द—‘ हर साल बेर लगेंगे। लू मँठे होंगे। ’

सुलक्खी—“मैं इसे सदा जल से सींचा करूंगी। थोड़े ही दिनों में बड़ा हो जाएगा। कब तक फलेगा ? ”

जयचन्द—(पौदे को प्रेम-भरी दृष्टि से देख कर)—“चार वर्ष बाद। तुमने देखा, कैसा प्यारा लगता है। बड़ा होकर और भी प्यारा लगेगा। कैसा चिकना और सुन्दर है ! देख कर मन खिल उठता है। ”

सुलक्खी—(सरलता से)—“गरमी के दिन हैं, कुम्हला जाएगा। मुझे तो अब भी घबराया हुआ मालूम होता है। ज़रा कौपलें तो देखो, जैसे प्यास के मारे व्याकुल हो रही हों। कद्विष, ताज़ा जल भर लाऊं ? गरमी से बड़ों-बड़ों का बुरा हाल है। यह तो बिलकुल नन्ही सी जान है ! (चुटकी बजाकर) अभी भर लाऊंगी, दो मिनट में। ”

जयचन्द—“इस समय तुम कहा जाओगी, मैं जाता हूँ। ”

मगर सुलक्खी ने कलसा उठा लिया, और चली गई। थोड़ी देर बाद दोनों पति पत्नी उस छोटे से पौदे को पानी से सींच रहे थे। ऐसे प्यार से, जैसे उनका जीता जागता बच्चा हो; ऐसी भक्ति से, जैसे उनका देवता हो, ऐसी श्रद्धा से, जैसे कोई अमोल वस्तु हो। पौदा सचमुच धूप से कुम्हलाया हुआ था। ठण्डा पानी पीकर उसने आंखें खोल दीं। सुलक्खी बोली—“देख लो ! अब इसमें ताज़गी आ गई या नहीं ? क्यों ? ”

जयचन्द—‘मुझे तो ऐसा मालूम होता है जैसे वह मुस्करा रहा है।

सुलफखी—‘और मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे हमस बातें कर रहा है। कहता है—मैं तुम्हारा बेटा हूँ।”

जयचन्द—‘भइ ! बात तो तुमने मेरे मुँह से छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। हाँ बेटा तो है हाँ। इसे एक प्यार करोगी न ?”

सुलफखी—तुम्हारे कहने की क्या आवश्यकता है ! अपने बेटे का कौन प्यार नहीं करता ?

जयचन्द—‘मैं डरना हूँ कहीं मुझे न भूल जाओ। यहाँ आयु म बालक पाकर स्त्रियाँ पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती हैं मगर मुझ से तुम्हारी लापरवाही सहन न होगी। यह अभी से कहे देता हूँ।’

सुलफखी—चलो हटो ! तुम्हें तो अभी से डाँह देने लगा।”

जयचन्द हमते-हसते घर के भीतर चले गए, परंतु सुलफखी कई घंटे घूप में खड़ी बेरी की ओर देखता रही और रुश होती रहा। आज भगवान् ने उसके घर में रौनक भेन दी थी। आज उसको ऐसा अनुभव हुआ, जैसे वह याम्र नहीं रही—पुत्रपती हो गई है। अशोष बालक छाँद को दूध समझ कर रुश हो रहा था।

(३)

अब जयचन्द और सुलकषी दोनों को एक काम मिल गया। कभी बेरी को पानी देते कि कुम्हला न जाए, कभी खुरपी लेकर उसके आसपास की ज़मीन खोदते कि उसे अपनी खुराक प्राप्त करने में दिक्कत न हो, कभी उसके इर्द-गिर्द बाड़ लगाते कि कोई जन्तु हानि न पहुँचाए, कभी दो चारपाइयाँ खड़ी करके उस पर चादर फैला देते कि गरमी में सूख न जाए। लोग यह देखते थे, और उनकी इस मूर्खता (?) पर हँसते थे। कोई कोई कह भी देता था कि इनकी अकल मारी गई है, साधारण पौदे को पुत्र समझ बैठे हैं।

मगर प्रेम के इन सरल हृदयभक्तों को इसकी ज़रा भी परवा न थी। उन्हें उस बेरी की कोंपलें बढ़ती देखकर वैसे ही प्रसन्नता होती थी जैसी माता पिता को बच्चे के हाथ पांव बढ़ते देखकर होती है। जयचन्द बाहर से आते, तो सबसे पहले बेरी की कुशल-क्षेम पूछते। सुलकषी रात को कई कई बार चौंक कर उठती, और बेरी को देखने जाती। शायद उसे भय था कि कोई ऐसी अनमोल वस्तु को उखाड़ कर न ले जाय। ऐसी चाह, ऐसी सावधानी से किसी गरीब विधवा ने अपने एकमात्र पुत्र का भी लालन पालन शायद ही किया हो।

धीरे-धीरे यह प्रेम-तरु बढ़ने लगा। अब वह ज़मीन से

उहुत ऊपर उठ आया था । उसका तना भी मोटा हो गया था । डालें भी यदी उदी हो गई थीं । रात के समय एसा सन्दह होता था जैसे वह यादों फैलाकर किसी से गने मिलन को अघोर हो रहा है । मुलक्यों उसे अपनी बेटी और जयचन्द उसे अपना बेटा कहते थे । उसे देखकर उन की आँखें चमकने लगती थीं । उनका हृदय-कमल धिर उटना था । वह वृद्ध साधारण वृद्ध न था, उनके रात दिन के परिश्रम का परिणाम था । इसके लिये उन्होंने अपना रातों की नींद कुबान की थी । इस पर उन्होंने अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ मच कर दी थीं ।

इसी तरह प्यार मुदमरत और लाट चार के चार वर्ष गुजर गए और पेरी के फलेने के दिन निकट आ गए । जयचन्द और मुलक्यों दोनों के मन की दशा अकल्पनीय थी । अब और आया, ना दोनों सारा सारा दिन आँगन में बैठे उसकी रत्ना किया करते थे कि कहीं कोई पान न फटक जाय । जयचन्द अब पहले का तरह पूजा पाठ के पायन्द न रह थे । मुलक्यों को अब चरबे का खयाल न था । साधारण वृद्ध के प्रेम ने उन्हें इस तरह बाध लिया था कि जरा दिलत भी न था । हर समय इसी का ध्यान करता था । उस वक़्त वह इस ससार से बाहर चल जात था । मुलक्यों कहती— तुम्हारे इयाल में वह पालतू रंग का और हागा मगर मुझ ता एसा मातूम

होता है कि मेरी बेटी ने सोने के गहने पहने हैं। किस शान से खड़ी है !

जयचन्द कहते—“यह मेरे बेटे की पहली कमाई है। इसे और कौन कहता है ? यह तो मोहरें हैं, बल्कि मुझे तो इसके सामने मोहरें भी तुच्छ मालूम होती हैं। उन्हें मनुष्य बनाता है। इसे स्वयं भगवान् ने अपने हाथों से संवारा है। इसके सामने मोहरें और अशरफियां किस गिनती में हैं ? थोड़े दिनों में यह बेर बन जाएंगे। उनमें जो सुन्दरता, जो यौवन, जो मिठास होगी, वह सोने के उन सिक्कों में कहाँ ?

सुलक्ष्मी कहती—“जिस दिन पहले बेर उतरेंगे, उस दिन मिठाई बाँटूंगी।

जयचन्द कहते—“मैं रतजगा करूंगा। गांव के सारे लोगो को बुलाऊंगा। सारी रात रौनक रहेगी।”

सुलक्ष्मी कहती—“खूब खर्च करना पड़ेगा।”

जयचन्द कहते—“लोग बेटों के व्याहों में अपना धन लगाते हैं। मेरे लिए यही बेटे का व्याह। सब कुछ खर्च हो जाए, तब भी परवा नहीं; परन्तु एक बार दिल के अरमान निकल जाएं। कोई अभिलाषा शेष न रह जाए।”

यह सुनकर सुलक्ष्मी किसी दूसरी दुनिया में पहुँच जाती थी। उसके हृदयरूपी समुद्र में खुशी की तरंगें उठने लगती थीं। जैसे चान्दनी रात में समुद्र में ज्वार भाटा आ जाए।

(४)

आखिर वह दिन भी आ गया, जिसकी पति पत्नी दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले दिन बेरी के दो सौ बेर उतरे। यह बेर इतने मोटे ऐमे गोल मोल ऐसे लाल, इतने सुगर और चिकने थे कि देखकर जी गुश् हो जाता था। दोपहर का समय था। मुलक्की ने पुराने जमाने की हिन्दू स्त्रियों की तरह नए कपड़े पहने। लाल रंग की फुलकारी ओढ़ा। नाक में नथ पहनी और जाकर जयचन्द के सामने खड़ा हो गई। जैसे उस दिन उसके यहा कोई ब्याह शादी थी। उसको इन वस्त्रों में देखकर जयचन्द मुग्ध से हो गए। थोड़ा देर तक दोनों के मुह से कोई बात न निकली। आँखें मूंद कर चुपचाप इस अलौकिक आनन्द से आनन्दित होते रहे। तब जयचन्द ने बेर टोकरी में रखे और मुलक्की से कहा— 'जा ! जाकर यजमानों के यहा गिन कर बीस बास दे आ।'

मुलक्की ने सादसपूर्ण नेत्रों से पति को देखा, और प्यार भरी आवाज में कहा— 'इश्वर करे तू ब मीठे हो। लाग ये अकितियार बाह बाह कहें। आकर बधाइया दें। कहें ऐसे बेर सारे गांव में नहीं हैं।'

जयचन्द ने दस पर अपन लिप रख लिप थे। उनका और ताकत हुए बोले— 'तू ब्यामक्याद मरी जाती है। दूसरों के लिप भांटे न होंग, न सही, पर हमारे लिप इनसे

मीठी वस्तु संसार में और कोई नहीं है । यह मैं चखे बिना कह सकता हूँ । जा । देर हुई जाती है । तू वांट कर आ जाय, तो एक साथ खाएँ । ”

सुलक्खी ने पति की ओर श्रद्धा से देखकर उत्तर दिया—
“ मैं एक आध घर में दे लूँ, तो तुम खा लेना । मेरी राह देखने की क्या आवश्यकता है ? ”

जयचन्द—“ वाह ! आवश्यकता क्यों नहीं ? एक साथ खाएँगे । अकेले में क्या मज़ा आएगा । ज़रा जल्दी लौट आना । नहीं लड़ाई होगी ? ”

सुलक्खी ने छोटा सा घूँघट निकाला, और बेरों की टोकरी उठाकर बाटने चली, जैसे कोई व्याह-शादी की मिठाई बांटने जा रही हो । थोड़ी देर में एक यजमान दौड़ता हुआ आया, और बोला—“ पण्डित जी ! बधाई है । बेर खूब मीठे हैं । ”

जयचन्द का दिल धड़कने लगा । मुंह गुलाब हो गया । बोले—“ अच्छा, आपने खाए हैं ? ”

यजमान—“ खाए क्या है ! एक बेर चखा है । मगर वाह भई वाह ! गुड़ से भी मीठा है । आम से भी मीठा है । कोई और बेर है, या नहीं ? ”

जयचन्द की बाँछें खिली जाती थीं । उन्होंने दो बेर उठा कर यजमान के हाथ में रख दिए । यजमान खाता जाता था और तारीफ़ करता जाता था । कहता था—

‘परिणत जी ! यह बेर क्या है, चीनी के खिलौने हैं । मेरी इतनी आयु हो गई, मगर ऐसे बेर मैंने आज तक नहीं खाए । परमात्मा जान इनमें क्या स्वाद है, मालूम होता है जैसे सुगन्ध भरी है ।’

जयचन्द—‘परमात्मा ने हमारी मेहनत सफल कर दी ।’

यजमान—‘सारे इलाक़े में ऐसे बेर मिल जाए, तो मूँहें मुड़ना नूँ । दूर नजदीक से लोग आया करेंगे । मालूम होता है, आपने अभी तक नहीं चखे ।’

जयचन्द— यजमानों को भेंट कर लूँ फिर खाऊँगा ।’

यजमान— दरान रुद्ध जाओगे । ऐसे बेर काबुल, कम्हार में मा न होंगे । हमारे घर में दस बीस बेरों से क्या घनता है ? दम्बे देखते घतम हो गए । और बेर कब तक उतरेंगे ? हम बीस आर लेंगे ।

जयचन्द—‘आपका अपना वृक्ष है । दो चार दिन तक और उतरेंगे, ता भिजवा दूँगा । मुझे दूसरों को खिला कर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है वह आप आकर नहीं होती । लीजिए दो और ल जाएँ । कै पकी हैं । हम दानों तीन तीन खा लेंगे । हमें यही बहुत है ।’

थोड़ी देर बाद एक और यजमान आया । उसने भी इतनी तारीफ़ की कि जयचन्द की आँखें चमकने लगीं । बोले—‘यह प्रेम का वृक्ष है, इसमें प्रेम के बेर लगे हैं । इस से भीठे सत्तार मर में न होंगे । मर ! इतनी मेहनत कौन करता

है ? आप दोनों ने एक मिसाल कायम कर दी है। दो बेर खाएँ है, दो और मिल जाएँ, तो मज़ा आ जाए। फालतू है या नहीं ? ”

जयचन्द ने मुस्करा कर कहा—“छै वचे है। दो आप ले जाइए। दो दो हम खा लेंगे। ”

यजमान—“यह तो अन्याय होगा रहने दीजिए। फिर सही। और बेर कब तक उतरेगें ? ”

जयचन्द—“आप ले जाइए। हमें स्वाद देखना है। पेट थोड़ा भरना है। (बेर हाथ पर रखते हुए) रात रतजगा है। आइयेगा न ? कोई बेटे का व्याह करता है, कोई पोती पोते का मुएडन करता है। मेरी आयु में यही एक दिन आया है। यही खुशी का पहला दिन है, यही अन्तिम दिन होगा। और क्या ?

यजमान—“ज़रूर आऊंगा, परिडत जी ! मगर बेर खूब भीठे है, अभी तक मुँह से सुगन्ध आ रही है। ”

यह कहकर यजमान चला गया। इतने में दो और आ गए। परिडत जी के पास चार बेर बाकी थे। वह उनकी भेंट हो गए। उनके पास अब एक भी बेर न था। परिडत जी दिल में डरे कि सुलकखी से क्या कहूंगा ? कहीं खफा न हो जाए। तैश में न आ जाए। परन्तु सुलकखी इस प्रकार की ली न थी। सारा वृत्तान्त सुनकर बोली—“आपने

बहुत अच्छा किया। हमारा क्या है ? फिर खा लेंगे। अपना घृत ड, जय चाहा, दो बेर तोड़ लिए। कहीं मागने योग्य जाना है।”

जयचन्द—‘गाव में धूम मच गई है। कहते हैं—देसे बेर दूर दूर तक नहीं है।”

सुलक्ष्मी की आँखों में आँसू आ गए। नय को सम्मिलित हुए बोली—“सभी कहने हैं—और दो। बेर क्या है, खोप के पेडे हैं।

जयचन्द—‘कहत हैं इनमें सुगन्ध भी है।”

सुलक्ष्मी—“जो खाता है, चटखोर लेता है। कहने हैं—पेसा मज़ा न आम में है, न सगतेरे में।”

जयचन्द—‘यह सब तुम्हारे परिधम का फल है। रोप पानी दिया करती थी। तुम्हारे हाथों का पानी अमृत हो गया।’

सुलक्ष्मी—‘और जो तुम कपड़ों से छुआ करते मिरते थे, उसका कोर असर ही नहीं ! यह सब उसी का फल है।’

जयचन्द—“तुम देर में लौटी। नहीं तो एक एक खा लेंगे। अब दो-चार दिन के बाद पढ़ेंगे।”

(५)

परन्तु जयचन्द के भाग्य में बेर पकाना लिखा था, बेर खाना न लिखा था। रतजंग के बाद उनको सदसा मुखार

हो गया। गांव में जैसा इलाज हो सकता था, हुआ। हकीम ने समझा, थकावट का बुखार है। साधारण औषधियों से उतर जाएगा, परन्तु वह थकावट का बुखार न था, मृत्यु का बुखार था। जिसकी दवा दुनियां के बड़े से बड़े हकीम के पास भी न थी। चौथे दिन प्रातःकाल जयचन्द सुलक्खी से घंटा भर धीरे-धीरे बातें करते रहे। बातें क्या करते रहे, रोते और रुलाते रहे। दुनियांदारी की बातें समझाते रहे। ये बातें उनके जीवन का सार थीं। सुलक्खी ये बातें सुनती थी और रोती जाती थी। इस समय उसका दिल बस में न था। वह चाहती थी, जिस तरह भी हो, पति को बचा ले। यदि उसके बस में होता, तो वह अपनी जान देकर भी उन्हें बचा लेती। इसमें उसे ज़रा भी संकोच न था, परन्तु जो भाग्य में बदा हो, उसे कौन रोक सकता है। थोड़ी देर बाद इधर संसार का सूर्य उदय हो रहा था, उधर जयचन्द के जीवन और सुलक्खी की दुनियां का सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया।

अब सुलक्खी संसार में बिलकुल अकेली थी। अब उस का सिवाय एक छोटे भाई के और कोई न था। थोड़े दिन रोती रही, इसके बाद चुप हो गई। इसलिए नहीं कि मृत्यु का शोक भूल गई, बल्कि इसलिए कि उसकी आंखों में आंसू न रहे। रो रोककर आंसु भी समाप्त हो जाते हैं। मगर उसके दिल के घाव हमेशा हरे थे। उसे किसी तरह

फल न बढ़ती थी। पति की मृत्यु के बाद किसी ने उसे हसते हुए न देखा। न अच्छा खाती थी न अच्छा पढ़ता थी। उसका ज्यादा समय दुर्गी लोगों की सेवा में गुजरता था। गाव में कोई बीमार होता सुलझी पहुँच जाती फिर उसे सोना इराम था। सरहाने से न उठती थी। हर समय सेवा में लगी रहती थी, जैसे मा बच्चे की तौमारदारी कर रही हो। जब बह स्तब्ध हो जाता, तब घर लौटती। उसका इन सेवाओं ने गाव वालों के मन मोह लिये। कहते थे—यह स्त्री नहीं देवी है। अब उन्हें मालूम होता था कि यदि यह न हो तो गाव वालों पर विपत्ति टूट पड़े। उसे दुनिया की किसी वस्तु से प्रेम न था—किसी वस्तु की परवा न थी, जैसे उसने सत्यास ले लिया हो, जैसे उसने दुनिया की हर एक वस्तु का परित्याग कर दिया हो।

पर तु एक वस्तु से उसे अब भी प्यार था यह उसकी घरी थी। वह अब भी उसका उसी तरह इयाल रखती थी। उसको उसी तरह पानी देती थी। उसी तरह देखभाल करती थी। गरमी में उसके पत्तों को कुम्हलाया हुआ देख कर अब भी उसी तरह अघार हो जाती थी। रात को चौक चौक कर अब भी उसे देखती थी। बाहर जाती तो माई लक्ष्मन से कह जाती, बेरी का प्यास रखना। जब बेर लगते तो दो तीन मदाने उसके पास से न उठती, कहीं देसा न हो जानवर आकर कुतर जाए। जब बेर उतरते,

जिसको बेर खाने की इच्छा होगी, वैसे देकर खरीद लेगा ।'

सुलफ़्खी ने दुकानदार की ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—'मे आख़्खणी ह कुजड़िन नही जो अपनी बेरा क बेर थेचू । न भाई, यह न होगा । तू अपने रुपये लेजा, मुझे यह सौदा स्वीकार नहीं ।'

एक दूसरे दुकानदार ने कहा—'तू बेरी बेच दे, तो मैं ५८०) दू । बोल दे इरादा ?'

सुलफ़्खी—यह बेरी नहीं है, हमारी सत्तान है । अपनी सत्तान कौन बेचता है ?'

दुकानदार—यह तेरा भ्रम है । आदमी की सत्तान आदमी होता है, धृत्त नहीं होता ।'

सुलफ़्खी—यह अपना अपना विचार है । कई आदमी ऐसे भी हैं जो ठाकुर को पत्थर कहते हैं ।'

दुकानदार—'मुझे तो धृत्त ही मालूम होता है ।'

सुलफ़्खी—तेरी आख़ों में यह जोल कहा, जो इसकी असली सूरत देख सके ! धृत्तों के बेर ऐसे मोठे कहा होते हैं !

सल्लुमन अब तक चुप था, यह सुनकर बोला—'ऐसे मोठे बेर तुमने कहाँ और भी देखे हैं ? एक एक बेर एक आने को भी सस्ता है ।'

दुकानदार—'यह ठीक है ! किन्तु आख़िर है तो बेरी ।

सुलक़्खी—“नही भैय्या ! यह बेरी नहीं है मेरे स्वामी की यादगार है । जो अपने स्वामी की यादगार को बेच दे उसे मर कर नर्क भी न मिलेगा ।”

दूकानदार—“अब इसका क्या उत्तर दूं ! ५००) थोड़े नहीं होते । तेरी सारी आयु सुख से कट जायगी ।”

सुलक़्खी—“भैय्या ! जो सुख मुझे इसको पानी देकर होता है, वह सुख रुपय लेकर कभी न होगा ।”

दूकानदार—“तो पानी देने से तुझे कौन रोकता है ? जितना चाहे, पानी दे । अगर तेरा हाथ पकड़ जाऊं, तो जो चोर की सज़ा, वह मेरी सज़ा । ”

सुलक़्खी—“परन्तु जो बात अब है, वह फिर कहाँ ? अब अपना है, फिर पराया हो जायगा । अब बेर सारे गांव में बांटती हूँ, फिर तू हाथ भी न लगाने देगा । गांव के जिन लोगों के पास पैसे नहीं, वह क्या करेंगे ? बेरों को देखेंगे, और ठण्डी सांस भर कर रह जायेंगे । मुझे कोसेंगे, दिल में गालियां देंगे । अब सब को मुफ्त मिलते हैं, फिर किसी को भी न मिलेंगे । गांव के छोटे छोटे बच्चे कहेंगे, कैसी लोभिन है, चार पैसों की खातिर बेरी बेच दी । न भाई ! यह कलङ्क का टीका न खरीदूंगी । मैं गरीब ही भली । ”

यह कह कर सुलक़्खी बेरी के पास चली गई, और उसकी डालियों पर हाथ फेरने लगी ।

और यद उस स्त्री का हाल था, जिसने किसी पाठशाला में विद्या नहीं पढ़ी थी, निम्ने कम धर्म पर कोई व्याख्यान न सुना था, जिसके पास खाने को कुछ न था जो अपने यजमानों के दान पर निर्वाह करती थी; परन्तु उसका हृदय कितना विशाल, कितना पवित्र था । उसने पड़ोसियों के कृत्य को कितना ठीक समझा था । ऐसी पवित्र हृदया मुशीला तथा सम्य देविया सत्तार में कम ज म लेती हैं ।

(६)

कई वष बीत गए ।

ज्येष्ठ का मढ़ाना था । सुलक्ष्मी बेरी के सोर बेर घाट चुकी थी । अब बेरी पर एक बेर भी बाहों न था । सुलक्ष्मी बेरी के पास खड़ी उसकी साली डलियों को देखती थी, और गुश होती थी कि इस साल का कर्तव्य भी पूरा हो गया । इतने में एक यजमान हाड़ीराम ने आकर सुलक्ष्मी को नमस्कार किया और बोला—' परिडतानी जी ! हमारे बेर कहा है ? '

सुलक्ष्मी का मुह बुम्दला गया । दैरान थी, क्या बदे, क्या न बदे । हाड़ीराम गाव में सब से उजड़ जाट था । ज़रा ज़रा सी बात पर जोश में आजाता था और मरने मारने को तैयार हो जाता था । उसकी साल आखें देख कर सारा गाव सदम जाता था । यद अपने परिवार सहित दो मढ़ाने

से कहीं बाहर गया हुआ था। सुलकखी एक दो बार उसके मकान पर गई, और किवाड़ बन्द पाकर लौट आई। इसके बाद वह उसे भूल सी गई, और बेर समाप्त हो गए और अब—

हाड़ीराम उसके सामने खड़ा था। सुलकखी ने उसकी ओर सहमी हुई निगाहों से देखा और कहा—“यजमान ! बेर तो खतम हो गए।”

हाड़ीराम ने ज़रा गर्म हो कर कहा—“बाह ! खतम कैसे हो गए ? हमें तो मिले ही नहीं !”

सुलकखी—‘तुम जाने कहां चले गए थे ? दो बार तुम्हारे मकान पर लेकर गई, दोनों बार दरवाज़ा बन्द था। लौट आई। इसके बाद मुझे ख्याल नहीं रहा।’

हाड़ीराम--(तयारियां चढ़ा कर)--‘ख्याल क्यों नहीं रहा। इतनी बच्चा भी तो नहीं हो।’

सुलकखी--(शान्ति से)--“अब यजमान ! तुमसे बहस कौन करे ? भूल हो गई, अगले साल दुगने ले लेना।”

हाड़ीराम—खाना तो कभी नहीं भूलती हो, नफसल पर गल्ला मांगना भूलती हो, हमारे बेरो का समय आया, तो भूल गई !”

सुलकखी--“तुम बाहर चले गए थे। क्या करती ?”

हाड़ीराम—‘वृक्ष में लगे रहने देता । मैं आता, उतार लेता ।’

सुलफखी—‘और जो पक कर गिर जाते तो फिर ? अब किसी के मुँह में तो पड़ गए । उस अवस्था में किसी के भा काम न आते ।’

हाड़ीराम के नेत्रों से अग्नि की ज्वाला निकलने लगा । गरज कर वाला—‘मेरे घेर जब मेरे काम न आए ता मुझे क्या चाहे रहें चाहे मिट्टी में मिल जाए । मेरे लिए एक सा बात है । तू दूसरों को देने वाली कौन थी ?’

अब सुलफखी को भी क्रोध आया । जरा तेज़ होकर बोली—‘घेरी मेरी है, तुम्हारी नहीं । जिसको चाहूँ, एक घेर भी न दू जिसको चाहूँ, सब क-सब दे दू । घेरी तुम्हारे हाथों विकी हुई नहीं । तुम बोलने वाले कौन ?’

हाड़ीराम—‘अच्छा अब हम कौन हो गए ?’

सुलफखी—(उसी तरह गुस्से से)—‘मेहनत मँ करती हूँ । रात दिन मैं जागती हूँ, फिर सारे के सारे घेर घाट देती हूँ । आप एक घेर भी नहीं खाती । इस पर भी इतना क्रोध ! आपर आदमी को कुछ सोचना भी तो चाहिए । जाओ नहीं दिए न सही । जो कुछ करना हो कर लो ।’

हाड़ीराम दाँत पीसता हुआ चला गया । इधर सुलफखी घेरी के पास जा कर उससे लिपट गई, और बोली—‘घेटी !

अगर तुम्हारा बाप जीता होता, तो इसकी क्या हिम्मत थी, जो इस तरह मेरी बेइज्जती कर जाता।”

इससे तीसरे दिन सुलक़्खी एक बीमार बच्चे की सेवा-सुश्रूषा कर रही थी कि एक लड़का दौड़ता हुआ आया, और हाँपता हुआ बोला—‘तुम्हारी बेरी को हाड़ी ने काट दिया। कई लोगों ने मना भी किया, मगर वह कहता था, मुझे सुलक़्खी ने गाली दी है। सारा आँगन भर गया है।’

(७)

सुलक़्खी को ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने गोली मार दी है। वहाँ से चली, तो उसे रास्ता न दिखाई देता था। उसके पाँव तले से ज़मीन निकलती जा रही थी। उस समय उसके शरीर में ज़रा भी शक्ति न थी। पाँव इस तरह लड़खड़ा रहे थे, जैसे अभी गिर पड़ेगी। मार्ग के दोनों ओर लोग खड़े उसको देखते थे, और हाड़ी को गालियाँ देते थे। उस समय उन्हें सुलक़्खी का विचार था। हाड़ी का भय न था। वे सुलक़्खी के साथ सहानुभूति दिखाना चाहते थे, और उन्हें सिवाय हाड़ी को गालियाँ देने के और कोई ढंग न दिखाई देता था।

उधर सुलक़्खी का आँगन स्त्री पुहपो से भरा था और बीच में बेरी पड़ी थी। लोग कहते थे—“कितना ज़ालिम है, ज़रा सी बात पर बेरी काट दी। काटने पर ही सबर किया

होता, तो भी गैर थी । अगले वर्ष फिर उग आती, परन्तु इसने जहाँ भी उखाड़ दीं । आदमी काँड़े को है चाडाल है ।

सहसा सुलफखी छारा सा घूँघट निजाले आई, और आगन में खड़ी हो गई । उसने तेरा की डालों को जमान पर पड़ा देखा, तो उसके दिल पर छुरिया चल गई । उसको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह वृक्ष की डालियाँ नहीं, उसकी सत्तान के हाथ पाव हैं । उसने आगे उड़कर एक एक डाला को गले लगाया और रो रोकर विलाप किया । इस विलाप को सुन कर लोग रोने लगे । सुलफखी कहती थी— 'अरी ! तूने मुझे बुला क्यों न लिया ? बच्ची ! पता नहीं ! अगर मुझ पर जालिम का कुरदावा चला होगा, तेरा दिव्य क्या कहता होगा । तड़पता होगा । सोघता होगा, माँ काँड़े को है डायन दे । यह जसाई मेरे हाथ पाव काट रहा है, वह पाहर घूम रही है । बच्ची ! मुझे क्या मालूम था तेरे सिर पर मौत खेल रही है । अभी मली चगी छोट कर गयी, अभी अभी तू पाहें कैला पर खड़ी थी । मुझे देख कर जी प्रसन्न होता था । इतनी जल्द तैयारी कर लो । यह लोग तेरे घेरों को तरसेंगे । येने मीठे घेर और क्या है !

'तेरे पाप ने मरने समय कहा था जब तक जीती है इसकी रक्षा करना, और इसके घेर लोगों में बाटना । आज ये दोनों बातें असम्भव हो गई । अब मेरा जारा

वृथा है। चल दोनों, एक साथ चले। वहाँ तीनों मिल कर रहेंगे।

यह कह कर उसने बेरी की डालियों की चिता सी चुनी। नीचे ऊपर सूखी लकड़ियाँ डाल कर उस पर घी डाला, और आग लगा दी। आग की ज्वालाएं हवा में उठने लगी। लोग पीछे हट गए, मगर सुलकखी जलती हुई बेरी के पास चुपचाप खड़ी उसकी-ओर देख रही थी।

सहसा वह चिता में झुद पड़ी। लोगों में हलचल मच गई। वे “है-है” कहते हुए आगे बढ़े; परन्तु आग की ज्वालाओं ने उनका रास्ता रोक लिया। सुलकखी आग में बैठी जल रही थी; किन्तु उसके मुख पर ज़रा परेशानी—ज़रा घबराहट न थी, बल्कि आत्मिक प्रकाश था। जैसे उसके लिए आग आग न थी, ठंडा जल था। इतने में आग में से आवाज़ आई—“मैं मरते समय वसीअत करती हूँ कि मेरे कुल के लोग भविष्य में दान न ले।”

पुरुषों की आंखों से आंसू जारी थे। स्त्रियाँ फूट फूट कर रो रहीं थीं, परन्तु सुलकखी मृत्यु के गरजते हुए शोलों में चुपचाप बैठी थी। देखते-देखते मां बेटी दोनों जल कर भस्म हो गईं। कल दोनों जीती थीं, आज कोई भी न थी। थोड़ी देर के बाद सुलकखी का भाई लछमन और गांव के जाट लाठिया लिए हाड़ीराम को ढूंढ़ते फिरते थे।

वे कहते थे—“आज उसको जीता न छोड़ेंगे । पहले मारेंगे फिर घाघकर आग में जला देंगे ।’

परन्तु हाजीराम बगलों और यनों में मुद्द छिपावा फिरता था । इसके बाद उसको किसी ने नहीं देखा । कब मरा ! कहा मरा ! कैसे मरा !—यह किसी को भी मालूम नहीं ।

राजा

(१)

‘सौ साल ।’

मैं चौंक पड़ा । मुझे अपने कानों पर विश्वास न आया । मैंने कापी मेज पर रख दी और अपनी कुरसी को थोड़ा सा आगे सरका कर पूछा—“क्या कहा तुमने ? सौ साल ? तुम्हारी उम्र सौ साल है ?”

तीनों कोटों को एक साथ बांधते हुए धोबी ने मेरी तरफ देखा, और उत्तर दिया—‘हां बाबू साहब ! मेरी उम्र सौ साल है । पूरी सौ साल । न एक साल कम न एक साल ज्यादा । मेरी सूरत देखकर बहुत लोग धोखा खा जाते हैं ।’

‘मगर तुम इतने बड़े मालूम नहीं होते । मेरा विचार था, तुम सत्तर साल से ज्यादा न होगे ।’

‘नहीं बाबू साहब ! पूरे सौ साल खा चुका हूं ।

‘ये भाग्यमान् हो । आन कल तो लोग पचाम साल में पड़ले हा तैयारी कर लेते हैं ।

घोरी ने इसका कोई उत्तर न दिया ।

महमा मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ । मैंने पूछा— अच्छा माइ घोरी ! यह तो कहा तुमने सिफलों का राज्य ता देमा होगा ।’

‘हा देला है ।’

‘उस राज्य में तुम सुन्नी थे या नहीं ? मेरा मतलब यह है उस राज्य में लोगों का क्या दशा था ।’

घोरा ने मरी और मरुप्प नेरों से देखा जैसे किसी को सुन्नी हुई बात याद आ जाय और ठण्ठो सास भर कर बोला— मैं उस जमाने में बहुत छोटा था । मिस्कों का राज्य क्या था, यह नहीं कह सकता । हा मिस्कों का राजा क्या था यह कह सकता हूँ ।’

मेरे हृदय में गुदगुदी सी दाने लगी पूछा— तो तुमने महाराज का दशन किया है ?

‘हा सरकार ! दशन किया है । क्या कहना ! अजोर आदमी थे । उनकी यह शस्त्र-सूत्र याद आता है तो दिन में भाले से धुम जाते हैं । बहुत न्यानु थे । राजा थे मगर समाज साधुओं का था । धनरू का नाम भी न था । मैं आपसे एक बात सुनाता हूँ । शायद आप को उस पर विश्वास न आए । आप कहेंगे यह कहानी है । मगर यह कहानी नहीं

सच्ची घटना है । इसमें झूठ जरा भी नहीं । इसे सुन कर आप खुश होंगे । आपको अचरज होगा । आप उछल पड़ेंगे । मैं मामूली हिन्दी जानता हूँ, पर मैंने बहुत किताबें नहीं पढ़ीं आप रात दिन पढ़ते रहते हैं । परन्तु मुझे विश्वास है, ऐसी घटना आपने भी कम पढ़ी होगी ।'

मैं दत्त चित्त होकर सुनने लगा । धोबी ने कहा—

(२)

मैं धोबी हूँ । मेरा बाप भी धोबी था । हम उन दिनों लाहौर में ही रहते थे । पर आज का लाहौर वह लाहौर नहीं । हम उस ज़माने में जहा कपड़े धोया करते थे, वह घाट अब ख़ुशक हो चुका है । रावी नदी दूर चली गई है, और उसके साथ ही वह दिन दूर चले गये हैं । भेद केवल यह है कि रावी थोड़ी दूर जा कर नज़र आ जाती है मगर वह ज़माना कहीं दिखाई नहीं देता । भगवान् जाने, वह कहाँ चला गया है ।

मेरी उम्र उन दिनों सात आठ साल की थी, जब चारों तरफ़ अकाल का शोर मचा । ऐसा अकाल इससे पहले किसी ने न देखा था । लगातार अढ़ाई साल वर्षा न हुई । किसान रोते थे । तालाब, नदी, नाले सब सूख गए । पानी सिवाय आखों के कहीं नज़र न आता था । मुझे घे दिन आज भी कल की तरह याद है, जब हम लंगोट लगाए मुँह काले कर बाज़ारों में डंडे बजाते फिरते थे कि शायद इसी तरह

वषा होने लगे । मगर वषा न हुई । लड़कियां गुदिया जलाती थीं, और उनके सिर पर खंडे होकर छाती कूटती थीं । पानी बरसाने का यह नुस्खा इस युग में बड़ा कारगर समझा जाता था लेकिन उस समय इससे भी कुछ न बना । मुसलमान मस्जिदों में नमाज पढ़ते, हिन्दू मंदिरों में पूजा करते सिक्ख गुरुद्वारों में गुरु साहब का पाठ करते । मगर वषा न होती थी । भगवान् वषा ही न करता था । हुनिया भूखों मरने लगी । बाजारों में रौनक न थी दूकानों पर गाइक न थे घरों में अनाज न था । ऐसा मालूम होता था, जैसे प्रलय का दिन निकट आ गया है । और सब से घुरी दशा तो जाटों का थी । मेरा दादा कहता था उस समय उनके चेहरों पर सुर्यो न थी, आँखों में चमक न थी, शरीर पर मांस न था । सब की आँखें आकाश की ओर लगी रहती थीं । मगर बड़ा दुभाग्य की घटायेँ थीं, पानी की घटायेँ न थीं । अनाज रुपये का बीस सेर बिकने लगा ।

मेने आधय से पूछा—“बीस सेर ?”

‘जी हा बीस सेर ! उस समय यह भी बहुत महंगा था । आज कल रुपये का चार सेर बिकने लगे, तो भी बाबू लोग अनुभव नहीं करते । मगर उस समय यह दशा न थी । मेरे घर में एक मैं था, एक मेरा बूढ़ा दादा, एक विधवा मा, दो बहनें । इन सब का खर्च चार पांच रुपये मासिक से अधिक न था ।”

मैंने अधीरता वश बात काट कर पूछा—‘फिर ?’

‘हां, तो फिर क्या हुआ। अनाज बहुत मंहगा हो गया, लोग रोने लगे। अन्त में यहां तक नौबत आ पहुंची कि हमारे घर में खाने को कुछ न रहा। ज़ेवर बरतन सब बेच कर खा गये। केवल तन के कपड़े रह गये। सोचने लगे अब क्या होगा। मेरा बाबा, भगवान् उसे स्वर्ग में जगह दे, बड़ा हंस मुख मनुष्य था। हर समय फूल की तरह खिला रहता था। प्रायः कदा करता था, जो संकट आए, हंस कर काटो। रोने से संकट कम नहीं होता, बढ़ता है। मैंने सुना है, मेरे बाप के मरने पर उसकी आंख से आंसू की बूंद न गिरी थी। परन्तु इस समय वह भी रोता था। कहता था, कैसी तबाही है, बाल-बच्चे सामने भूखों मरते हैं। और मैं कुछ कर नहीं सकता। यहां तक कि कई दिन हमने वृद्धों के पेटे उवाल कर खाए।’

एक दिन का जिक्र है। बाबा आंगन में बैठा हुक्का पीता था, और आकाश की तरफ देखता था। मैंने कहा—‘बाबा ! अब नहीं रह जाता। कहीं से रोटी का टुकड़ा ला दो। पेटे नहीं खाए जाते।’

बाबा ने ठण्डी सांस भरी और कहा—“अब प्रलय का दिन दूर नहीं।’

मैं—‘प्रलय क्या होती है।’

बाबा—‘जब सब लोग मर जाते हैं।’

मैं—‘तो क्या अब सब लोग मर जाएंगे ?’

बाबा—‘और क्या बेटा ! अब खाने को न मिलेगा, तर मरेंगे नहीं तो और क्या होगा ?’

मैं— बाबा ! मैं तो न मरूंगा । मुझे कहीं से रोटी भगवा दो । बहुत भूख लगी है ।

बाबा की आँखों में आँसू आ गये । भराई दूर आवाज़ से बोला—‘ऐसा जमाना कभी न देखा था । तुम वृत्तों के पत्तों से उड़ना गए हो । गाव के लोग तो मँहक और चूरे तक खा रहे हैं ।’

मैं— बाबा ! ऐसी चीजें वे कैसे पा लेते हैं ?

बाबा—‘पेट सब कुछ करा लेता है ।’

मैं— पर ये चीजें वही छुड़ित हैं ?

बाबा—‘इस समय कौन परवा करता है मर्द !’

मैं—‘उनका जी कैसे मानता होगा ?’

बाबा—‘भगवान् किसी तरह यह दिन निकाल दे ।’

मैं— बाबा, मँह क्यों नहीं बरसता ?

बाबा—‘हमारी नीयतें बदल गई हैं । वना ऐसा समय कभी सुना न था । आदमी आदमी के लहू का व्यासा हो रहा है । हर एक की दृष्टि में खाली है । मानों दर साँस में खून है पानी नहीं है । तुम अज्ञान हो आओ, वहाँ से माँग लामो । शायद कोई तरस खाकर तुम्हें राटी का एक टुकड़ा दे दे ।’

मैं—‘तो जाऊँ ।’

बाबा—‘भगवान् अब मौत दे दे । गरीब थे, पर किसी के सामने हाथ तो न फैलाते थे ।’

(३)

मैं भूख से मर रहा था, रोटी मांगने को निकल पड़ा । मेरा विचार था, अकाल शायद गरीबों के यहाँ ही है । मगर बाहर निकला, तो सभी को गरीब पाया । उदास सब थे, खुश कोई भी न था । मैं बहुत देर तक इधर उधर मांगता फिरा । मगर किसी ने रोटी न दी । मैं निराश होकर घर को लौटा, पर पाँच मन मन के भारी हो रहे थे ।

सहसा एक जगह लोगों का समूह नज़र आया । मैं भी भागकर चला गया । देखा, सरकारी आदमी मुनादी कर रहा है, और लोग उसके गिर्द खड़े खुश हो रहे हैं । मैं चकित रह गया । मैं समझ न सकता था कि उनके खुश होने का कारण क्या है । मगर थोड़ी देर बाद रहस्य खुल गया । महाराज रणजीतसिंह ने शाही किले में अनाज की कोठड़ियाँ खुलवा दी थीं, और घोषणा करा दी थी कि जिस जिस गरीब को आवश्यकता हो, ले जाए । दाम न लिया जायगा । लोग महाराज की इस उदारता पर चकित रह गए । कहते थे, ये आदमी नही देवता हैं । मुसलमान कहते थे, कोई औलिया हैं । अब खुदा की खलकत भूखों न मरेगी । खुदा

नहीं सुनता, राजा तो सुनता है। खलकत के लिए राजा ही खुदा है। एक आदमी कह रहा था 'महाराज ने आदमी बाहर भेजे हैं कि जितना अनाज मिल सके, खरीद लाओ। मेरी प्रजा मेरी सन्तान है, मैं उसे मूछों न मरने दूंगा।'

दूसरा आदमी बोला—'मगर महाराज पहले क्या सो रहे थे ? यह विचार पहले क्यों न आया, अब क्यों आया है ?'

पहले आदमी ने उत्तर दिया—'महाराज सोते नहीं थे, जागते थे। हर समय पूछते रहते थे कि अब अनाज का क्या भाव है, अब लोगों का क्या हाल है ? कल तक यही पता था कि अनाज महंगा है। आज समाचार पहुँचा कि बाज़ार में अनाज का दाना भी नहीं मिलता। महाराज घबरा गए कि अब क्या होगा ? आखिर उन्होंने आदमी बाहर भेज दिए कि जितना अनाज मिल सके, खरीद लाओ। मैं लोगों में सुख चाहता हूँ। मेरे कोप में खपया रहे या न रहे मगर लोग बच जाएँ।'

एक दिन बोला—'रहोंने तो कह दिया कि महाराज क्या पहले सोते थे ? यह मालूम नहीं, महाराजों को एक की चिन्ता नहीं होती सबकी चिन्ता होती है।'

दूसरा—'मार्ग ?' मेरा यह अभिप्राय थोड़ा ही था।

पहला—एक और बात भी है। महाराज ने बाहर के शिल्पियों को भी यही आज्ञा भेजी है।

दूसरा—“आफ़रीन है राजा हो तो ऐसा हो।”

तीसरा—“कोई और होता तो कहता, वर्षा नहीं हुई तो इसमें मेरा क्या दोष है। मेरे राज भवन में सब कुछ है।”

दूसरा—“इस समाचार से मरते हुए लोगों में जान पड़ जाएगी।”

तीसरा—“आज शहर की दशा देखना।”

पहला—“किसी की आंख में चमक न थी।”

दूसरा—“ऐसा अंधेर कभी न हुआ था।”

तीसरा—“पर अब परमेश्वर ने सुन ली।”

मैं यहाँ से चला, तो ऐसा प्रसन्न था, जैसे कोई अनमोल चीज़ पड़ी मिल गई हो। कुछ देर संयम करके धीरे धीरे चला, फिर दौड़ने लगा। डरता था, कि यह शुभ-समाचार घर में मुझ से पहले न पहुँच जाए। मैं चाहता था, घर के लोग यह खबर मुझी से सुनें। गोली के सदृश भागा जाता था, मगर घर के पास पहुँच कर गति कम कर दी और धीरे धीरे घर में दाखिल हुआ। मेरा बाबा उसी तरह सिर मुकाये बैठा था। मेरा हृदय खुशी से घड़कने लगा—वह अभी तक न जानता था।

मुझे खाली हाथ देख कर बाबा ने ठण्डी सांस भरी और सिर मुका लिया। मैंने जाकर बाबा का हाथ पकड़ लिया, और उसे जोर से घसीटता हुआ बोला—“उठो, चादर लेकर चलो। महाराज ने मुनादी करा दी है कि अनाज मुक्त मिलेगा।”

मेरी मा मेरी बहन, मेरा बाबा सब चौक पड़े। उनको मेरे कहने पर विश्वास न हुआ। सिर हिलाते थे, और करते थे—“बच्चा है। किसी ने मजाक किया होगा। यह सब समझ बैठा हूँ। भला महाराज सारे शहर को अनाज मुक्त कैसे दे देंगे? बहुत कठिन है।”

मगर मैंने कहा— मैंने मुनादी अपने कानों से सुनी है। यह झूठ नहीं है। लोग सुनते थे, और खुश होते थे। तुम चादर लेकर मेरे साथ चलो।’

मेरा बाबा चादर लेकर मेरे साथ चला। उसको अभी तक संदेह था कि यह मजाक है। लेकिन बाजार में आकर देखा तो हजारों लोग उधर ही जा रहे थे। अब उसको मेरी बात पर विश्वास हुआ।

जिल में पहुँच तो वहाँ आदमी हा आदमी थे। पर किसी अमीर को अन्दर जाने की आज्ञा न थी। पाटक पर सिपाही खड़े थे। वे जिनके कपड़े सफ़ेद देखते उसे रोक लेते। कहते यह अनाज परीशों की सहायता के लिए है, अमीरों के घर तो अब भी भरे हुए हैं। यह परीशों का लङ्घन था, अमीरों का भोजन न था। मेरा इतना उध हो गई है। मैंने अमीरों के लिए सब दर तुले देचे हैं। उनको नहीं रोक टोक नहीं होती। पर वहाँ अमीर खड़े मुँह ताकते थे और उनका कोई परवा न करता था। हम पराव थे हमें किसी ने नहीं रोक। हम अन्दर चले गए। वहाँ देखा कि सैकड़ों सरकारी

आदमी तराजू लिए बैठे हैं, और तोल तोल कर २०-२० सेर अनाज सब को देते जाते हैं। लेकिन हर घर में एक ही आदमी को देते थे, दूसरो को लौटा देते थे। लोग बहुत थे, आगे बढ़ना आसान न था। मैं छोटा था, मेरा बाबा बूढ़ा था, और हमारे साथ कोई जवान आदमी न था। हमने कई आदमियों से मिन्नत की कि हमें भी अनाज दिलवा दो, मगर उस आपा-धापी के समय किसी की कौन सुनता है। मेरे बाबा ने दो चार आगे बढ़ने का यत्न किया मगर दोनों बार धक्के खा कर वाहर आ गया। तब मैं और मेरा बाबा दोनों एक तरफ़े खड़े हो गए, और अपनी विवशता पर कुढ़ने लगे।

(४)

सन्ध्या के समय जब अन्धेरा हो गया, तब शेर बजने की आवाज़ सुनाई दी। इसके साथ ही अनाज देने वालों ने अनाज देना बन्द कर दिया। हुकम हुआ, बाकी लोग कल आ कर ले जायें। लेकिन अगर कोई दुबारा आ गया तो उसकी खैर नहीं महाराज खाल उतरवा लेगे। लोग निराश हो गए, पर क्या करते? धीरे धीरे सारा आगन खाली हो गया। हम कैसे चले जाते? कई दिन से भूखे मर रहे थे। दोनों रोने लगे। बाबा बोला—“बेटा! हम कैसे अभागे हैं, नदी के किनारे आ कर भी प्यासे लौट रहे हैं। जो भाग्यवान्

धे धे भोलिया भर कर ले गए । हम खड़े देखते रहे । अब खाली हाथ लौट आयेगे ।”

मैं—‘ बाबा ! उनसे कहो हमें दे दें । हम बहुत भूखे हैं ।’

बाबा— कौन सुनेगा । चलो घर चलें । अनाज न मिलेगा गालिया मिलेंगी ।’

म—‘ तुम कहो तो सही ।’

बाबा—‘ बेटा तुम कैसी बातें करते हो । ये लोग अन्न न देंगे, कल फिर आना पड़ेगा ।’

मैं—‘ तो आज क्या खाएंगे ?’

बाबा—‘ परीयों के लिए घम के सिवा और क्या है ! आज की रात और सब करो ।’

मैं— बाबा मैं तो न जाऊंगा । कहो, शायद दे दें ।’

बाबा—‘ तुम पागल हो ! क्या मैं भी तुम्हारे साथ पागल हो जाऊँ ।’

इतने में एक सरदार आ कर हमारे पास खड़ा हो गया और बोला—“अन्न जाते क्यों नहीं ! कल आ जाना, आज अनाज न मिलेगा ।’

बाबा—(टपड़ो सास मर कर) ‘जाते हैं सरकार !’

इस धिक्कता से उन सरदार साहब का दिल पसीज गया, ज़रा ठहर कर बोले—‘ तुम कौन हो ?’

बाबा—‘ घोषी हूँ ।’

सरदार—‘ कल न आ सकोगे ?’

बाबा—“आने को तो सिर के बल आणेंगे । पर गरीब आदमी हैं । मैं बुढ़ा हूँ, यह अभी बच्चा है । भीड़ में पता नहीं कल भी अवसर मिले, न मिले । आज मिल जाता तो रात पीस कर खा लेते ।”

सरदार—“तुम्हारे यहां कोई जवान आदमी नहीं है ?”

बाबा—“नहीं सरकार ! इस बालक का बाप था, वह भी मर गया ।”

सरदार—“तो कल आना कठिन है तुम्हारे लिए ?”

मैं—“सरकार आज ही दिला दे ।”

सरदार—(हंस कर) “आओ आज ही दिला दूँ ।”

मैं—“बाबा कहता था, आज न देगे । क्यों बाबा ?”

सरदार साहब हंसने लगे, मगर मेरे बाबा ने मुझे संकेत किया कि चुप रहो । मैं चुप हो गया । सरदार साहब ने कहा—“आओ, मैं तुम्हें दिला दूँ ।”

हम सरदार साहब के पीछे पीछे चले । उन्होंने अनाज के ढेर के पास पहुँच कर एक आदमी से कहा—“इस बुढ़े को बीस सेर गेहूँ दे दो ।”

वह आदमी मेरे बाबा से बोला—चादर फैला दो, और गेहूँ तोलने लगा ।

मेरा बाबा बोला—“सरकार ! अब कब फिर मिलेगा ?”

सरदार—“अगले सप्ताह ।”

बाबा—“हम कई दिन से भूखों मर रहे हैं ।”

सरदार—(हस कर) “तो और क्या चाहते हो ?”

बाबा—“सरकार ! कहते हुए भी शर्म आती है, क्या कहूँ ?”

सरदार—“नहीं कह दो । कोई बात नहीं ।”

बाबा—‘बीस सैर और दिखा दें तो बड़ी हृषा हो । आपकी जान को दुआए देता रहूंगा ।’

सरदार—“बड़े लाली हो ।

बाबा—सरदार साहब ! पेट मागता है तब जीम खुलती है । नहीं हम ऐस बेधैरत कभी न थे ।

सरदार—‘अगर इसी तरह तमाम लोग करें तो कैसे पूरा पड़े ?’

बाबा—‘सरकार ! राजा के महल में मोतियों की क्या कमी है । नहीं होता ता न दें । फिर द्वार पर आ पड़ेगें । महाराज ने इस खैरात से लोगों के दिल मोह लिए हैं । शहर में बड़ा यश हो रहा है । (मुझसे) बेटा ! नमस्कार कर । उन्होंने हमें बचा लिया, नहीं तो रात रोते कटती ।’

मैं—(आगे बढ़ कर) नमस्कार !

सरदार—(मुस्करा कर) जीते रहो बेटा ! तुम्हारा क्या नाम है ?

मैं—‘जगो !’

सरदार—अब अनाज मिल गया ना, आधो रोटिया पका कर खाओ ।’

मैं—“सरकार ! बीस सेर और दिला दें ।”

सरदार—“अरे ! तू बाबा से भी लोभी निकला ।”

मैं—“नहीं, सरकार ! बीस सेर और दिला दें ।”

सरदार—(अनाज तोलने वाले से) “बीस सेर और तोल दे । बूढ़ा बाबा बार बार कैसे आएगा ।”

बीस सेर और मिल गया ।

सरदार—“बाबा ! अब तो खुश हो गए ?”

बाबा—“बाहू गुरु आपका यश दूना करे ।”

सरदार—“महाराज की जान को दुआ दो । यह सब उनकी कृपा है, नहीं तो लोग भूखों मर जाते । और सच पूछो तो यह उनका धर्म था । न करते तो पाप के भागी बनते, राजा प्रजा का पिता होता है ।”

बाबा—“सच है सरकार ! महाराज ऋषि हैं ।”

सरदार—“ऋषि तो क्या होंगे । आदमी बनें तो यह भी बड़ी बात है ।”

अब तक सब तोलने वाले आदमी जा चुके थे । किले में हमी थे, और कोई न था । सरदार साहब बोले—“अब उठा लेकर ले जाओ ।”

‘गरीब दावत में जाकर खाता बहुत है, यह नहीं सोचता पवेगा या नहीं । बाबा ने भी आज अनाज ले तो बहुत लिया अब उठाना मुश्किल था । क्या करे क्या न करें । उस समय सिक्खों का वही रोव था, जो आज अंगरेजों का है ।

बाबा सहम कर बोला "सरदार साहब गठरी भारी है। कोई सिर पर रख दे तो ले जाऊँ।"

सरदार साहब ने गठरी उठा कर मेरे बाबा के सिर पर रख दी।

बाबा दो कदम चल कर गिर गया।

सरदार साहब बोले— 'क्यों भाई ! इतना अनाज क्यों बर्बाद किया जो उठाए नहीं उठता ?' पास से लेते तो यह तकलीफ़ न होती। लोभ करते हो, अपनी देह की ओर नहीं देखते। जाओ, अपने किसी आदमी को बुला लो। तुमसे न उठेगा।

मेरे बाबा न आइ मरी, और कहा—'सरकार ! मेरी सदायता कौन करेगा ?'

सरदार साहब ने कुछ देर सोचा फिर वह गठरी अपने सिर पर उठा कर चलन लगे। हम दहक रहे गए। हमारे शरीर के एक एक अंग से उनके लिए दुआ निकल रही थी। हम सोचते थे यह आदमी नहीं देवता है।

(५)

यह पढ़ कर घोषी दह गया। कहानी ने बहुत मनोरञ्जक रूप धारण कर लिया था। मैं इसका अगला भाग सुनने को अधीर हो रहा था। मैंने जल्दी से पूछा— 'क्यों भाई घोषी ! फिर क्या हुआ ?' ।

धोबी ने चायु-मण्डल में इस भांति देखा, जैसे कोई खोई वस्तु को खोज रहा हो और फिर दीर्घ निःश्वास लेकर बोला—‘जब हम घर पहुँचे और सरदार साहब अनाज की गठरी हमारे आंगन में रखकर लौटे तो मैं और मेरा बाबा दोनों उनके साथ बाज़ार तक चले आए। मेरा बाबा बार बार कहता था, इसका फल आप को वाह-गुरु देंगे। मैं इसका बदला नहीं दे सकता। एकाएक उधर से कुछ फौजी सिक्ख निकल आए। वे सरदार साहब जहाँ खड़े थे, वहाँ रोशनी थी। फौजियो ने उनको पहचान लिया, और तलवारें निकाल कर सलाम किया। यह देखकर मेरा बाबा डर गया। सोचा, यह कौन है ? कोई बड़ा ओहदेदार होगा, वरना ये लोग इस प्रकार सलाम न करते।

जब सरदार साहब चले गए तब मेरा बाबा उन फौजियो के पास पहुँचा, और पूछा—‘यह कौन थे ?’

उनमें से एक ने मेरे बाबा की तरफ आश्चर्य से देखा, और जवाब दिया—‘तुम नहीं जानते ! यह हमारे महाराज थे ।’

बाबा चौंक पड़ा। उसकी आँखें खुली रह गईं। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

यह महाराज थे। वही महाराज जिनकी आँख के इशारे पर फौजो में हलचल मच जाती थी जो अपने युग के सबसे बड़े राजा थे। जिनके सामने अभ्युदय हाथ बाधता था।

आज ये पूरा घोड़ा के घर गेहू की गडरी छोड़ने आए हैं । यह सबे महाराज हैं । इनका राज्य दिलों पर है ।

उस रात हमें नद्वि न आर । सारा घर जागता, और महारान के लिए दुआ मागता था । हमारे दिन बड़े जोर की बपा हुए ।

यह कहानी सुनाकर घोड़ा चुप हो गया । मेरे रोए खड़े हो गए । आँखों में पानी भर आया । आज वह समय कदा चला गया ? आन पेन राजा लोग क्यों नहीं नजर आते । उनका अमल का शोर है बिषय वासना का धाव है, परन्तु अपनी प्रजा के हित अहित का ध्यान नहीं ।

मने धारी की तरफ देखा, उसकी भी आँखें सजल रहीं, - मैंने ठण्डी सास मरी ।

घोड़ा ने कपटे गिन कर कहा— बाबू साहब ! लिखिए चौदह पायजाम बीस कमीज़ें ।

मैंने काफी उठा ली और लिखने लगा ।

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा “कौशिक”

श्री विश्वम्भरनाथ जी का जन्म १८४८ वि० को अवाला छावनी में हुआ। पीछे आप कानपुर जा रहे, अथ यहीं के निवासी माने जाते



हैं। आप अच्छी धन सम्पत्ति के स्वामी हैं। अत आजीविका की चिन्ता आपकी साहित्य सेवा में बाधक नहीं रही।

आप प्रसिद्ध कहानी लेखक हैं। आपकी कहानिया हिन्दी के पत्र पत्रिकाओं में आदरणीय स्थान प्राप्त कर रही हैं। आपके ‘चित्रशाला’ और ‘मणिमाला’

दो गल्प-संग्रह और ‘मा’ तथा ‘भित्तारिणी’ दो उपन्यास अथ तक प्रकाशित हुए हैं। निम्न श्रेणियों के चरित्र चित्रण में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी कहानियों की विशेषता संभाषण है—वे संभाषण से आरम्भ होकर संभाषण से ही समाप्त होती हैं। भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण, मानसप्रवृत्तियों के विश्लेषण आदि की दृष्टि से आपकी कहानियों का स्थान साहित्य में बहुत उचा है।

राजपूत

शाम के पांच बज चुके थे । राजपूताने की भूमि दिनभर तपने के पश्चात् क्रमशः ठण्डी हो रही थी । इसी समय एक धूल धूसरित अम्बारोही एक गांव में प्रविष्ट हुआ । अम्बारोही अभी नवयुवक था । वयस लगभग २३-२४ वर्ष की होगी । गौरवर्ण नेत्र बड़े बड़े तथा रक्तवर्ण । मुख पर छोटी परतु घनी दाढ़ी, जो इस समय धूल भर जाने से कुछ भूरी दिखाई पड़ रही थी छोटी मूँछें, शरीर पुष्ट तथा बलवान्, सिर पर बहुरङ्ग चुस्त साफ़ा बंधा था । शरीर पर राजस्थानी ढंग का अगारसा और उसके नीचे पाजामा । पैरों में देसी जूता । पाई और तलवार लटक रही थी । सामने कमर में एक बटार लगी हुई थी और पीठ पर एक छोटा-सा भाला कसा हुआ था ।

अम्बारोही गांव की गलियों में से होता हुआ एक मकान के द्वार पर पहुँचा । इस मकान के द्वार पर चौपाल और एक चबूतरा था । चबूतरे पर दो चारपाइया पड़ी हुई थीं ।

और उन पर चार आदमी बैठे थे। सामने एक बड़ा हुक्का रक्खा हुआ था। अश्वारोही को देखते ही वे चारों इस प्रकार झड़े हो गए मानो उसके आने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। एक प्रौढ़ व्यक्ति ने मुस्करा कर अश्वारोही से कहा—
“आ गए ?”

अश्वारोही ने पहले उस व्यक्ति को प्रणाम किया, तत्पश्चात् घोड़े से उतरा। एक व्यक्ति ने लपक कर घोड़े की लगाम थाम ली। वह व्यक्ति ज्योंही घोड़े से उतरा, त्योंही उस व्यक्ति ने, जिसे अश्वारोही ने प्रणाम किया था, उसे छाती से लगाया और पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा—“रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ, बेटा ?”

नवयुवक ने शिष्टतापूर्वक उत्तर दिया—“जी नहीं, कष्ट काहे का !”

“अकेले ही चले आए, किसी को साथ न ले लिया !”

नवयुवक ने मुस्कराकर कहा—“साथ की क्या आवश्यकता थी !”

“रास्ते में कोई खटका-बटका हो, इसलिए किसी को साथ ले लेना चाहिए था !”

नवयुवक उसी प्रकार मुस्कराते हुए बोला—“खटका किस बात का ! और हो भी तो मैं क्या कुछ कमज़ोर हूँ ?”

प्रौढ़ वयस्क व्यक्ति ने स्नेह-भरी दृष्टि से नवयुवक को देखते हुए कहा—“तु तो ठीक है, परन्तु फिर भी एक से दो

अच्छे होते हैं। खैर, चलो, कपड़े उतारो, दिन भर के धके हों। घर में कब चले थे ?”

सबरे मुँह अधेरे चल दिया था !’

‘दोपहर को कहीं ठहरे होंगे !’

“हाँ, एक गाँव में ठहर कर पानी चानी पिया था।”

चारपाई के पास पहुँच कर नययुवक ने पीठ पर का माला खाल कर एक किनारे रख दिया, तत्पश्चात् तलवार खोल कर चौपाल की खूटी पर टांग दी, और साफा उतार कर चारपाई पर रख दिया। इसके पश्चात् अगरस्ता भी उतार दिया और चारपाई पर बैठ गया। प्रौढ़ वयस्क पढ़ा झलने लगा। नययुवक बोला—“आप रहने दीजिए, मुझे दीजिए !

प्रौढ़ वयस्क न कहा—‘तो क्या हज है !’

नययुवक ने उसके हाथ से पढ़ा छीन लिया और स्वयं अपने हाथ से झलने लगा।

प्रौढ़ वयस्क ने पुकारा—‘अचल ! ओ अचल !’ घर के भीतर से एक सप्रह-अठारह चप का लट्ठका निकल कर बोला—‘क्या है काका जी ?’

प्रौढ़ वयस्क बोला—‘देख तेरे जीजाजी आए हैं। इनके लिए हाथ मुँह धोने के पानी-चानी तो ला ।’

लट्ठे ने युवक को प्रणाम किया और मुस्करा कर बोला—

‘जी !’

युवक बोला—“अभी चला आ रहा हूँ।”

“हमने तो कल बड़ी बाट देखी।”—लड़के ने कहा।

“हां, कल नहीं आ सका।”

“कुछ काम लग गया था?”

“हां काम ही लग गया था।”

लड़के का काका बोला—“अरे इन व्यर्थ की बातों में क्या धरा है। जा, पानी ला जाकर।”

“अभी लाया।” कह कर लड़का मकान के भीतर चला गया।

*

*

*

+

उपरोक्त घटना के तीसरे दिन प्रातःकाल उसी मकान के द्वार पर कुछ आदमी तथा दो घोड़े खड़े हुए थे। घोड़े सफ़र के लिए तैयार थे। हमारा परिचित युवक भी यात्रा के लिए तैयार खड़ा था। इसी समय घर के भीतर से एक नवयुवती, जो धूँधट निकाले हुए थी, सिसकती हुई निकली। उनके पीछे तीन-चार स्त्रियां युवक के घोड़े के समीप पहुंची। एक व्यक्ति ने घोड़े की लगाम पकड़ ली। स्त्रियों ने सहारा देकर नवयुवती को घोड़े पर बिठा दिया। युवक ने काका जी को प्रणाम किया और तत्पश्चात् स्त्रियों को प्रणाम किया। एक स्त्री बोली—“देखो बेटा, खबरदारी से जाना।”

युवक हंस पड़ा और बोला—“आप बेफिक्र रहिए।”

काका जी ने भी सावधान रहने के लिए कहा। युवक

उछल कर उसी घोड़े पर नवयुवती के आगे बैठ गया। दूसरे घोड़े पर एक अन्य व्यक्ति बैठा। इस व्यक्ति से काका जी बोले—“इन्हें घर पहुँचा के तू कल लौट आना।”

वह व्यक्ति बोला—“हाँ, कल आ जाऊंगा, क्यादा ठहरने का काम फया है।”

इधर स्त्रियों ने महल मान गाना आरम्भ किया। काका जी ने आशीर्वाद दिया। युवक ने घोड़े को एड लगाई। घोड़ा तेज़ी के साथ चल दिया, पीछे पीछे दूसरा घोड़ा भी चला।

(२)

दोपहर तक ये दोनों बराबर चलते ही रहे। दोपहर होने के पश्चात् साथ का आदमी बोला—“भाई चन्द्रमानसिंह! मेरी समझ में तो अब कहीं ठहर कर कुछ खाने-पीने का डील होना चाहिए। मूँच बड़े जोर से लगती है।

चन्द्रमानसिंह ने कहा— यह सामने गाय है। इसी में ठहरेंगे।

‘गाय के बाहर फौरन कुआ उधा तो हो हीगा।’

“हाँ है कुआ है छाया है। घण्टे आध घण्टे आराम भी कर सकते हो।

इसी प्रकार की बातें करते हुए दोनों व्यक्ति उक्त स्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर दोनों व्यक्ति घोड़ों से उतरे—युवती को भी उतार कर एक ओर बिठाया। इसके पश्चात्,

हाथ मुँह धोकर तीनों व्यक्तियों ने साथ में जो भोजन-सामग्री थी, उसका भोग लगाया। भोजन करने के पश्चात् चन्द्रभानसिंह ने साथी से पूछा—‘क्यों भाई क्या इरादे हैं, चलोगे या थोड़ी देर आराम करोगे?’

‘जैसी तुम्हारी इच्छा हो!’

‘जैसा कहो!’

‘थोड़ी देर आराम कर लो। घोड़े पर बैठे-बैठे कमर रह गई। खैर, हमारा तो कुछ नहीं, लड़की को कष्ट हुआ होगा।’ इसीलिए तो कहता हूँ, थोड़ी देर यही विश्राम कर लें, फिर चलें।’

‘बहुत ठीक।’

वही पर एक दूरी बिछा दी गई और युवती को लिटा दिया गया। चन्द्रभानसिंह और उसका साथी बैठकर बातें करने लगे।

इसी समय कुएं पर एक व्यक्ति पानी भरने आया। उसने लोगों को देखकर पूछा—‘कहा के रहने वाले हो?’

चन्द्रभानसिंह ने एक गांव का नाम बताया। वह व्यक्ति बोला—‘आज ठिकाने के सरदार शिकार खेलने आए हुए हैं, अभी अभी यहां से गए हैं।’

चन्द्रभानसिंह लापरवाही से बोला—‘आए होंगे।’

वह व्यक्ति कहने लगा—‘जिस दिन आ जाते हैं हम लोगों को तो त्रास हो जाता है।’

‘क्यों ? क्या अच्छे आदमी नहीं हैं ?’

‘कौन सा सरदार अच्छा है ? जब तक राजा अच्छे नहीं हैं, तब सरदार कदा से अच्छे होंगे । जिस गांव में जायगे, नजर-बेगार लेंगे यह बेटियों को साकेंगे, नुकसान कर जायगे । बस यही इन लोगों के काम है । भगवान् बचावे इनसे ।’

‘तुम लोग कुछ नहीं बोलते ?’

‘घोलें तो मोरे पीटे जाय । राजा के पास क्रियाद ले जाय तो बह भी नहीं सुनते । क्या करें सब सहना पड़ता है ।’

इस गांव में राजपूत रहते हैं ?—चन्द्रमानसिंह ने पूछा ।

‘सभी रहते हैं, राजपूत भी रहते हैं और लोग भी रहते हैं पर करें क्या ?’

‘राजपूत के रून में अब गर्मी नहीं रही ।—चन्द्रमानसिंह बोला ।

गर्मी भी हो तो कर क्या सकते हैं, अपने प्राण भले गया दें ।’

अपने प्राण गवाने पर जो कमर बांध सकता है वह दूसरों के प्राण भी ले सकता है । सारी बात तो यही है कि अब राजपूत मौत से डरने लगे । इसी से यह सब देखना पड़ता है ।’

अन्तिम वाक्य कहते हुए चन्द्रमान ने अपने साथी की ओर देखा । साथी सिर दिखाते हुए बोला—‘ठीक बात है ।’

‘उस व्यक्ति ने कुएं में चूर्तन डालते हुए कहा—“ऐसा कौन है, जो मरने से नहीं डरता ?”

‘मरने से वैसे तो सभी डरते हैं, परन्तु असली बात यह है कि जब मौके पर न डरे, जब जान माल या आचरु पर आ बने तब मरने से न डरे—यही सारी बात है, क्यों भाई उजागरसिंह !

चन्द्रभान का साथी उजागरसिंह बोला—‘यही बात है, भैया ! मौके पर आदमी को जान का मोह नहीं करना चाहिए।

वह व्यक्ति रस्सी खींचता हुआ बोला—‘हमने तो कोई ऐसा देखा नहीं।’

‘देखो कहा से, मैं तो पहले ही कह चुका कि राजपूतों का खून ठण्डा हो चुका है। यही कारण है कि सड़े से सड़े सरदार आकर सब कार्य कर जाते हैं। पहले किसी राजा महाराजा की हिम्मत तो पड़ती ही न थी, सरदार बेचारे तो किसी गिनती में थे ही नहीं।’

वह व्यक्ति जल का पात्र कुएं से निकालते हुए बोला—‘पहले की बातें जाने दो, पहले सरदार भी इतने अन्यायी नहीं होते थे !’

‘इसीलिए नहीं होते थे कि उन्हें भय रहता था कि अत्याचार करेंगे तो खतम कर दिए जाएंगे। ‘बिन भय होत न प्रीति !’

यह कहकर चन्द्रमानसिंह इस पड़ा। उपागिरसिंह भी हसते हुए बोला— यही बात है !

यह व्यक्ति जल का पात्र लेकर चलते हुए बोला—‘ज़रा होशियारी से जाना, ये लोग इधर ही कहीं होंगे !

होंगे तो हुआ करें, हमारा क्या बना लेंगे !’

इस बात का उत्तर उस व्यक्ति ने कुछ नहीं दिया और जल लेकर चला गया !

इधर ये लोग थोड़ी देर तक इसी सम्बन्ध की बातचीत करते रहे तत्पश्चात् पूवधत् घोड़ों पर सवार होकर चले।

(१)

तीन घंटे तक ये लोग बराबर चलते रहे। तीन घंटे के पश्चात् युवती ने लघुशङ्ख से निवृत्त होने की इच्छा प्रकट की। अतएव एक घृष्ट के नीचे घोड़े रोके गए। चन्द्रमानसिंह ने युवती को घोड़े से उतारा और एक तरफ पतला कर कहा—‘इधर झाड़ियों की आड़ में चली जाओ।’

युवती उधर चली गई। ये दोनों उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

युवती लौट ही रही थी कि सड़क की दक्षिण दिशा से दस बारह अश्वारोही आते हुए दिखाई पड़े। उपागिरसिंह ने चन्द्रमानसिंह से कहा—‘यह देखो कौन आ रहे हैं। जान पड़ता है यही सरदार है।’

चन्द्रभानसिंह—ने उस ओर देख कर कहा—“हां, मालूम तो वही होते हैं।” यह कह कर वह युवती से बोला—“आओ जल्दी, देर होती है।”

युवती लपक कर चली। उसी समय उसके घाघरे में कांटे उलझ गए। वह खड़ी होकर कांटे छुड़ाने लगी। कांटे छुड़ा कर घोड़े के समीप आई। चन्द्रभान ने उसे घोड़े पर सवार कराया और स्वयं भी उछल कर बैठ गया। इसके पश्चात् वह दो कदम चला ही था कि अश्वारोहियों ने आकर घेर लिया। दोनों घोड़े रुक गए। एक व्यक्ति ने, जो अङ्गरेजी ढङ्ग के शिकारी पोशाक पहने था, चन्द्रभान से पूछा—“तुम लोग कौन हो?”

चन्द्रभानसिंह ने अपना और अपने साथी का परिचय दिया। उसने पुनः प्रश्न किया—“कहां से आते हो?”

चन्द्रभानसिंह ने बताया।

“यह औरत कौन है?”

‘यह मेरी जोरू है, ससुराल से विदा कराए ला रहा हूँ।’

“हमें कैसे विश्वास हो?”

चन्द्रभानसिंह का मुख तमतमा गया। उसने कहा—
विश्वास हो या न हो, इससे हमें क्या मतलब?”

वह व्यक्ति बोला—

“अच्छा! यह बात है?”

यह कह कर उसने अपना घोड़ा चन्द्रभान के घोड़े से

मिला कर युवती से पूछा—“क्या यह तेरा पति है ?”

युवती ने कोई उत्तर न दिया । उस व्यक्ति ने पुन प्रश्न किया । युवती पुन मौन रही । इस बार उस व्यक्ति ने हाथ बढ़ा कर युवती का घूँघट उलट दिया । घूँघट का उलटना था कि ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेघ में से चन्द्रमा निकल आया । वह व्यक्ति अवाक् होकर रह गया । युवती ने झटपट घूँघट सुधार कर कहा—“हा मेरे पति हैं ।”

इधर उस व्यक्ति की यह बेहूदा हरकत देख कर चन्द्रमानसिंह ने तुरन्त तलवार पर हाथ डाला । परन्तु उसी समय एक दूसरे व्यक्ति ने भाले की नोक चन्द्रमानसिंह के साने पर रख दी और फटक कर कहा—“यस ! खरदार !”

चन्द्रमानसिंह ने तलवार हाथ से छोड़ कर कहा—“आधिर आप लोग हैं कौन जो मुसाफिरों को इस प्रकार तह्न करते हैं ?”

एक व्यक्ति बोला—“यह ठिकाने के सर्दार भीमान् त्रिभुवनसिंह हैं ।”

चन्द्रमानसिंह बोला—“सर्दारों को अपनी प्रजा पर ऐसा अत्याचार नहीं करना चाहिये ।”

त्रिभुवनसिंह ने कहा—“अच्छा ! पूछ ताछ करना भी अत्याचार हो गया !”

चन्द्रमानसिंह बोला—“आपने एक भले घर की स्त्री का घूँघट इस प्रकार उलट दिया यह अत्याचार नहीं तो

क्या है ? यह काम सर्दारों का नहीं, बटमारों का है ।”

सर्दारों ने कहा—“अपनी प्रजा की बटमारों से रक्षा कराने के लिए ही हम इतनी जांच करते हैं ।”

“परन्तु जांच करने के पहले आपको भले आदमियों और बटमारों की पहचान कर लेना चाहिए ।”

एक दूसरा व्यक्ति बोला—“क्या किसी के माथे पर लिखा रहता है ? चला वहां से बड़ा भला आदमी बन कर तुम्हारे जैसे आदमी ही बटमारी करते हैं ।”

चन्द्रभानसिंह ने निर्भीकता से उत्तर दिया—“परन्तु इस समय तो मैं नहीं, आप बटमारी कर रहे हैं ।”

“अच्छा, बस चुप रहो, नहीं तो ठीक कर दिए जाओगे ।”

“बड़े वीर हो, क्या कहना है । अकेले होकर ऐसी बातें करते तो वीरता समझी जाती । फौज फाटे साथ तो सभी वीर हो जाते हैं ।”

सर्दार, जो बारम्बार युवती की ओर देख कर कुछ सोच रहा था, यह कथोपकथन सुन कर बोला—“खैर, इस तू मैं से कोई फायदा नहीं । इन दोनों आदमियों को हिरासत में ले चलो । वहां पहुंच कर इनकी जांच की जायगी । यदि यह भले आदमी प्रमाणित हुए तो छोड़ दिए जायेंगे—अन्यथा सज़ा दी जायगी ।”

चन्द्रभानसिंह बोला—“परन्तु हिरासत में लेने का कारण क्या है, अन्नदाता ? मैंने कौन सा अपराध किया है ?”

“कारण यही कि हमें तुम पर सन्देह होता है। —
सदार ने कहा।

‘किस बात का सन्देह होता है ?’

‘इस बात का सन्देह होता है कि तुम कोर डाकू या
छुटेरे हो।’

“तो यह सन्देह बहुत सरलता से दूर हो सकता है।
मेरा गांव यहाँ से सात आठ कोस की दूरी पर है। यहाँ
चल कर जाच कर सीजिए।”

‘हमें इतनी फुर्सत नहीं। अपनी गद्दी में पहुँच कर
जाच करेंगे। इन्हें दिरासत में लो—जल्दी करो !’

सदार का यह वाक्य सुनने ही दो आदमियों ने चन्द्रमान
सिंह तथा उजागर के हथियार छुसवा कर अपने अधिकार
में किए। तत्पश्चात् एक ने चन्द्रमानसिंह के घोड़े की लगाम
ग्रामी तथा दूसरे ने उजागरसिंह के घोड़े की, तत्पश्चात्
दोनों को बीच में लेकर सब लोग एक ओर चल दिए।

(४)

चन्द्रमानसिंह तथा उजागरसिंह को गद्दी के कारागार में
पड़े हुए एक सप्ताह बीत गया। चन्द्रमान तथा उजागरसिंह
एक ही कोठरी में बन्द थे। प्रातःकाल का समय था।
चन्द्रमानसिंह रात भर जागने के पश्चात् तीन यज्ञ के लगभग
एक घण्टे भर को सोया था और पुनः चार यज्ञ के पश्चात्

जाग पड़ा। उसकी दशा एक पागल के समान हो रही थी। सिर के बाल बिखरे हुए—आंखें उबली हुई तथा रक्त के समान लाल हो रही थीं। उसने उजागरसिंह से कहा—‘आज सात दिन होने आए, अभी तक हम लोगों की पेशी नहीं हुई।’

उजागरसिंह दुःखपूर्ण स्वर में बोला—‘भइया, भगवान् ही इस मुसीबत से छुड़ावें तो छुड़ावें, अन्यथा और कोई उपाय नहीं। यह अङ्गरेजी इलाक़ा नहीं है, जो जल्दी सुनवाई हो—यहां तो लोग बरसों जेल में पड़े सड़ा करते हैं।’

‘पता नहीं, हमारे घर वालों की क्या दशा होगी?’

‘और तुम्हारी ससुराल में भी दहाका मचा होगा। दूसरे दिन लौट जाने की बात थी, आज सात दिन हो गए।’

‘वे लोग तो कुछ न कुछ जतन कर ही रहे होंगे।’

‘पता लगेगा तब तो करेंगे। जब पता ही न चलेगा कि कहां गए, कौन ले गया, तो जतन क्या करेंगे? और पता भी लग जाय तब भी बड़ा कठिन है। बड़ा अन्धेर है, भाई! भगवान् ही मालिक हैं। उन्हीं का ध्यान करो। लड़की का कुछ भी पता नहीं, कहां रक्खा, क्या किया। भगवान् उस की आवरू बचावे।’

चन्द्रभानसिंह उत्तेजित होकर बोला—‘यदि उसकी जान या आवरू पर सर्दार ने हाथ डाला तब तो मैं उसे क्षमा नहीं करूंगा। यदि मैं जीवित रहा तो एक न एक दिन इसका

बदला उसे अवश्य चसाऊंगा । यदि ऐसा न करू तो राजपूत का पुत्र नहीं ।'

'पहले यहा से तो छुटकारा मिले । बिना यहा से हूरे क्या कर सकोगे !'

कभी न कभी मिलेगा ही ।'

इसी समय कोठरी का द्वार खुलने का शब्द सुनाई पड़ा । चन्द्रमानसिंह धीरे से उजागर से बोला—'आज इस पदरे दार से कुछ पूछना चाहिये ।'

इसी समय द्वार खुला और पदरेदार भीतर आया । उसके कुछ बोलने के पदले ही चन्द्रमान ने उससे पूछा—
क्यों भइया, हमारा कुछ न्याय वाय भी होगा या योंही पड़े सदा करेंगे ?

'अब यह हम क्या जानें । यह तो राजदरबार के आदमी बता सकते हैं, हम तो पदरेदार हैं ।

'बड़ा अच्छे है ! मले आदमियों को यह कर रक्खा है । कोई झसूर नहीं—कोई अपराध नहीं । हमारी औरत का भी पता नहीं ।

'क्या तुम्हारे साथ कोई औरत भी थी ?'—पदरेदार ने पूछा ।

हां, मेरी औरत थी ।

उमर क्या है ?

'यही कोई सत्रह अठारह परस की ।'

पहरेदार ने मुस्करा कर कहा—“तब ठीक है”

‘क्या ठीक है?’—चन्द्रभानसिंह ने पूछा।

“ठीक यही है कि, तुम्हारा कसूर-वसूर कुछ नहीं।
सर्दार ने इस वहाने से तुम्हारी औरत हथियाली। अब
उसके मिलने की आशा छोड़ दो—अपनी जान की खैर
मनाओ। वह तो इस समय महलों का सुख भोग रही होगी।
तुम्हारी तो उसे याद भी न आती होगी।”

चन्द्रभानसिंह एकदम उठकर खड़ा हो गया और दांत
पीस कर बोला—“नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। वह
राजपूत की लड़की है, ऐसा कभी न करेगी।”

पहरेदार अट्टहास करके बोला—“अरे भाई, बस रहने दो।
हमारी यही देखते-देखते उमर बीत गई। बड़े-बड़े राजपूतों
और क्षत्रियों की लड़कियां हज़म हो गईं। इन बातों में क्या
धरा है? जो औरत महल के अन्दर पहुँच गई, वह फिर
बाहर नहीं आई।”

“परन्तु इस बार..”—इतना कर चन्द्रभानसिंह
रुक गया। जो बात वह कहना चाहता था, उसे कहना उचित
न समझा।

पहरेदार बोला—“अच्छा, तो चलो पाखाना पेशाब
कर लो।”

दोनों अपने पैरों की बेड़ियां संभाल कर उठे और पहरे-
दार के साथ शौचादि के लिये चले गए।

शौचादि से निवृत्त होने के पश्चात् जब पदरेदार उन्हें पुन कोठरी में बन्द करने आया तो चन्द्रमानसिंह उससे बोला—“तुम्हारी बात हमें ठीक मालूम होती है। अब हमारा औरत मिलना बड़ा कठिन है। यह स्वयं ही हमारे पास आना पसन्द नहीं करेगी। महलों का सुख छोड़ कर मोपरे में जाना कौन पसन्द करेगा ? परन्तु हमें व्यर्थ में बन्द कर रक्खा है। यदि सर्दार साहब चाहें तो हमें फारसखती (फारगिखती) लिख दें। यह भी बेसठके हो जावे, हमारे प्राण भी बचें।”

पदरेदार बोला—‘हा इस तरह तो तुम छूट सकते हो। इस प्रकार तो कई आदमी मेरे सामने छोड़ दिए गए हैं।’

“तो भैया, इतनी दया करो कि हमारा यह सदेखा सदार तक पहुंचा दो।”

“अच्छी बात है। हम कोशिश करेंगे।

‘अगर इतना कर दो तो ज़ममर पदसान मानेंगे।’

“नहीं, पदसान की कोर बात नहीं। ऐसी बातों की इत्तहा पहुंचाने का तो हमें सरदार की ओर से हुक्म भी है।’

तो बस ठीक है। अरे और क्या छूटकर घर जाय। औरत सुसरी एक नहीं पगस मिल जायगी। जान है तो जदान है।’

ठीक कहते हो—समझदारी की यही बात है।—इतना कह कर पदरेदार कोठरी बन्द करके चला गया।

(५)

उपरोक्त घटना के चौथे दिन एक कर्मचारी एक कागज़ और कलम-दावात लेकर कोठरी में प्रविष्ट हुआ। चन्द्रभानसिंह उसे देखते ही उठ खड़ा हुआ और उसने बड़ी शिष्टतापूर्वक उन्हें सलाम किया। कर्मचारी कागज़ सामने करके बोला—‘इस पर दस्तखत कर दो।’

चन्द्रभानसिंह ने पूछा—‘यह क्या है?’

‘वही फ़ारखती है। तुमने कहलाया था कि तुम फ़ारखती लिखने को तैयार हो?’

‘हां, बतलाया तो था।’—चन्द्रभानसिंह ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया।

‘तो बस वही है।’

‘फ़ारखती तो मैं लिखने को तैयार हूं। परन्तु सरदार साहब के सामने लिखूंगा। मुझे क्या पता कि सरदार साहब लिखवा रहे हैं या कौन लिखवा रहा है। उनके बहाने से कोई दूसरा लिखवा ले तब?’

‘ऐसा साहब कौन कर सकता है।’—कर्मचारी ने दातों तले जीभ दाब कर कहा।

‘परन्तु मुझे कैसे सन्तोष हो?’

‘मैं जो कह रहा हूं।’

‘मैं क्या जानूं आप कौन हैं।’

‘छैर, जैसी तुम्हारी इच्छा । मैं यह बात कह दूंगा आगे सरकार की मर्जी ।’

‘हां, आप कह दीजिएगा । उसके सामने मैं तुरन्त दस्तखत कर दूंगा ।’

‘अच्छी बात है—कहकर कर्मचारी चला गया । दो घण्टे पश्चात् यह पुन लौटा और बोला—चलो, सरकार ने बुलाया है ।’

ये बेढिया तो कटवाइए ।

बेढिया तो दस्तखत हो जाने के बाद कटेंगी ।’

‘चलने में कष्ट होता है, और कुछ नहीं—अच्छा चलिए ।’

दोनों व्यक्ति कर्मचारी सहित चार पहरेदारों के बीच में चले ।

एक सजे हुए कमरे में सरदार साहब विराजमान थे । दोनों व्यक्ति उनके सामने पेश किए गए ।

सरदार साहब मुस्करा कर बोले—‘अरे मई, दस्तखत मैं हा करवा रहा हूँ—तुम्हें न देह क्यों हुआ । बिना मेरी आज्ञा के किसी मजाल है जो ऐसा कर सके ।’

यह तो ठीक है अगदाता, परन्तु मुझ सन्तोष न होता ।’ चन्द्रमान ने यही दानतापूजक कहा ।

छैर, अब तो सन्तोष है ।’

‘हां, अब क्यों न होगा । लाइए मैं दस्तखत कर दूँ ।’

मैचारी ने कागज़ और कलम चन्द्रभान की ओर
 ढ़ाया ।

चन्द्रभान हाथ में कलम लेकर बोला—‘परन्तु दस्तखत
 करने के पहले एक बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ ।’

‘वह क्या ?’—सरदार ने पूछा ।

‘वह मेरी स्त्री के सम्बन्ध में है । जब मैं उसे आपको
 सौंप रहा हूँ तो यह मेरा धर्म है कि उसके गुण अवगुण भी
 आपको बता दूँ ।’

सरदार साहब घबड़ा कर बोले—‘हा-हां, यह तो अवश्य
 होना चाहिए, बोलो !’

‘तो कृपा करके एकान्त करा दीजिए, सबके सामने
 कहना ठीक नहीं ।’

सरदार साहब ने इशारा किया । सब लोग वहां से हट
 गए । उजागरसिंह भी बाहर कर दिया गया । चलते समय
 चन्द्रभानसिंह ने उजागर को और उजागर ने चन्द्रभान को
 विषादपूर्ण दृष्टि से देखा । नेत्रों से ही दोनों ने परस्पर अपने
 मन के भाव प्रकट कर दिए । सबके बाहर चले जाने पर
 सरदार ने कहा—‘अब बताओ !’

चन्द्रभान बोला—‘आपने जिस मतलब के लिए मुझ
 निरपराध को बन्दी बनाया, वह मतलब तो आपका पूरा
 हो गया होगा ।’

सरदार साहब सिर झुकाकर बोले—‘नहीं, तुम्हारी

औरत यही जिद्दी निकली । उसने अब तक मेरी बात नहीं मानी । हा, अगर जो उसे यह पता लगेगा कि तुमने उसे मुझे सोंप दिया तब उसे मेरी बात माननी ही पड़ेगी ।

चंद्रमानसिंह के मुख पर एक क्षण के लिए प्रसन्नता दौड़ गई, परन्तु वह गम्भीर होकर बोला—‘यदि आपको यह सन्देश हो कि वह आपकी बात नहीं मानेगी तो मैं उसे समझा दूँ ।’

‘आशा तो है कि मान लेगी परन्तु यदि समझा भी दो तो अच्छा है ।’

तो उसे बुलाइए ।’

सर्दार साहब ने दीवार में लगा हुआ एक बटन दबाया । थोड़ी देर में एक और का द्वार खुला और एक बादी आकर बोली—‘क्या आशा है ?’

देखो वह औरत जो आइ है उसे यहाँ ले आओ । कहना कि तुम्हारा पति तुमसे मिलना चाहता है ।’

बादी के चले जाने के पश्चात् सर्दार साहब बोले—‘तब तक दस्तखत तो कर दो ।’

उसी के सामने दस्तखत करूँगा, जिसमें उसे विश्वास हो जाय ।

‘अच्छी बात है’—कहकर सर्दार साहब चुप हो गए । कुछ ही क्षण में चंद्रमान की पत्नी आ पहुची । उसके साथ की बादी को सर्दार साहब ने हटा दिया । चंद्रमान की पत्नी

वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थी, परन्तु उसका चेहरा उदास तथा पीतवर्ण हो रहा था। चन्द्रभानसिंह उसे कुछ क्षणों तक सवृष्ण नेत्रों से देखता रहा। तत्पश्चात् संभल कर बोला—
“देखो आज से तुम मेरी पत्नी नहीं, सर्दार साहब की पत्नी हो। मैंने तुम्हें त्याग दिया।”

पत्नी के मुख पर मुर्दनी छा गई। वह लड़खड़ाती हुई जिह्वा से बोली—“नहीं नहीं, ऐसा न कहो।”

“अवश्य कहूंगा। तुम अब मेरे काम की नहीं रही।”

“आह, आज मेरी सारी आशाएं टूट गईं।”—यह कह कर उसने उंगली से अंगूठी उतार कर शीघ्रतापूर्वक मुंह में रख ली। सर्दार साहब यह देख कर—“है! यह क्या किया?” कहते हुए उसकी ओर लपके। इसी समय चन्द्रभानसिंह, सिंह के समान उन पर टूटा। उसके पैरों में बेड़िया थीं, परन्तु हाथ खुले हुए थे। उसने लपक कर सर्दार साहब का गला दोनों हाथों से दाब लिया और बोला—“नरक के कीड़े, तूने मेरे साथ जैसी दगा की, वैसा ही फल तुझको देता हूँ। मैंने इस बहाने से तुझ तक पहुंचने की राह निकाली।”—यह कहते हुए चन्द्रभान ने जोर से सर्दार साहब का गला दबाया। सर्दार साहब ने गला छुड़ाने का बड़ा प्रयत्न किया, बहुत कुछ हाथ-पैर मारे, परन्तु चन्द्रभान का पक्षा मौत का पक्षा था। अन्त में सर्दार साहब की आँखें

निकल आई और यह निजीव हो गए । चन्द्रमानसिंह ने डाका गला छोड़ा । गला छोटते ही लाश धूम से मृगि पर गिरी ।

इसके उपरान्त चन्द्रमान ने अपनी पत्नी पर दृष्टि डाला । यह भयभीत हाकर विस्फोरित नेत्रों से यह काण्ड देख रही थी । चन्द्रमान ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और पीठ पर हाथ फेर कर कहा—‘शाश्वत राजपूतनी ! तूने अपनी और मरी राज रख ली ।’ उसकी पत्नी कुछ कहना ही चाहती था कि उसे एक जोर का घमन हुआ । घमन में रक्त हो रक्त था ।

इसा समय एक ओर से चीख सुनाई दी और किता खा के कण्ठ ने चिल्ला कर कहा—‘अरे दौड़ो, सरकार को मार डाला ।’ इसके उपरान्त तुरन्त ही आठ दस आदमी भीतर घुस आए । उन्होंने पड़ले सदार साहब की जाच की, चन्द्रमान हस कर बोला—‘देखते क्या हो—सरकार साहब तो यमराज के घर पहुँच गए ।’

उसके मुख से यह शब्द निकले ही थे कि उस पर चारों ओर से तलवारें पड़ने लगीं और एक क्षण में वीर चन्द्रमान टुकड़-टुकड़े होकर सदार की लाश पर गिर पड़ा ।



मोह

“अरे कोई मज़दूर है?”

इतना सुनते ही चार-पांच मज़दूर एकदम दौड़ पड़े। एक मज़दूर जो यद्यपि शरीर से हट्टा-कट्टा थी, परन्तु प्रौढ़ा वस्था पार करके बुढ़ापे की राज्य-सीमा में पहुँच चुका था और अन्य युवा तथा प्रौढ़ मज़दूरों की भांति उसके शरीर में कुर्ती तथा तेज़ी नहीं थी, आगे बढ़ा, परन्तु अन्य मज़दूरों को पुकारनेवाले के पास पहले पहुँच जाते देखकर ठिठक गया और म्लानमुख होकर पुनः अपने स्थान पर जा बैठा और बड़बड़ाने लगा—इन लोगों के मारे अब मजूरी लगना कठिन है। इसी समय अन्य मज़दूर भी लौट आये और अपनी-अपनी झल्लि आधी रखकर उन्हीं पर बैठ गये। वृद्ध मज़दूर बोला—“भैया ! अब यहां गुज़र होना कठिन है।”

“क्यों ? गुज़र होनी कठिन क्यों है ?” एक दूसरे मज़दूर ने पूछा।

“दस वरस हुए होंगे । इससे अधिक नहीं हुए । तब इतना अन्धेर था ।” अंगनू काका ने कहा ।

“पर कोई कायदा कानून तो तब नहीं था ।”

“कायदा कानून नहीं था, पर इतना अन्धेर भी नहीं था कि एक को बुलाओ और दस दौड़ जायें ।”

“तुम तो कभी दौड़ते न होगे । अभी साल भर पहले तक की तो मुझे याद है—सबसे पहले पहुंच जाते थे । अब आज पौरुष घट गया तब कायदा-कानून सूझा ।”

अंगनू काका झल्ला कर बोले—अच्छा भैया खूब दौड़ो । कौन मना करता है ? हमारा भी राम मालिक है ।”

“यही ठीक है राम पर ही भरोसा रखे वेड़ा पार होगा—“कायदा-कानून तो यहां न कभी रहा है और न रहेगा ।”

एक अन्य मज़दूर बोला—“अच्छा भैया, अब की अंगनू काका की पारी है । यह बुद्धि आदमी है । इनका खयाल रखना चाहिये ।”

इसी समय फिर ‘मज़दूर’ ‘मज़दूर’ की आवाज़ आई । सबने कहा—“जाओ अंगनू काका ।”

अंगनू काका बोले—“अरे अब तुम्हीं लोग जाओ ।”

एक ने अंगनू काका का हाथ पकड़कर उठा दिया और कहा—“अब जाते हो या नखरे बघारते हो ।”

“अभी तो ज्ञापदा कानून बना रहे थे और अब उठते नहीं।”

अगनू काका के स्वाभिमान को कुछ ठेस लगी। इस प्रकार दया की भीख लेना उर्द्वे अचड़ा न लगा। व कुर्ब भेषकर यह कहते हुए चले—‘ऐसे तुम लोग कहा तक करोगे। एक दिन का काम थोड़े ही है।’

पुकारने वाले के पास पहुँचे तब यह उनका परिचित निकला। उसने अगनू को देखते ही कहा—“ओहो! तुम कहा थे! मैं तो तुम्हारी तलाश में था—जब तुम दिखार न पड़े तब मैंने आवाज लगाई।”

अगनू काका ने सतोष की निश्वास छोड़ी सोचा ये तो हमारे पुराने गाइक हैं। उन लोगों का (मजदूरों का) कोई पहचान नहीं हुआ। यह सोचने के पश्चात् गाइक से बोले— यहाँ ता बड़ा था। आप ता हमारे पुराने मालिक हैं। आप हमें भूल जाय ता यह गजब की बात हो।

अचड़ा यह समान रफता।

अगनू ने कुछ फल आर शाकमाजी अपनी झटकी में रफधी और झटकी सिर पर उठाकर उस व्यक्ति के साथ चला। कुछ देर तक मौन चलते रह।

अकस्मात् अगनू बोला— अब पीछे नहीं चलता यावूँ
 दा मुहदे भी तो हो आय।’ उस व्यक्ति ने कहा।
 ‘यह तो कहो आप जैसे दो चार हमारे पुराने मालिक

है, इससे खाने भर को मिल जाता है । नहीं तो बड़ी मुश्किल पड़ जाय ।”

“भगवान् सबका मालिक है ।”

“अब मजूर भी बहुत बढ़ गए हैं, बाबू । पहले इतने नहीं । अब जिसे देखो वही झल्ला लिए फिरता है । पर यदि बीस सेर बोझा लाद दो तो कांख मारें । हमने डेढ़ डेढ़ उन बोझा इसी सिर पर उठाया । एक दफ़ा एक बाबू गये । उन्होंने सूरन (ज़मीनन्द) लिया । कुल ६ गांठें थीं, बाबू तुमसे क्या कहें, एक-एक गांठ दस-दस आठ आठ तक की थी । जितने मजूर थे, सब हारी चोल गये कि हमसे अकेले नहीं जायगा । तब हमने हिम्मत बांधी । अकेले ले गए । उनके घर पर जब पहुँचा तब बोले—ऊपर जीना चढ़ जाना होगा । यह सुनकर पहले तो हमारा जी कचुवाया, किन्तु फिर हिम्मत बांधी और बजरङ्गवली का नाम लेकर षट्छट जीना चढ़ गए । बाबू की तबियत खुश हो गई—बार पैसे इनाम दिए । हमारी जवानी देहात में कटी है । जो दूध खाते पीते थे, कसरत करते थे और खूब डटकर गरीब किसानों का काम करते थे, जब घर वाली मर गई बड़े का पीछा हो गया, उधर जमींदार ने वेदखल कर देया, तब देहात से जी उचट गया, यहां चले आये और जूरी करने लगे । मजूरी सहल काम नहीं है बाबू ! गहरवाले मजूरी करना क्या जाने ? झल्ला ले ली और

मजूर बन गये । मजूरी करना दिलगी नहीं है । इसी प्रकार अगन् काका बहबहाते हुए चले जा रहे थे । वह व्यक्ति भी हूँ हूँ करता जाता था । घर पहुँचकर उस व्यक्ति ने अगन् को चार पैसे दिये । अगन् काका दात निकाल कर बोले— एक पैसा और दे देते बाबू ।’

‘भाई तीन पैसे की जगह तुम्हें चार दे दिये ।’

“बाबू, आप हमारे पुराने मालिक हैं, इससे कहते हैं । आप लोगों की बंदोस्त युद्धाण बट जायगा—नहीं तो आजकल यही मुश्किल पड़ती है ।”

बाबू ने एक पैसा और दे दिया । अगन् काका प्रसन्न हो गये और आशीर्वाद देते हुए चल दिए ।

(२)

अद्वे पर लौट कर आये तब मजदूरों ने पूछा—“क्या मिला अगन् काका ?

‘अगन् काका बोले— वे हमारे पुराने ग्राहक थे । तुम लोगों का कुछ पदसान नहीं रहा ।

इस पर एक हसकर याता—सुना भैया मजूरी दिलवाइ तब ये बातें होने लगीं ।

‘दिलवाइ ! इन्होंने दिलवाइ ! यह दिलवाने वाले ! वे मुझे छोड़ और किसी को ले ही न जाने ।

‘‘युम न होते तो अपने तिर लाइ ले जाते—क्यों न !

अंगनू काका कुछ अप्रसन्न होकर बोले—'ज़रा वात समझ लिया करो, फिर बोला करो। मेरा मतलब यह है कि यदि वे मुझे देख पाते तो फिर दूसरा मजूर न लेते। तुम लोग जैसे दौड़कर पहुंच जाते हो और छीनाकपटी करते हो वह वात उनके साथ न चलती। समझे ?'

'अब चाहे जो समझाओ अंगनू काका। अब तो मजूरी मिल गई न ?'

'अच्छा भैया तुम्हारी दया से मिली—बस ! पर अब हम दया की भीख नहीं लेने, यह याद रखना। अब यदि किसी ने हमसे कहा कि जाओ तो फ़ौजदारी हो जायगी। इस पर सब कहकहा लगाकर हंसने लगे। एक ने पूछा—
'अच्छा यह बताओ, मिला क्या ?'

'मिला है खज़ाना। तुमने मजूरी दिलवाई थी न, इससे खज़ाना मिल गया।' अंगनू काका ने आँखें तरेर कहा।

दूसरा बोला—'इस वक़्त इनसे न बोलो। नही सचमुच फ़ौजदारी हो जायगी। ये लड़ने पर तुले हुए हैं।

'नही ऐसी वात नही है। क्यों अंगनू काका ? अंगनू काका लड़ेंगे तो फिर गुज़र कैसे होगी !'

अंगनू काका खून का सा घूंट पीकर बोले—'हां भैया, ठीक कहते हो। तुमसे लड़ेंगे तो हमारी गुज़र कैसे चलेगी। तुम्हीं लोगो की बदौलत हमारी गुज़र होती है।

वह व्यक्ति बोला—लेओ और सुनो ! हमने कहा अपने लिए और ये समझे अपने को !

इसी समय एक मज़दूर मजदूरी से लौटकर आया । उसने उपयुक्त वाक्य सुनकर बैठते हुए कहा—अगन् काका सठिया गए हैं ।’

इतना सुनते ही अगन् काका ने उसको झेली फेंककर मारी । वह झेली का धार बचा कर दसता हुआ वहां से उठकर भागा ।

अगन् काका बोले—‘अब भागते क्यों हो ! बैठे रहो । हम सठिया गए हैं ! ये ससरज अभी बारह ही घंटे के हैं—चोर कहीं का । बच गया ! यदि कहीं झेली पड़ जाती तो छोटो का दुध याद आ जाता ।

सब मज़दूर दस रहे थे । अगन् काका ने उठकर झेली उठाई और अपने स्थान पर जा बैठे । इसी समय ‘मजदूर’ ‘मजदूर’ की आवाज़ आई । जो मज़दूर उठकर भागा था वह आवाज़ सुनकर तुरन्त पहुँच गया, अन्य सब बैठे ही रह गए ।

एक बोला—‘लेओ ! अगन् काका ने झेली मारी, इस में भी उसका फायदा हो गया ।

‘अभी एक मजदूरी से लौटकर बैठा भी नहीं था कि दूसरी मिल गई । दूसरे ने कहा ।

अगन् काका अकड़ कर बोले—देखा ये बड़े धूर्तों के

लटके हैं। तुम लौंडे इन बातों को क्या जानो ? हमारी नाराज़गी में भी तुम लोगों का फ़ायदा है।”

“हां अंगनू काका, इस वक्त तो यही बात हुई।” पहले वाले ने कहा।

“यदि ऐसी बात है काका तो हमारे ऊपर भी दया हो जाय-ज़रा झल्ली खींच कर मारो।” दूसरे ने कहा।

“वह तो वक्त की बात होती है बेटा। ऐसे कुछ नहीं होता।”

(३)

अंगनू काका चार पैसे रोज़ पर एक कोठरी लिये हुए थे। दिनभर में सात आठ आने पैदा करते थे, उसी में गुज़र करते थे।

गर्मी के दिन थे। अंगनू काका भोजन करके कोठरी के बाहर पत्थर पर एक टाट बिछाये पड़े थे। कभी पिछले जीवन की याद करके ठंडी सांसे भरते थे और कभी भविष्य का खयाल करके सोचते थे कि हाथ पांव चलना बन्द हो जायेंगे तब कैसे गुज़र होगी। उस समय की याद करके अंगनू काका को रोमाञ्च हो आता था। मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करते कि हे भगवान्, हाथ-पाव थकने से पहले ही हमें उठा लेना। इसी प्रकार की बातें सोचते-सोचते अंगनू काका को नींद आने लगी। अकस्मात् एक पिल्ला

‘तुम्हारी कोठरी ताका करेगा ।’

‘कोठरी में कौन खज़ाना गड़ा है जो ताकेगा ?’

वह व्यक्ति हंसता हुआ चला गया ।

अंगनू काका शौच इत्यादि से निवृत्त होने लगे । लौटकर आये तब उन्हें देखते ही पिल्ला डुम हिलाकर उनकी ओर गौड़ा और पैरों से लिपट गया ।

अंगनू काका ने उसे हटाकर कोठरी खोली और रात की रक्खी हुई रोटी खाने बैठे । पिल्ला भी सामने बैठकर मुंह ताकने लगा । अंगनू ने उसके सामने एक टुकड़ा फेंका । पिल्ले ने टुकड़ा सूंघा-सूंघकर उसे खाने का प्रयत्न किया परन्तु फिर छोड़ दिया और आँठों पर जीभ फेरते हुए अंगनू का मुंह ताकने लगा ।

अंगनू काका बोले-‘वाहवेटा ! तब तो तुम्हारा निर्वाह होना कठिन है । यहां तो यही सूखे टुकड़े हैं । दूध मलाई पाना हो तो कहीं और जाओ ।’

अंगनू काका की बात के उत्तर में पिल्ला केवल पूंछ हिलाता रहा और उनकी ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखता रहा ।

अंगनू खा-पीकर उठे और इच्छा हुई कि कोठरी में ताला लगाकर मजूरी पर जाय । अंगनू के उठते ही पिल्ला पुनः उसके पैरों में लिपट गया । अंगनू उसकी ओर कुछ क्षणों तक ताकता रहा । अकस्मात् उसके नेत्रों में दया की सृजिता

अंगनू ने कहा—‘जब खाने को नहीं मिलेगा तब अपने आप चला जायगा । इसके लिए चार पैसे रोज़ कोई कहीं से लायेगा ?’

अंगनू खाने बैठा । सामने पिल्ला भी बैठ गया । अंगनू ने एक टुकड़ा फेंका । पिल्ले ने सूँघकर छोड़ दिया । अंगनू बोला—“हां, अब काहे को खाओगे-सबेरे का दूध मुंह लग गया है न ! सो इस वक्त मैं दूध लाने वाला नहीं । तुम चाहे जितना लपर-लपर करो ।” अंगनू खा-पीकर उठा तब कुत्ता दुम हिलाता हुआ पैरों में लिपट गया । अंगनू ने उसकी ओर देखकर सोचा—बैठे बिठाय यह अच्छी व्याधि पीछे लगी । अंगनू कुछ क्षणों तक उसकी ओर ताकता रहा, कभी उस पर क्रोध आता था, कभी दया आती थी । अन्त को अंगनू का जी न माना, दौड़कर गया और दूध ले आया प्रातःकाल जब अंगनू सोकर उठा तब उसने पिल्ले को अपने पास बैठा पाया । उसने सोचा—अब यह कहीं न जायगा, हमारे ही मत्थे रहे । चलो अच्छा है, एक से दो जने तो हुए ।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए । अब अंगनू को कुत्ते से स्नेह हो गया । वह अपना दुख-सुख कुत्ते से कहने लगता । कोठरी में बैठा उसको बाते सुनाया करता । जिस रोज़ जो मिलता वह भी उससे कहता । कभी कहता—‘आज तो गहरे हैं बेटा मोती । कहो क्या खाओगे ?’ कभी कहता—

अंगनू काका ने दीर्घ निःश्वास छोड़ कर कहा—“ठीक रहते हो भैया ! सब निकल रही है ।”

दूसरा बोला—“हमने जो उस दिन कहा था कि काका सठिया गये हैं तब कुछ भूठ थोड़ा ही कहा था । पूछो, कुत्ते के पीछे प्राण दे रहे हैं । अपना लड़का न रहा, औरत न रही, कोई न रहा, सब जंजाल से छूट गये थे । सो बुढ़ापे में कुत्ते से नाता जोड़ बैठे ।”

‘नाता’ शब्द पर सब मज़दूर हंसने लगे ।

अंगनू काका को बड़ा बुरा लगा, बोले—“यह जब बोलेंगा तब ऐसी ही ऊट-पटांग बात कहेगा ।”

वह हाथ जोड़कर बोला—“भूठ नहीं कहता हूँ काका ! चाहे जूते मार लो । तुम्हे चाहिए था कि सब जंजाल से चित्त दटाकर भगवान् का भजन करते सो वह तो कुछ न किया, कुत्ते के हवाले हो गए । रात-दिन उसी की माला जपा करते हैं ।”

अंगनू काका ने कहा—“क्या करें भैया, अब हमारा शरण आ गया है, तब उसे कहाँ निकाल दें ?”

“अरे मारो इसे चार डंडे । आप भाग जायगा । कुत्ते का क्या ! उसके बीस ठिकाने हैं । पचासों कुत्ते फिरा करते हैं । उन्हें कौन पाले हुए है ?”

“भैया, हमसे तो अब यह हों नहीं सकता कि डंडे मार कर निकाल दें ।”

‘कैसे हो सकता है ! नाता है ।’

अगन्तू काका ने झुल्लाकर झुल्लो खींच कर मारी । परन्तु वह पड़ले से ही चोकना बैठा था, चार बचा गया । अगन्तू काका लाल लाल आँखें करके बोले—नाता है ! हम कुत्ते से नाता जोड़ेंगे ! कहीं आदमी और जानवर का भी नाता होता है ?”

‘होता नहीं तो तुम्हारा कैसे हो गया ?’

“अब चले जाओ ! नहीं मारे जूतों के खोपड़ी गजी कर दूंगा ।’

‘जूतों मार लो काका पर जो बात सच्ची है वह तो हम जरूर कहेंगे । सुद तो नमक रोटी खाओ और कुत्ते को दूध रोटी सिलाओ । यह नाते की बात नहीं तो क्या है ?’

‘अरे मैया सियराखन यह पिन्ना सूखी रोटी खाता नहीं ।’
अगन्तू काका ने नम्रतापूर्वक कहा ।

‘जय दूध रोटी मिलती है तर सूखी क्यों खाए ? यह कुछ तुम्हारी तरह सडिया गया है !’ सियराखन ने कहा ।

अगन्तू काका खून का सा घूट पीकर रह गये । सोचा—
“ये लोग क्या जानें कि यह क्या है ।’

एक अन्ध व्यक्ति वाला—‘उसे यदा तो लाओ किसी दिन।’

अगन्तू काका ने कहा— जरा और बड़ा हो जाय तो लाया करेंगे ।’

“अंगनू काका, उसे कुछ पढ़ाओ-लिखाओगे भी या अपनी रह डलिया ही डुलवाओगे ?” शिवराखन ने पूछा ।

“अच्छा अब दिल्लीगी हो चुकी । अब चुप हो जाओ ।”

“नही काका इन्तज़ाम तो तुमने अच्छा सोचा है । बुढ़ापे । तुम मज़े से पड़े रहना । वह इधर-उधर से रोटी उठा लाया लेगा और तुम्हें खिलाया करेगा ।”

अंगनू काका बोले—“अच्छा भैया, जो तुम्हारा जी चाहे, हो । अब तो पाल ही लिया है । अब तुम्हारे कहने से हम उसे निकाल नहीं सकते ।”

एक दिन मज़दूरो के आग्रह पर अंगनू काका जब सवेरे प्रहृ पर आये तब मोती को भी साथ लेते आये । एक स्थान पर उसको बांध दिया । दिनभर मज़दूरी की । उस दिन पैसे अधिक मिले । बड़े प्रसन्न हुए । सोचा कि आज मोती को दो पैसे की बरफ़ी खिलावेगे ।

सन्ध्या समय उसे साथ लेकर चले । आगे आगे अंगनू काका जा रहे थे, पीछे मोती था । एक चौराहा पार करने लगे । संयोगवश मोती चौराहे के बीचोबीच चला गया । दो ओर से मोटर आ रहे थे । अंगनू काका ने देखा कि मोती मोटरों के नीचे दबना चाहता है । झपटकर उसे उठाने चले- मोती तो कतरा कर निकल गया, परन्तु अंगनू काका को मोटर की टक्कर लगी, वे तड़ाक से गिरे । भल्ली हाथ से

छूटकर दूर जा गिरी मोटर अगनू काका के ऊपर से निकल गया।

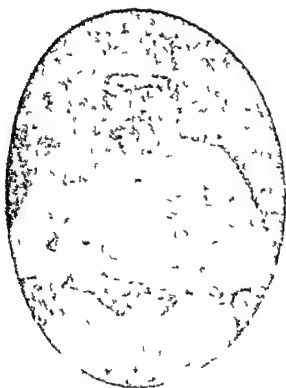
* * * *

एक मजदूर के साथ एक कुत्ता रहता है। सवेरे उसी के साथ थोड़े पर आता है और शाम को उसी के साथ जाता है। यह मजदूर जहा जहा मजदूरी पर जाता है कुत्ता भी साथ रहता है। उससे जा कोई पूछता है कि यह कुत्ता कब पाला तब यह उत्तर देता है—मैंने नहीं पाला, यह अगनू काका का कुत्ता है। मरते समय मुझको सौंप गये थे। भगवान् की लीला देखा। लडका मर गया। औरत मर गई, घर द्वार छूट गया, पर उसकी उर्दें कुछ चिन्ता नहीं था—मस्त रहते थे। आखिरी समय इसे पाल लिया। तब ऐसा मोह बढ़ा कि इसी के पीछे जान दे दी और मरते समय भी इसीकी चिन्ता रही। न लड़के को याद किया, न औरत को और न भगवान् का नाम लिया। इसी का नाम रटते रहे। हमसे बोले—'भैया सिधरायन ! इसे तुम पाल लो, मेरी निशानी तुम्हारे पास रहेगी, पर अच्छी तरह रखना।' मैंने जब इसमें साह कि अच्छी तरह रक्खना तब प्राण छूटे। सो यह उर्दी अगनू काका की निशानी है।

आज दिन भी उस कुत्ते को देखकर लोगों को अगनू काका का स्मरण हो आता है।

श्री ज्वालादत्त शर्मा

आप मुरादाबाद के निवासी हैं। आपका जन्म सन् १८८८ में हुआ।
हिंदी के साथ साथ ही आपको संस्कृत, उर्दू, फारसी का भी अच्छा



ज्ञान है। आप पुराने गल्प-
लेखकों में से हैं। आप के गल्प
उस समय भी सरस्वती में
निकलते थे जब कहानियों का
रिवाज बहुत कम था। समाज
के कुरूप जनक दृश्यों का वर्णन
करने में आप विशेष निपुण हैं।

आपने उर्दू के कई प्रसिद्ध
कवियों पर पालोचनात्मक

पुस्तकें लिखी हैं, जो हिन्दी साहित्यकोष का कीमती धन समझी
जाती हैं। आपकी वर्णन शैली सरस और आकर्षक तथा, भाषा
सरल और मंजी हुई है। कहीं कहीं उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग
मिलता है।

मृत्यु-शय्या

(१)

एक दिन्दू पर एक साथ कई मारे पड़ जाती हैं । पहले तो वह हिन्दुस्तानी होने के कारण उन समस्त दोषों से युक्त होता है जो परतत्र भूमि में उगनेवाले पौधे में हुआ करते हैं, फिर वह दिन्दू होने के कारण अनेक निरर्थक और मन-गढ़त रुढ़ियों का दास होता है । यदि वह परीय होकर बेकार और २३ क-याओं का पिता हुआ तो वस फिर उसके जीवन पर मृत्यु की भी तरस आने लगता है । यहा एक अजय तमाशा है—विप में अमृत छिपा हुआ है, नाश होने वाली चीज़ों में अधिनाशी डेरा डाले पड़ा है । विगाड़ के उजाड़ में बनावट की देवी का श्रृङ्गार हुआ करता है । कहीं इधर किसी की दृष्टि से पहुच गए तो उसे कुछ और ही देखने को मिल जाता है फिर ता प्रलय काल के यादलों की गरज भी उसकी शांति को भङ्ग नहीं कर-सकती, शेष शय्या पर

करते समय उसकी शक्ति 'जाम' खा गई। कई दिन तक वो बड़ मोचता रहा, आन दलाल से कह, कल कह, उसे अपना अभिप्राय प्रकट करते इन्त की डायन तरह तरह के रूप भरकर डराती थी, मुद् से बात न निकली थी, मानो बड़ पढ़ती बार जरूरदस्ती किसी समा में घोलने के लिए बसा कर दिया गया है। अन्त में उसने दिल पका करके एक दलाल से अपने मन की बात प्रकट कर दी। दलाल ने कहा 'बाबूजी' मैं बहुत जरूर आपका काम बना दूंगा पर मुझे इसका ढोल पीटना पड़ेगा, आप को दुःख तो न होगा।' उसने देखा, बूढ़ दलाल की तेज नजर ने चोर पकड़ लिया है। उसने हिम्मत से उत्तर दिया—'नहीं माई मुझे दुःख न होगा। तुमने अच्छा किया जो पूछ लिया जिस तरह काम बने बनाओ मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'।

दूसरे दिन से उसके बड़ा एक नये नाटक का अभिनय शुरू हो गया। उसने देखा, तुम सुनो।

(४)

उसके पास तीन तरह के आदमी आये। एक तो वे जो दिल में गुंथ घे, मानो उन्हें ही उसकी सारी आपदा पहुच गई है। मुद् से सहानुभूति दिखाने आते थे, मानो उन पर कोई मारी विपत्ति पड़ गई है। बात शुरू करते तो इस तरह बोलते मानो उनके बड़ा कोई मर गया है। दूसरे

दिन समाप्त होने वाला है और अन्धेरी रात मुँह खोले दौड़ी चली आ रही है।

(३)

पहले तो उसने सोचा, अभी तीन-चार साल से ही जो इस घर में आई और बाहरी ठाठ में जो इस उजड़े खेड़े को चमन समझे बैठी है उस अपनी स्त्री से इस विषय में परामर्श न करूँ तो अच्छा है, किन्तु वह अपनी स्त्री के रूप से अधिक सद्गुणों पर मुग्ध था, उससे न रहा गया ! उसी दिन उससे सारा हाल कह दिया । वह डर रहा था कि यह सब सुन कर वह रोयेगी, एक-दो दिन भोजन न करेगी, किन्तु उसने देखा कि उसके चेहरे पर कोई विशेष अन्तर न हुआ । हाँ, चिन्ता के सूफियाने रङ्ग ने उसके भीतरी सौन्दर्य पर एक हल्की सी चिन्ता ज़रूर कर दी । वह बोली—‘यदि ऐसा है तो तुरन्त सब ज़ायदाद बेच डालो, मकान बहुत बड़ा है, हमें इसकी कुछ ज़रूरत नहीं है, कहीं और जगह चलकर रहो, कुछ रुपया बचेगा उसके सूद से और तुम्हारी २०) ५) की नौकरी से हमारा सब काम चल जायगा !’

उसने यह काम जितनी शीघ्रता से करने को कहा और वह स्वयं भी उसे जिस सफ़ाई से कर डालना चाहता था, कार्यक्षेत्र में उतरने पर उसे मालूम हुआ कि सोचने की ‘स्पीड’ से काम की गति बहुत थोड़ी हुआ करती है । काम

करते समय उसकी शक्ति 'जाम खा गई। कई दिन तक तो वह सोचता रहा, आज दलाल से कहूँ, कल कहूँ, उसे अपना अभिप्राय प्रकट करते इज्जत की डायन तरह तरह के रूप भरकर डराती थी, मुह से बात न निकली थी, मानों वह पहली बार जरूरदस्ती किसी सभा में बोलने के लिए खड़ा कर दिया गया है। अंत में उसने दिल पकड़ा करके एक दलाल से अपने मन की बात प्रकट कर दी। दलाल ने कहा 'बाबूजी' मैं बहुत जरूर आपका काम बना दूंगा पर मुझे इसका ढोल पीटना पड़ेगा, आप को दुःख तो न होगा।' उसने देखा, बूढ़े दलाल की तेज नज़र ने चोर पकड़ लिया है। उसने हिम्मत से उत्तर दिया—'नहीं मारें मुझे दुःख न होगा। तुमने अच्छा किया जो पूछ लिया जिस तरह काम चने बनाओ मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'।

दूसरे दिन से उसके यहाँ एक नये नाटक का अभिनय शुरू हो गया। उसने देखा, तुम सुनो।

(४)

उसके पास तीन तरह के आदर्मी आये। एक तो थे जो दिल में खुश थे मानों उन्हें ही उसकी सारी जायदाद पहुँच गई है। मुह से सदानुमति दिखाने आते थे मानो उन पर कोई मारी विपत्ति पड़ गई है। बात शुरू करते तो इस तरह बोलते मानो उनके यहाँ कोई मर गया है। दूसरे

वे थे जो उसकी जायदाद थोड़े दाम में खरीदना चाहते थे और हितैषी बनकर घोखे का जाल बुनते थे । इनमें, उसके पिता के मित्र लाला रामप्रसाद, जो सन्तानहीन होने के कारण स्नेह के पंछी से परिचित ही न थे, सबसे नम्बर ले गए । उन्होंने उसे एकान्त में समझाया, तुम्हें रुके पर्वों का रुपया देना है, तुम अपनी सारी जायदाद मेरे यहां गिरवी डाल दो, रकम को खूब बढ़ाकर लिख दो, जब वह काम हो जायगा तब देने वाले भक मार कर रुपये मे ॥) लेने पर राजी हो जायंगे, बाद को इतमीनान से बेच लेना । थोड़ी जायदाद से ही मेरा रुपया पूरा पड़ जायगा और सब तुम्हारी जायदाद बेच जायगी । इस प्रपंच के लिए उन्होंने बहुत सिर खपाया । कभी महाजनों के पास जाते, उनसे कहते कि तुम किस ध्यान में बैठे हो, लड़का सब जायदाद बेच कर विलायत भागना चाहता है, बैठे-बैठे देखते रहोगे तो देखते रह जाओगे फट से नालिश कर दो और कुर्की से पहले फ़ैसला निकलवा दो, मेरे तो मित्र का बेटा है, किन्तु उसकी चाल मुझे बुरी दीखती है, फिर तुम लोगों से भी तो मेरी दुश्मनी नहीं है, सच्ची कहूंगा चाहे किसी की हो, यह मेरा स्वभाव है । दूसरे समय रामभरोसे के पास जाकर कहते थे, महाजन बड़े चाण्डाल होते हैं । बड़ी मुश्किल से समझा कर आया हूं । जायदाद बेचने की खबर सुनकर अजब अजब मनसूबे बांध रहे हैं । नालिश करने पर उतारू हैं । भइया, जायदाद

बेचने का नाम घुरा होता है । इससे हवा उखड़ जाती है । मेरा बड़ा मान लो, फिर इन दुष्टों से मैं निपट लूँगा । यह सब पाषण्ड लीला उसे घुरी लगती थी किन्तु बचपन से जिनका आदर करना सिखाया गया था, उन पर उसे शोध न आकर दया ही आती थी । तीसरे ये ये और एक हाथे उसके पिता के सच्चे मित्र । उसके सच्चे दितैषी, मनुष्य जाति के उज्ज्वल रत्न उस पर अशेष स्नेह रखनेवाले परिहृत सनेहीलाल, जो उसी सुदृष्टि में रहते थे । उनके बड़ा भी थोड़ी सी जर्मीदारी थी ।

जब उन्होंने यह खबर सुनी तब एक दिन उसके पास आए । चेहरा तो सुंश ही था, किन्तु आँखें सुस्त थीं । उस समय रामभरोसे के पास कई आदमी बैठे थे । थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके बोले—“दुलारे की मा तुम्हें कई दिन से बहुत याद कर रही है । कि किसी समय उसके पास हो आना ।” दुलारे, परिहृतजी का पुत्र और रामभरोसे का बाल्य-सखा, प्रवेशिका पास कर के बाहर पढ़ने चला गया था । उसकी माता का भरोसे पर भी बहुत स्नेह था, जिस त्योंहार पर दुलारे न आता था इसे घुला कर ही वह खिला-पिला कर सन्तोष प्राप्त करती थी । उसने कहा—“चाचाजी मैं आज जरूर आऊँगा । मेरा मन भी कई दिन से आने की कर रहा था, किन्तु आ न सका ।”

थोड़ी देर में वह उनके स्थान पर पहुँचा । परिहृतजी

बाहर बैठे थे। उसे देखकर खड़े हो गये और साथ लेकर अन्दर गये। उसे देखकर उनकी स्त्री ने कहा—‘क्यों रे भरोसे, बहू ने ऐसा क्या जादू कर दिया है जो घर से निकलता ही नहीं? पहले रोज़ आता था, अब दफ़ते गुज़र जाते हैं, सूरत को तरस जाती हूँ।’ यह बात दिल के पार हो गया, बात सच थी। उसकी नज़र नीची हो गई और मुँह से एक शब्द न निकला, शर्म के पानी में मानों डूब गया। उसे भेँपा देखकर परिणितजी ने कहा—‘अरे तुम भी कमाल करती हो। इतने दिन बाद आया है उसे कुछ खिलाओ-पिलाओ, प्यार करो, शिकायत ले बैठी। उस पर घर का सारा बोझ आ पड़ा है। अब उसे उतनी फुर्सत कहां है?’ आओ बैठा ऊपर बैठेंगे। कहकर वे उसे ऊपर ले गये। वहां छत पर कम्यल बिछा हुआ था, उसी पर दोनों बैठ गये। थोड़ी देर बाद परिणित जी की स्त्री एक बड़े थाल में मिठाई, नमकीन फल आदि लिये वहां आ गई और भरोसे को अपने हाथ से इस तरह खिलाने लगी, मानों वह ३-४ वर्ष का अवोध-बालक है। उसने मन में कहा—पृथ्वी पर प्रेम का अभी चिह्न बाकी है, उसी के सहारे यह हरी-भरी है। उसने कहा—‘चाची, कितना खिलाओगी? मेरा पेट भर गया। अब नहीं खाया जाता।’ ‘अरे अभी से ऐसी बातें करता है, अच्छा यह खा, तेरे लिये मैंने अपने हाथ से बनाया है।’ ‘नहीं चाची, अब रहने दे, पेट भर गया।’ उसने कहा—‘यह तो खाना पड़ेगा।’

रोज आता था। अथ बहुत दिनों में आया है। अपना पूरा हिस्सा खाना पड़ेगा।' उसने कहा—'चाची माफ़ कर। घर में रोज़ आकर अपना हिस्सा खा जाया करूंगा।' पण्डितजी निर्निमेष दृष्टि से वात्सल्य का पान कर रहे थे बोले—“अच्छा रहने दो, तबीयत भर गई तो क्यों खिलाती हो।” हाथ से मिठाई थाल में रख कर चाची ने कहा—“बेटा, मेरा बात का पुरा न मानना। मुझे यही कसक आ रही है। मैंने तुमसे ऐसी बात क्यों कही तू तो मेरा वैसा ही मोला भरोसे है। अपनी वृद्ध से उस बात का जिज्ञास न करना, घुग मानेगी। वह तो साक्षात् लक्ष्मी है।”

पण्डितजी ने कहा— भरोसे' मैंने सुना है तुम अपना सब जायदाद बेच रहे हो।

उसने कहा—' हा चाचाजी, बिना पैसे किये राज नहीं उतर सकता।

उन्होंने पूछा— राज कितना है।'

उसने कहा— कोई ३० हजार।'।

उन्होंने पूछा— जायदाद किस शीमत की है।'

उसने कहा— २५ हजार गाय के लग गये हैं ६-७ हजार में मकान भी बिक जायगा।'

उन्होंने पूछा—“ तो क्या मकान भी बेचागे।'

उसने कहा— 'यदि गाय के दाम कम लगे तो मकान बेचना ही पड़ेगा।'

उन्होंने कहा—“बेटा एक बात कहता हूँ। बुरा न मानना। मैं तुझमें और दुलारे में अन्तर नहीं समझता हूँ। मेरे पास इस समय ७ हजार नकद रक्खा है और ४ हजार के ज़ेवर हैं। ये सब तू अपने कर्ज में दे दे, आधा गांव और मकान बचा ले। गांव ३० से कम का नहीं है। मैंने ठाकुर जयसिंह से बात की है। वे २८ तक ले लेंगे। ज़ोर डालूंगा, जो कुछ बढ़ जायगा अच्छा है। तेरे पिता मेरे मित्र थे। उन्होंने मेरे ऊपर बहुत श्रद्धा की है। यदि मुझसे भी कुछ बन जाय तो सुख से मरूंगा।”

उसने कहा—‘चाचाजी, आपका स्नेह अनुपम है। किन्तु मैं इस तरह आपका सर्वस्व लगाकर अपनी जायदाद बचाना नहीं चाहता। आपके स्नेह का अधिकारी होने से आपके मन का भी अधिकारी हूँ। किन्तु क्या आप स्नेह के कारण दुलारे का कोई अनिष्ट चाहेंगे?’

उन्होंने कहा—“कभी नहीं। तेरी चाची ने बहुत कहा, बेटे को आंख ओझल न करो, किन्तु मैंने इनकी एक न मानी। तेरे पिता बीमार पड़ गये और अन्त में उनका शरीर ही छूट गया, नहीं तो मैं तुझे भी कालेज बिना भेजे न मानता। हाय जब सुख देखने का समय आया तब चल बसे। तपस्या करते करते ही जीवन पूरा हो गया है। हां, तो मैं स्नेह में अनिष्ट नहीं कर सकता।”

उसने कहा— चाचाजी, यह अनिष्ट ही है जो आप अपना सर्वस्व देकर मेरी आधी जायदाद बचाना चाहते हैं। हुलारे की पढ़ाई का अभी बहुत खर्च बाकी है, फिर अगले वर्ष उसका विवाह होगा। उसके लिए आपको ज़रूर पड़े की जरूरत होगी। खर्च के लिए भी बहुत रुपया चाहिए। फिर क़र्ज़ लेना पड़ेगा। इसलिये ऐसा काम करना उचित नहीं है। अपनी जायदाद बिक जाने पर भी मैं आपका जायदाद से जायदादवाला हूँ।

उन्होंने कहा— 'अच्छा तो मकान अवश्य बचाना होगा।'

चाची बोल उठी— 'बेटा, तूने मेरी यह बात न मानी तो मैं समझूंगी तुम्हें मुझसे मुहब्बत नहीं है। तुम्हें मेरी ज़सम जो मकान बेचे। जितना रुपया कम पड़े मुझसे ले लेना। हाथ तेरी माता ने किस चाय से उस घर में तेरे लिए कमरे बनवाय थे। मेरी बहू इनमें रहेगी। आज ये नहीं है तो मैं तो हूँ। मैं अपनी जिन्दगी में यह न देख सकूंगी। बोल क्या कहता है।'

उसने कहा— चाची, तू मुझ ज़सम देती है तो मैं भी तुम्हें एक ज़सम देता हूँ। तुम्हें भी मेरा कहना मानना पड़ेगा। जरूरत पड़ने पर जो रुपया तुम्हें लूंगा उस लौटाने का मुझे अधिकार होगा। तुम्हें लेना पड़ेगा और—

यह बीच में बोल उठी— हाँ ले लूँगी और क्या—सूद !'

में नहीं। क़सम तो उसी बात के लिए दूंगा। बता मानेगी ?

चाची ने कहा—“पहले तू अपनी बात बता फिर मैं बताऊंगी।”

उसने कहा—“नहीं बताऊंगा। तूने क्या मुझे मुझसे पूछ कर क़सम दी थी ? मैं तो इतना पूछ भी रहा हूँ।”

चाची ने कहा—“अरे तू मेरी बराबरी करता है। बेटे के पास मां का दिल नहीं होता। अच्छा बता, मंजूर है।”

उसने कहा—“मंजूर है तो जहां मैं रहूंगा, साल में तुझे कम से कम दो महीने सूद लेने के लिए मेरे पास रहना पड़ेगा। आज मुझे मालूम हुआ है कि मेरे मा-बाप मेरे नहीं, ज़िन्दा हैं। उनके रूप में अन्तर पड़ गया है, तत्त्व ज्यों का त्यों है।” उसका गला रुंध गया।

चाची ने कहा—“इसके लिए क़सम दिलाता है, बड़ा भोला है। मैं चार महीने रहूंगी—बस—कहकर आंचल से मुँह पोंछने लगी।”

उसने कहा—“बस।”

चाची ने कहा—“ये सात हज़ार के नोट हैं। इन्हें साथ लेता जा।”

उसने कहा—“इनका अभी से मैं क्या करूंगा ? ज़रूरत पड़ने पर ले जाऊंगा।”

परिडतजी बोले—“ठीक है अभी इन्हे तुम अपने रखो। अंगरेज़ी पढ़े-लिखे में एक दोष होता है—

से मानते हैं, कि-तु साथ ही यह गुण भी होता है कि उन मान लेते हैं तब दुबारा मनाता नहीं पड़ता । दुलारे में भा यही बात है । अच्छा पढ़ा, अब जा बहुत देर हो गई । वह अकेली होगी ।’

(५)

घर का जेवर गाव और कुछ फिन्ल पड़ा सामान पैच कर रज्जा निपट गया । तान हजार चाची के लेन पड़ । ठाकुर साहब ने २७ हजार स अधिक गाव के न दिए । जब चाची ने रुपय मांगने गया तब बोली यह से ले लेना । मैंने घर आकर पूछा तो मालूम हुआ । घ दूमर हो दिन एक लिफाफा दे गई थी और कह गई थी कि जब भरोस माग तब दे देना । इसमें सरकारी प्रायज हैं, समाल कर रचना । मैंने कहा — ‘लाना ये सरकारी कायन ।’ लिफाफे में सात हजार क नाट पे मैं चार हजार लाटान गया तब बोली — ‘ये अपने पास रख कुछ राजगार कर खाने का भी तो कुछ चाहिए ।’

मैंने कहा—चाची, मैंने स्कूल में नौकरी कर ली है । परसों चला आऊंगा । मेरे पास १००) हैं । ज़रूरत हुए तो तुमसे मंगा लूंगा ।’ बड़ी कठिनाई से लिए ।

अब जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ, न घर में मदरी, न बाहर नौकर छोटे से मकान में रहना और सब

काम अपने हाथ से करना । इस स्थिति में जो आनन्द, शान्ति और सन्तोष था उसका कभी अनुभव भी न हुआ था । सब काम समय पर होते थे । न अब महरी के न आने से चौका भिनकता था और न नौकर के आने से कमरा मैला रहता था । मैं नित्य पानी भरता हूँ, काम से अधिक व्यायाम के खयाल से । गृहिणी भोजन बनाती है । पहले तो जो पहाड़ मालूम होता था, अब वह आनन्द का हेतु हो गया है । एक समय था एक गिलास पानी के लिए परतन्त्र था । आज दसो घड़े पानी घर की सफ़ाई में लुढ़का देता हूँ । आज का जीवन स्वावलम्बन का जीवन है, आज कोई काम ही नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि सारा काम अपने हाथ से किया जाता है ।

(६)

पाच वर्ष बीत गए, तनखाह में से आधा रुपया बचा कर चाची का कुल रुपया दे चुका हूँ । मेरी स्थिति भी सुधर गई है । पहले वर्ष में बी० ए० पास हो जाने से नार्मल-स्कूल का हेडमास्टर हो गया हूँ । वेतन भी खासा मिलता है । दुलारे डाक्टरों पढ़ रहा है । चाची अपना वायदा हर साल पूरा करती है । उसके आने से हमारा घर स्वर्ग बन जाता है । मैं भी छुट्टियों में उसी के उतरता हूँ । दूसरे नहीं जान पाते, मैं और दुलारे सगे भाई नहीं हैं ।

मौरसी जायदाद का अयस्ताद न उतरता तो भाव यह सुदिन देखने को न मिलता । पिता जी यदि ऋण छोड़ते तो मौरसी जायदाद की अशुद्ध धेड़ी पर इस निष्कर्षमें जीवन की बलि चढ़ जाता और ससार के बाज़ार में अस्सी नक्ली प्रेम की पहिचान न होती । वे भाग्यवान् हैं जिन पर विपत्तिया पड़ती हैं और जो धैर्य से उनका सामना करते हैं ।

* * * *

समुद्र से सटे महाशय भाटिया के सैर्नीटोरियम में मृत्यु शय्या पर पड़े मेरे एक मित्र ने पूछा—“मास्टरजी, दुसारे जी तो ब्राह्मण हैं और आप वैश्य हैं । फिर इनके परिवार के साथ आपकी इतनी आत्मीयता कैसे हो गई ?”

मैंने उसका दिल बहलाने के लिए उसे अपने जीवन का एक अध्याय सुना दिया । उस समय चन्द्रमा का शीतल प्रकाश समुद्र की छाती पर ऊपम मचा रहा था, सुनकर वह बोला—

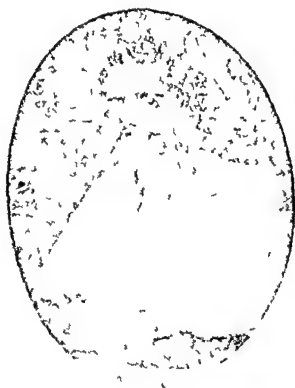
मास्टर जी, इसमें तो अद्भुत रस है । इस समय फिर मुझे यह जगत् अच्छा मालूम होने लगा है, मानो मेरे शरीर में कोई रोग ही नहीं है ।”

मैंने कहा—“भाई, मन की यह स्थिति टिकी रहे तो रोग का समूल नाश हो जाय । तुम्हें कहीं रोग छू सकता है ।”

उसी दिन से उसे आराम होना शुरू हो गया । अब वह भी हमारे आन्तरिक परिवार का एक हो गया है ।

श्री जैनेन्द्रकुमार “जैन”

आप एक जैन परिवार के रत्न हैं, आपका जन्म अलीगढ़ में सन् १९०३ में हुआ। आप अब दिल्ली में रहने लगे हैं।



अभी कुछ दिन हुए आपने कहानी लिखने के क्षेत्र में प्रवेश किया है। देखते देखते श्रेष्ठ लेखकों में आपकी गणना होने लगी है। वास्तव में आपकी क्षमता, योग्यता तथा प्रतिभा ऐसी ही हैं। आप सब भाँति से मौलिक हैं—भाषा में भी और भाव में भी।

‘तपोभूमि’ नामक उपन्यास आपने और श्री ऋषभचरण जैन ने मिल कर लिखा है पर आपकी छाप उस पर अधिक स्पष्ट मालूम होती है। आपकी सबसे प्रसिद्ध कृति ‘परख’ है। ‘वातायन’ में आपकी कहानियों का संग्रह है।



फोटोग्राफी

(१)

बहुतेरा पढ़ाने लिखाने के बाद और मा के बहुत बहने सुनने पर भी जब रामेश्वर को कमाने की चिन्ता न हुई तो मा द्वार मान कर रह गई । रामेश्वर की वाल सुलभ प्रवृत्ति चाहती था कि रुपये का अभाव तो न रहे। पर कमाना भी न पड़े । दिन का बहुत सा समय वह ऐसा ही कोई जुगत सोचने में बिता देता था । पच के लिए रुपये मिलने में कुछ हीला हवाला होते ही, वह अपने को बड़ा कोसता था बड़ा धिक्कारता था मन ही मन प्रतिज्ञा करता था कि कल से ही किसी काम में लग जाऊंगा और मा से अनुनय विनय करने पर या लड़ झगड़कर, जब रुपया मिल जाता था तब भी वह प्रतिज्ञा को भूलता नहीं था; पर जब अगला सपरा होता, तो फिर वह कोई सदल सी जुगत खूदने की पिक में लग जाता ।

मां ने भी होनहार को सिर नवाकर स्वीकार कर लिया । इस २३ वर्ष के पढ़े लिखे निर्जीव काठ के उल्लू को, दुलार के साथ अच्छा-अच्छा खिला-पिलाकर पालते-पोसते रहना मां ने अपना कर्तव्य समझा ।

रामेश्वर बड़े भले स्वभाव का युवका था । उसके चलने में जरा भी खोट न था, पर था वह आनन्दी और निश्चिन्त स्वभाव का । उसने प्रशंसनीय सफलता के साथ बी० ए० पास किया था; पर वह यह नहीं जनता था, कि इस दो शब्द की पूंछ से कहां और किस तरह फायदा उठाया जा सकता है । इस पूंछ के लगने के बाद, एक विशिष्ट गौरव से सिर उठाकर, राह चलते नेटिव लोगो पर हिकारत की निगाह डालते हुए चलने का अधिकार मिल जाता है—यह भी वह न समझता था ।

इस फोटोग्राफी की सूझ के बाद अब वह बिल्कुल पेरे-गैरे लोगो में अपना केमेरा बांह पर लटकाये और हाथ में स्टैण्ड को छड़ी के मानिन्द घुमाता हुआ कहीं भी देखा जा सकता है । उसकी अपनी खीची हुई अच्छी-बुरी तस्वीरों के संग्रह में आप एक जाट को दिल्ली के चादनी चौक के फुट-पाथ पर बोलत होठ से लगाये सोडा वाटर गटकते पा सकते हैं, होली के उत्सव की खुशी में रंग-विरंगे उछलते कूदते आठ आठ दस-दस ग्रामीणों की नाचती हुई उन्मत्त टोलियों को पा सकते हैं । सारांश यह कि उसके चित्र अधिकतर

साधारण कोटि के सामों में से लिये गये हैं । यह उनसे जितना अपनापा अनुभव कर सकता है, उतना वह आदमियों से नहीं ।

यह हम यह भी कह देना चाहते हैं कि यह कोई धनिक का पुत्र नहीं है । उसे अपने खर्च के लिए ४०) मासिक मिलते हैं, लड़ भगदकर १०) मासिक तक और मिल जाते हैं—क्यादा नहीं । रामेश्वर यह जानता है, और यह ज्ञातक होता है ४०) से अधिक न लेने का ही प्रयत्न करता है । कभी अधिक खर्च होता है, तो वह अपने ऊपर झुम करके इधर उधर के खर्चों से काट छांटकर पूरा कर लेता है ।’

(२)

जय यह अलीगढ़ गया, तो साथ में छ प्लेट ले गया था । पहुँचने के दिन ही उसने छहों खींच डाले । चार सभाल कर बेग में रख लिये दो स्लाइड में ही रहने दिये ।

लड़के जिन्हें प्रकृति ने परमात्मा की तरह निर्दोष बनाकर भी, उनमें ताक भाक और तोड़ फोड़ की उत्सुकता भर कर शैतान बनाया था, और जिन्हें रामेश्वर ने स्लाइड की हाथ न लगाने की सख्त ताकीद कर दी थी दृष्टात् छेड़ छाड़ किये बिना न रह सके । भीतर फसा जादू दे, यह जानने के लालच से उन्होंने स्लाइड

खोल डाली, प्लेट का कांच निकाल लिया और पटककर तोड़ दिया।

जब रामेश्वर अलीगढ़ स्टेशन पर दिल्ली आने वाली एक्सप्रेस के एक ड्योढ़े दर्जे में घुसा, तो एक भरी, एक खाली, दो स्लाइड उसके पास थी।

गाड़ी चलते समय ही सामने की बेच पर एक रुठते हुए बालक की ओर उसका ध्यान गया। उस बालक को केले की आशा दिलाई गई थी; पर केले वाला खिड़की के पास आया था, कि गाड़ी चल दी। इसी पर बच्चा मचल रहा था।

“क्यों मचल रहे हो बेटा, अगले स्टेशन पर केले मंगा दूंगी”—उसकी मां उसे मनाने के लिए कह रही थी।

बच्चा बहुत ही सुन्दर था। लाली छाये हुए उसके गोरे-गोरे गाल और माथे के दोनों ओर खेलते हुए उसके टेढ़े-मेढ़े बाल नये फोटोग्राफर को अलौकिक जान पड़े। उसने ऐसा सुंदर बालक कभी न देखा था।

और हां, मां ! मां विलकुल बालक के अनुरूप थी। वही स्वच्छ खिला हुआ रूप, और वही मधुर आकृति; पर माता में सलज्ज संकोच था, और बालक में लज्जा से अछूता चांचल्य।

बालक मचला हुआ था, किसी तरह नहीं मानता था।

रामेश्वर ने केमेरा खोला । कहा— 'आओ श्याम, तुम्हें एक तमाशा दिखाए ।'

केमर को देखते ही बालक श्याम केले चाले को और कले पर अपने रुठने को भूल गया । तुरन्त रामेश्वर की गोद में आ बैठा ।

रामेश्वर ने पूछा— 'तस्वीर खिचवाओगे ?'

श्याम ने ताली बजाकर कहा— 'खिचवाएंगे ।'

मा बालक की घसघसता से खिल उठी और अनायास बोल पड़ी— "हा खींच दो ।"

रामेश्वर ने बालक को मा के पास बेंचपर बिठा कर अपने केमेरे को ठोक जमाना शुरू किया ।

बालक बड़े उत्साह से एक अद्भुत चीज़ पा जाने की आशा में केमेरे के लेंस की तरफ एकटक देख रहा था । मा भी यह ध्यान से देख रही थी कि फोटोग्राफी कैसे होती है ।

रामेश्वर ने केमेरा ठीक कर लिया । फिर न जाने उसे क्या सूझा कि सवुचाते हुए वह मा से बोला— "इसमें आपकी भी तस्वीर आ जाती है कुछ दूज तो नहीं ?"

मा ने कुछ उत्तर न दिया उ होने बेग में से चश्मा निकाल कर पहना और अपने कपड़ों की सलपट ठीक कर बचे के पास आ बैठी ।

रामेश्वर के पास खाली स्लाइड थी । उसने फोकस

लगाया, श्याम को लेंस दिखा कर कह रखा—इसमें से चिड़िया निकलेगी । फिर नियमित रूप से एक-दो तीन किया और कह दिया—फोटो खिंच गई ।

तमाशा था, खतम हुआ । रामेश्वर जब केमरे को बन्द करके रख देने की तैयारी में था, तो उससे कहा गया—
लाइए, तस्वीर दीजिए ।

वह बड़ी उलझन में पड़ा । तस्वीर खींची ही कहाँ थी ? वह तो भूठ-मूठ-का तमाशा था । स्लाइड तो खाली थी और तस्वीर खिंचती भी, तो दी कैसे जा सकती थी ? उसे तैयार करने में अभी तो कमसे कम दो दिन और लगते; पर उसने फिर सुना—जितने दाम हों ले लीजिए, तस्वीर दे दीजिए ।

उसकी घबड़ाहट बढ़ती जा रही थी । क्या वह कह दे—तस्वीर नहीं खिंची गई, वह तो सिर्फ़ धोखा था और तमाशा था ! नहीं, वह यह नहीं कह सकता । मां ने कितनी उमंग के साथ अपने बालक की और अपनी तस्वीर खिंचवाई है ! क्या वह सच-सच कह कर उनके मन को अब मार देगा ? नहीं, सच बात कहना ठीक नहीं ।

“देखिए, यह ठीक नहीं है, तस्वीर दे दीजिए ।”

रामेश्वर ने कहा—“तस्वीर अभी कैसे दी जा सकती है ? इसे अभी धोना होगा, छापना होगा—तब कहाँ वह तैयार होगी ।”

मा ने कहा—‘धोनी होगी ? तैर, हम लादौर में धुलवा लेंगे ।’

रामेश्वर बोला—जी नहीं, उसे जरा सा प्रकाश लगेगा कि वह खराब हो जायगी ?

अगर सचमुच की तस्वीर होती तो रामेश्वर स्नाइड समेत उसे बिना दाम भेंट करके कितना प्रसन्न होता ! पर अब तो वह जा रहा था । कैसी घुरी विडम्बना में फस गया था वह ।

उसस सुनना पड़ा—यह ठीक नहीं है । जो हो, आप तस्वीर दे दीजिए । हमें यह नहीं मालूम था ।

रामेश्वर क्या कहे ! बोला—क्या आप यह समझता थीं, तस्वीर अभी तैयार हो जायगी, और आपका मिल जायगी ?

जवाब मिला—‘‘हमें यह नहीं मालूम था कि तस्वीर आपके ही पास रहगी ।

रामेश्वर ने कहा—‘‘तो, इसमें हज ही क्या है ?’’

महिला अकेली नहीं थी । उनके साथ एक महिला और थी । एक पुरबिया घुड़दा नौकर था, और वह घाल बंधे थे । उन्होंने क्षण भर अपनी साधिन की ओर देखा, देख कर कहा—नहीं नहीं आप दे दीजिए ।’

रामेश्वर अभी तक कमी का दे देता, पर दे तो तब जब हो । उसने कहा—‘देने के माने उसे खराब कर देना

है । इससे अच्छा, उसे तोड़ ही दिया जाय । आप मेरा परिश्रम क्यों व्यर्थ करवाती हैं ?”

उन्होंने फिर साथिन की ओर ऐसे देखा, जैसे वह स्वयं रामेश्वर को छुटकारा दे देना चाहती हैं । पर शायद साथिन की ओर से उन्हें संकेत मिला—लाहौर जाकर यह बात छिपी न रहेगी, फिर कैसा होगा ? उन्होंने कहा—
“तो तोड़ डालिए ।”

रामेश्वर ने सोचा—“अगर, कहीं दूसरी महिला भी फोटो में आ गई होती तो शायद कठिनता न होती । उसने अपील करते हुए कहा—“जी, देखिए मैं दिल्ली रहता हूँ, आप लाहौर जा रही हैं । मेरा आपका परिचय भी नहीं है । इस दिन को छोड़ कर शायद फिर कभी मिलना भी न होगा । मैं व्यवसायी फोटोग्राफर भी नहीं हूँ । आपको मैं वचन देता हूँ, मेरे पास तस्वीर रहने में, आपका कुछ भी अहित न होगा ।”

मां ने फिर अपनी साथिन की ओर देखा; पर उनकी तो तस्वीर खिंची न थी । मां ने कहा—“आप अखबार में भेजे देंगे, अपने यहां लगा लेंगे ।”

रामेश्वर ने तुरन्त कहा—“मैं वचन देता हूँ, न मैं लगाऊंगा न कहीं भेजूंगा; पर आप मेरा परिश्रम व्यर्थ न काजिए ।”

मां को विश्वास हो चुका था, कि यह बात लाहौर में

बालक के पिता तक अवश्य पहुँचेगी। वह बेचारी क्या करती ? बोली— नहीं आप तोड़ दी दीजिए ।’

वह इतना अविश्वासी समझा जा रहा है, इस पर रामेश्वर भीतर से बड़ा घुट रहा था। इच्छा हुई कि सब सच बात कह दूँ, पर ध्यान हुआ—उसे सब कौन मानेगा ? मैं कहूँगा तस्वीर नहीं लिखी, सिर्फ बालक को बहलाने की तमाशा किया गया था तो कोई यकीन न करेगा। वह समझेंगी— मैं तस्वीर रखना चाहता हूँ, इससे झूठ बोलता हूँ और बहाने बनाता हूँ। रामेश्वर को इस लाचारी पर बहुत दुःख हुआ, परन्तु उसने कहा— “अगर आप कहेंगी, तो मैं तस्वीर को तोड़ दी दूँगा, पर मैं फिर आपसे कहता हूँ, मैं दिल्ली चला जाऊँगा। फिर आपके दर्शन कभी मुझे नहीं होंगे। अगर आपकी तस्वीर मेरे पास रही भी, और मैंने टांग भी ली तो इस में आपका क्या हज दे ? देखिए बालक श्याम का चित्र मेरे पास रहने दीजिए। आपके चित्र के बारे में मैंने आपसे पहले ही पूछ लिया था। आपका यह श्याम मुझे फिर कब मिलेगा ? इसके दर्शन को आप मुझसे क्यों छीनती हैं ?

वह बोली— हाँ, श्याम का चित्र आप दूसरा ले लीजिए ।’

किन्तु दुर्भाग्य, रामेश्वर के पास खाली प्लेट तो कोई

फोटोग्राफी

हैं। होता तो यह बखेड़ा ही क्यों उठता ? कहा—“खेद कि मेरे पास खाली प्लेट ही कोई नहीं है।”

जब उसने अपना पीछा छूटते न देखा, तो हार मान कहा—“अच्छा लीजिए।”—और भरी स्लाइड को खोल डाला।

उससे कहा गया—‘देखिए, आप बदल न लीजिएगा।’
“इतना अविश्वास न करें।”—यह यह कर उसने स्लाइड का प्लेट निकाल कर चलती हुई रेल के नीचे छोड़ दिया।

जिनकी फोटो न खिंची थी, उनको शायद संदेह बना ही रहा। रामेश्वर से कहा गया—“ज़रा वह दिखलाइए तो, देखें आपने फैंका भी या नहीं।

रामेश्वर मर-सा गया। उसने उठ कर श्याम के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—“बालक के सिर पर हाथ रख कर कहता हूँ, मैं इतना असत्यवादी नहीं हूँ।” यह कह कर स्लाइड उसने ‘मां’ को दे दिया।

स्लाइड को खोल कर, उसके एक-एक हिस्से को उंगली से दबा दबा कर, और हरेक कोना टटोल कर, साथिन महाशया के यह प्रमाण दे देने पर कि अब सचमुच स्लाइड में कोई चीज़ है, रामेश्वर के प्रति उनको थोड़ा-थोड़ा विश्वास होने लगा।

रामेश्वर ने अब श्याम से खूब दोस्ती पैदा कर ली,

और दिझी पहुँचते-न-पहुँचते वह श्याम का पक्का मामा बन गया ।

उन्हें आराम से लाहौर की गाड़ी में बिठाकर, उनके पैसों को अस्वीकार करके, श्याम की अम्मा से तुमा माग कर, और सोते श्याम का अंतिम चुम्बन लेकर, दिझी स्टेशन पर जब रामेश्वर उनसे सदा के लिए बिदा लेने को था, कि उससे कहा गया—आपने क्या कुछ उठाया । इतनी कृपा और करें कि सवेरे तार दे दें ।

हाथ से एक खय्या रामेश्वर की ओर बढ़ाते हुए माने लाहौर का अपना पता लिखवा दिया ।

पता लिखते ही रामेश्वर भाग गया । 'यह लेते जाएँ' का आवाज़ उसके पीछे दौड़ी पर वह नहीं लौटा । स्टेशन के बाहर आते ही जय मा के नौकर ने उसे पकड़ कर रुपया हाथ में घमाना चाहा तब उसने एक भिड़की के साथ कहा—
आओ ! रेल पर वह अकेला है । कह देना, तार सवेरे ही दे दिया जायगा । '

(३)

तार घर खुलते ही लाहौर तार दे देने के बाद रामेश्वर ने सोचा—उसके जीवन का एक पन्ना जीवन क्रम से अनायास ही अलग होकर जो एक प्रकार की रसमय घटना से रग गया है, उसे दृष्टान्त नहीं अन्त करके मुझे अब अगला पन्ना

अरम्भ कर देना होगा । उसे इस पर दुःख हुआ । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ घटनाएं ऐसी घट जाती हैं, जिनको वह समाप्त कर देना नहीं चाहता उनका सिलासिला बराबर जारी रखना चाहता है । श्याम को सदा के लिए भुला देना होगा—भाग्य का यह विधान उसे बहुत ही कठोर मालूम हुआ । उसकी इच्छा थी कि उसके जीवन ग्रन्थ के अन्तिम पन्ने तक 'श्याम' और 'श्याम की अम्मा' का सम्बन्ध चलता रहे—टूटे नहीं; परन्तु अब उनके बीच में २५० से ज्यादा मील का व्यवधान है, और उनके जीवन की दिशाएं भिन्न होने के कारण, उस व्यवधान को क्षण क्षण बढ़ा रही है ।

उसके सामने, मानों जीवन की और संसार की शून्यता एक बड़ी-सी-निराशा के रूप में प्रत्यक्ष हो गई । कल जो दो व्यक्ति आपस इस तरह उलझे हुए थे, आज उन्हीं के बीच असम्भाव्यता का ऐसा व्यवधान फैला हुआ है, कि पुर नहीं हो सकता । और कल उन्हें एक-दूसरे को भुला कर अपना समय बिताने की और कुछ तरकीब निकाल लेनी होगी । श्याम को अपने "मामा" को भुलाकर उसके अभाव में ही अपने तई जीवित और प्रसन्न रखना होगा । इसी तरह श्याम को भूल कर रामेश्वर को भी नित्य नियमित जीवनकार्य में लग जाना होगा ।

कम्पनी-वाला मे सिर झुकाये हुए, लम्बे-लम्बे उंगो से

५६ मिनट सोचते सोचते इधर उधर घूमने के बाद रामेश्वर ने घर आ कर मा से कहा--“अम्मा, जो कहोगा सा करूंगा। आज्ञा हा तो नौकरी कर लू।”

अम्मा ने कुछ नहीं कहा, बस प्यार किया। उस प्यार का अर्थ था—बेटा, जा चाहे सी कर। मा के लिए तो तू सदा ही बेटा है।

* * * *

और कार्य के अभाव में रामेश्वर, अनवरत उद्योग से साहित्य समालोचक और राजनीतिक नेता बन बैठा।

(४)

सादौर की जिला काफ़ेस के अफ़स के आसन पर से अपना भाषण समाप्त कर चुकने के बाद, अधिवेशन की पंद्रह दिन की कारवाही समाप्त करके जय रामेश्वर अपने स्थान पर आया, तो उसके कोई १५ मिनट बाद उसके हाथ में एक चिट्ठी दी गई—

“क्या मुझे ४ घंटे पार्क में मिल सकोगे ?”

—“श्याम की अम्मा”

अलीगढ़ वाले सफ़र के दिन से ३६५ के छह गुने दिन गुजर चुके थे, पर हृदय पटल पर यह दिन जो चिह्न छोड़ गया था, उसे मिटा न सके थे। इस सम्बन्ध में और उसकी विभिन्न व्यस्तताओं ने उसे श्रुत कर दिया था, पर हम पर

के इन शब्दों ने मानो एक दम उसे फिर हरा कर दिया—
उसमें चैतन्य ला दिया ।

रामेश्वर ने सोचा—श्याम !—अहा ! वह भी तो
साथ होगा !

समय बिताते-बिताते जब चार बजने पर रामेश्वर पार्क
में पहुंचा, तो 'श्याम की अम्मा' उसी तरफ आ रही थीं ।

“तुम्हारा नाम क्या है ?”

“रामेश्वर”

“मैं अब नाम से पुकारूंगी । रामेश्वर ! क्या तुम अब
फोटो उतार सकते हो ?”

रामेश्वर ने देखा, वही श्याम की अम्मा है, पर फिर भी
कुछ और हैं । उनके इस व्यग्र आग्रह को समझ नहीं पाया,
थोड़ा डरने-सा लगा । बोला—“अभी तो केमरा नहीं है ।
अभ्यास भी नहीं है ।”

“केमेरा ला नहीं सकते ?”

“अभी ?”

“हां अभी !”

“अभी कहां से मिलेगा ?”

“क्यों ? क्यों नहीं मिलेगा ? तुम तो नेता हो, इतना
नहीं कर सकोगे ?”

“जाता हूँ—कोशिश करूंगा ।”—रामेश्वर ने बड़ा
कड़ा दिल करके यह कह दिया । रामेश्वर जब विदा होकर

कुछ ही दूर गया होगा, कि उन्होंने फिर बुला कर उससे कहा— रामेश्वर सुनो ये रुपये लो, केमेरा न मिल, तो नया खरीद लाया ।

‘नहीं नहीं’

११

“आओ—अभी आओ । जल्दी से लाना, नहीं तो तस्वीर नहीं खिचेगी—रात हो जायगी ।”

रामेश्वर कुछ कह न सका । इस अनुनय पूर्ण आवाज में ऐसा कुछ था जो अनुज्ञापनीय था । वह चल दिया । मा हत मुदि सी, पागल सी, निर्जीव सी वहीं की वहीं बैठ गई ।

घटे भर बाद जब वह केमेरा लाया, तो मा ने इसने का प्रयत्न किया । अब तक वह शायद रो रही थी ।

मा बड़ी सज धज के साथ आई थी । जब फोकस ठीक करके रामेश्वर एक दो तीन बोलने को हुआ तो मा ने अपनी सारी शक्ति लगा कर चेहरे पर स्मित हास्य की चमक ले आने का प्रयत्न किया । आह ! वह इसी कितनी रहस्यपूर्ण और कितनी दुःखपूर्ण थी ! नितना ही उसमें उल्लास प्रकट करने का प्रयास था उतना ही उसमें विषम पीड़ा का प्रत्यक्ष दर्शन था ।

फोटो खिच चुकने पर फिर वह अपना सारा वल लगाकर बड़ी मुश्किल से समाली रहीं और रामेश्वर के समीप आकर बोली— ‘एक दिन तुमने श्याम की और मेरी

तस्वीर खींची थी, याद है न ? वह मैंने तुड़वा दी थी !
क्यों, भूल तो नहीं गए ? अब एक काम करोगे ।”

रामेश्वर ने मूक दृष्टि में अपेक्षा और उत्सुक स्वीकृति
भर कर मां को देखा ।

“सुनो, मेरा चित्र तैयार करना !” मां ने भीतर की
जब से एक फोटो निकाल कर देते हुए फिर कहा—“और
यह लो श्याम का चित्र । इन दोनों का एक चित्र तैयार
करना और उसका बड़े-से-बड़ा रूप (Enlargement)
करके अपने यहां लगा लेना । यह काम तुम्हीं करना,
किसी दूसरे को न देना । जानते हो, श्याम तुम्हें प्यार
करता था ? दिल्ली में जब तुम गए थे, वह सो रहा था
जागते ही उसने पूछा—‘अम्मां, तछवील वाले मामा के
आं हैं?’ जानते हो, अब तुम्हारा श्याम कहां है ? क्या
ताकते हो ? वह मेरी गोद में छिप कर थोड़े ही बैठा है !
यहां नहीं; वह बहुत बड़ी गोद में बैठा है ! देखते हो यह
सब क्या है ? आकाश है । यह आकाश ही परमात्मा की
गोद है । श्याम उसी गोद में छिप बैठा है । दीखता भी तो
नहीं । देखो, चारों तरफ आकाश है, चारों तरफ देखो, कहीं
दिखता है क्या ? दिखे, तो मुझे भी दिखाना । मैं भी देखूंगी ।
चुपचाप ही चला गया । अगर मैं उसे देख पाऊं, तो
कहूँ—देख, तेरा तछवीलवाला मामा देख रहा है ।—
रामेश्वर, वह तुम्हें याद करता गया है ।”

रामेश्वर का गला रुध रहा था, मानों आसुओं का घूट गले में अटक गया हो । मा की बढ चल रही थी, मानों शरीर की बची खुची शक्ति एकबारगी ही निरुत्तर कर प्रत्यम हो जायगी ।

“जानते हो ।—बड़ी चौथी मार्च का दिन था, ऐसी दिन इसी वक्त बढ गया था । मैं साल भर से इसी चौथी मार्च को भटक रही थी । सोच रही थी—तुम मिलोगे, तो तस्वीर खिचवाऊंगी, तस्वीर में हम दोनों साथ रहेंगे और बढ तस्वीर तुम्हारे पास रहेगी । तुम मिल गए, तस्वीर खिच गई । दोनों को मिलाकर तुम एक तस्वीर बनाओगे न । देखो जरूर बनाना । मैं कहती हूँ जरूर बनाना । बनाना बड़ी से बड़ी बनाना और अपने कमरे में लगाना जहा चाहे भेजना । अलशरों को भेजना, मित्रों का भेजना । जहा दिखें, श्याम और श्याम की अम्मा साथ दिखें । आ जा रही हूँ, उसी के पास आ रही हूँ—सदा उसी के पास रहने जा रही हूँ ।”

मा की हालत शब्द शब्द पर खीण होती जा रही थी । मा ने कहा—‘सुनो, एक महीना हुआ मैं विधवा हो गई । यह भी चौथी ही तारीख थी । चौथी तारीख और मार्च का महीना । आज की यह चौथी मार्च का दिन मेरे जीवन का अन्तिम साध का अन्तिम दिन है । आज मुझे भी अन्तर्हित हो जाना है । मैंने जरूर साधा है

तीन घंटे होने आये हैं, अब ज़हर की अवधि का अन्तिम क्षण दूर नहीं है। मैं फिर दुनिया में न रहूंगी।”

रामेश्वर के देखते-देखते मां की देह निष्प्राण होकर गिर पड़ी।

× × × ×

लेखकी और लीडरी को गह्वे में डाल रामेश्वर फिर भूली हुई अपनी फ़ोटोग्राफ़री के काम को चेताने लगा। साल भर में उसने श्याम और श्याम की अम्मा का पूर्णकार चित्र तैयार कर पाया। जिस कमरे में वह चित्र लगा, वह उसके आत्मचिन्तन का कमरा बन गया। वहां और कोई चित्र न रह सकता था।

अब फ़ोटोग्राफ़ी को ही उसने अपना व्यवसाय और प्येय बनाया। थोड़े ही समय में वह मार्के का फ़ोटोग्राफ़र हो उठा।

सभी बढ़िया अख़बारों में श्याम और उसकी अम्मा का चित्र निकला और सभी में उसकी सराहना हुई।



श्री चतुरसेन शास्त्री

शास्त्री जी का जन्म सन् १८६१ में हुआ। आप अच्छे अनुभव-शास्त्री वैद्य हैं। कुछ समय तक आप बम्बई में काम करते रहे, फिर दिल्ली चले आये।



आप अच्छे गद्य लेखक हैं। आपका गद्य काव्यमय होता है। 'हृदय की परख' आपका पहला उपन्यास था, जिसने हिंदी संसार में खूब हलचल मचा दी थी। फिर आप कहानियाँ लिखने लगे। इनमें भी आपको अच्छी सफलता मिली है। आप जो

कुछ लिखते हैं दिल से लिखते हैं। आप अपने मन्तव्य के पक्षे हैं। जो उचित समझते हैं उसे लिख कर ही छोड़ते हैं—आलोचना की परवाह नहीं करते।

आपकी भाषा सरस और सजीव होती है।

'हृदय की परख' के अतिरिक्त आपके दो उपन्यास और हैं—

'हृदय की प्यास' और 'शमर अभिलाष'।

आपकी कहानियों के भी दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'असत' और 'रत्नक'।

जैसलमेर की राजकुमारी

राजकुमारी ने हसकर कहा— पिताजी ! दुर्ग की चिन्ता न कीजिए । जब तक उसका एक भी पाथर पाथर स मिला है उसकी मैं रक्षा करूँगी । चाहे अलाउद्दीन कितनी ही वीरता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे, आप निमग्न होकर शत्रु से लोहा लें ।”

यह जैसलमेर के राठौर दुर्गाधिपति महाराज रत्नासिंह की कन्या थी । इस समय बलिष्ठ अरबी घोड़े पर चढ़ी हुई थी, और मदानी पोशाक पहने थी । उसकी कमर में दो तलवारें लटक रही थीं । कमरबन्द में पेशकब्ज, पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था । यह चपल घोड़े की रास को चल पूचक खाँच रही थी जो एक क्षण भी स्थिर रहना नहीं चाहता था । रत्नासिंह ज़िरह-युक्त रह पड़ने एक हाथी के फीलादी होदे पर बैठे आक्रमण के लिए प्रस्थान कर रहे थे । सामने सहस्राधिका राजपूत सवार नहीं तलवारें लिये मैदान में खड़े थे । उनके घोड़े दिनदिना रहे थे, और शस्त्र मजबूत रहे थे ।

रत्नसिंह ने पुत्री के कन्धे पर हाथ धरके कहा—“बेटी, तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है । मैंने तुझे पुत्री नहीं—पुत्र की भांति पाला और शिक्षा दी है । मैं दुर्ग को तुझे सौंपकर निश्चिन्त हो रहा हूँ । देखना, सावधान रहना । शत्रु केवल वीर ही नहीं, धूर्त और छलिया भी है ।”

वालिका ने वक्रदृष्टि से पिता को देखा, और हंसकर कहा—“नदी, पिताजी आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें, किले का एक बाल भी बांका न होगा ।”

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चमकते हुए कंगूरो पर डाली, और हाथी बढ़ाया । गगनभेदी जय-निनाद से धरती आसमान कांप उठे । एक विशालकाय अजगर भाति सैन्य किले के फाटक से निकल कर पर्वत की उपत्यका में विलीन हो गई । इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक बन्द हो गया ।

(२)

टिड्डीदल की भांति शत्रु ने दुर्ग घेर रखा था । सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी । प्रतिदिन यवन दल गोली और तीरों की वर्षा करता था, पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाये खड़ा था । यवन समझ गये थे कि दुर्ग विजय करना हंसी-ठट्टा नहीं है । दुर्गरक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी

जैसलमेर की राजकुमारी

राजकुमारी ने हसकर कहा— पिता जी ! दुर्ग की चिन्ता न कीजिए । जब तक उसका एक भी पत्थर परपरा से मिला है उसकी मैं रक्षा करूंगी । चाहे अलाउद्दीन कितनी हाथारता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे, आप निर्भय होकर शत्रु से लोहा लें ।”

यह जैसलमेर के राठौर दुर्गाधिपति महागव रत्नासिंह की कथा थी इस समय बलिष्ठ अरबी घोड़े पर चढ़ी हुई थी, आर मदाना पोशाक पहने थी । उसकी कमर में दो तलवारें लटक रही थीं । कमरबन्द में पेशकज्ज पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था । यह खपल घोड़े की रास को बलपूर्वक सांच रहा था जो एक क्षण भी स्थिर रहना नहीं चाहता था । रत्नासिंह जिरह-उत्तर पहन एक दायी के फौलादी ढोदे पर घट आक्रमण के लिए प्रस्थान कर रहे थे । सामने सहस्रावधि राजपूत सवार नगा तलवारें लिये मैदान में खड़े थे । उनके घाह दिनादना रह व ओर शस्त्र मग्नमग्न रहे थे ।

रत्नसिंह ने पुत्री के कन्धे पर हाथ धरके कहा—'बेटी, तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है । मैंने तुझे पुत्री नहीं—पुत्र की भांति पाला और शिक्षा दी है । मैं दुर्ग को तुझे सौंपकर निश्चिन्त हो रहा हूँ । देखना, सावधान रहना । शत्रु केवल वीर ही नहीं, धूर्त और छलिया भी है ।’

बालिका ने वक्रदृष्टि से पिता को देखा, और हंसकर कहा—“नहीं, पिताजी आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें, किले का एक बाल भी चांका न होगा ।”

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चमकते हुए कंगूरों पर डाली, और हाथी बढ़ाया । गगनभेदी जय-निनाद से धरती-आसमान कांप उठे । एक विशालकाय अजगर भांति सैन्य किले के फाटक से निकल कर पर्वत की उपत्यका में विलीन हो गई । इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक बन्द हो गया ।

(२)

टिड्डीदल की भांति शत्रु ने दुर्ग घेर रखा था । सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी । प्रतिदिन यवन दल गोली और तीरों की वर्षा करता था; पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाये खड़ा था । यवन समझ गये थे कि दुर्ग विजय करना हंसी-ठट्टा नहीं है । दुर्गरक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी

शत्रुओं के दात खट्टे कर रही थी। उसकी अधीनता में पुराने विश्वस्त राजपूत वीर थे, जो मृत्यु और जीवन को सब समझते थे। वह अपनी सखियों समेत दुर्ग के किसी युर्ज पर चढ़ जाती, और यवन सेना का ठूठा उड़ाती हुई वहां से सनसनाते तीरों की वर्षा करती। वह कहती—‘मैं लोह, पर अथला नहीं। मुझ में मर्दों जैसा साहस और हिम्मत है। मेरी सहेलिया भी देखने भर की स्थिया हैं। मैं इन पापिष्ठ यवनों को समझनी क्या हूँ!’

उसकी बातें सुन सहेलिया ठटाकर हस देती थीं। प्रयत्न यवनदल द्वारा आक्रान्त दुर्ग में बैठना राजकुमारी के लिए एक विनोद था।

मलिक काफूर एक गुलाम था, जो यवन सेना का अधिपति था। वह दृढ़ता और शांति से राजकुमारी की चोटें सह रहा था। उसने सोचा था कि जय जिले में खाद्यपदार्थ कम हो जायगे दुर्गवश में आ जायगा। फिर भी वह समय समय पर दुर्ग पर आक्रमण कर देता था, पर तु दुर्ग की चट्टानों और भारी दीवारों को कोई क्षति नहीं पहुंचती थी। राजकुमारी बहुधा युर्ज पर से कहती—“ये धूल गर्द उड़ाकर और गोली वर्षाकर मेरे जिले को गंदा और मैला कर रहे हैं। इससे क्या लाभ होगा!”

यवनदल ने एक बार दुर्ग पर प्रयत्न आक्रमण किया। राजकुमारी चुपचाप बैठी रही। जब शत्रु आधी दूर तक

दीवारों पर चढ़ आये, तब भारी भारी पत्थर के ढोंके और गर्म तेल की वह मार पड़ी कि शत्रु-सेना छिन्नभिन्न हो गई। लोगों के मुंह झुलस गये। कितनों की चटनी बन गई। इज़ारों यवन 'तोवा-तोवा' करके प्राण लेकर भागे। जो प्राचीर तक पहुँचे, उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया।

(३)

सूर्य छिप रहा था। प्राची दिशा लाल लाल हो रही थी। राजकुमारी कुछ चिन्तित-भाव से अति दूर पर्वत की उपत्यका में सूर्य को डूबते हुए देख रही थी। उसे चार दिन से पिता का सन्देश नहीं मिला था। वह सोच रही थी कि इस समय पिता को क्या सहायता दी जा सकती है। वह एक बुर्ज के नीचे बैठ गई। धीरे धीरे अन्धकार बढ़ने लगा। उसने देखा, एक काली मूर्ति धीरे-धीरे पर्वत की तंग राह से किले की ओर अग्रसर हो रहा है। उसने समझा, पिता का सन्देशवाहक होगा। वह चुपचाप उत्सुक होकर उधर ही देखती रही। उसे आश्चर्य तब हुआ, जब उसने देखा, वह गुप्त द्वार की ओर न जाकर सिंह द्वार की ओर जा रहा है। तब अवश्य शत्रु है। राजकुमारी ने एक तीखा बाण हाथ में लिया, और छिपती हुई उस मूर्ति के साथ ही द्वार की पौर के ऊपर आ गई।

वह मूर्ति एक गठरी को पीठ से उतार कर प्राचीर पर

चढ़ने का उपाय सोच रही थी। राजकुमारी ने धनुष पर बाण चढ़ाकर ललकारकर कहा—‘वहीं खड़ा रह, और अपना अभिप्राय कह ।’

कालरूप राजकुमारी को सम्मुख देख वह व्यन्तित भय भीत स्वर में बोला—‘मुझे किले में आने दीजिए, बहुत जरूरी सन्देश है ।’

‘वह सन्देश वहीं से कह ।

‘वह अतिशय गोपनीय है ।

‘कुछ चिन्ता नहीं कह ।’

मैं किले में आकर कहूँगा ।

उससे प्रथम यह तीर तेरे कलेजे के पार हो जायगा ।

‘महाराज विपत्ति में हों मैं उनका चर हूँ ।

चिट्ठी हो तो फेंक दे ।

जयानी कहना है ।

‘जल्दी कह ।’

‘यहाँ से नहीं कह सकता ।’

तब ले ।’— राजकुमारी ने तीर छोड़ दिया । यह उसके कलेजे को पार करता हुआ निकल गया । राजकुमारी ने साटी दी । दो सैनिक आ हाथिर हुए । कुमारी की आवाज या रस्सी के सहारे उन्होंने नीचे जा मृत व्यक्ति को देखा—व्यक्त था । दूसरा व्यक्ति पोंठ पर गठरी में पड़ा था । यह देख राजकुमारी जोर से हस पड़ी । उसके पास यह मल्लिक

बुर्ज पर घूम-घूमकर प्रबन्ध और पहरे का निरीक्षण कर रही थी। पश्चिमी फाटक पर जाकर उसने देखा—द्वार-रक्षक द्वार पर न था। कुमारी ने पुकार कर कहा—“यहां पहरे पर कौन है ?”

एक वृद्ध योद्धा ने आगे बढ़कर कुमारी को मुजरा किया। उसने धीरे-धीरे कुमारी के कान में कुछ और भी कहा। वह हंसती-हंसती बोली—“ऐसा, ऐसा ? अच्छा वे तुम्हें घूस देवेंगे, चाचा जी साहेब ?”

“हा, बेटी !”—“बूढ़ा योद्धा तनिक हंस दिया।” उसने गांठ से सोने की पोटली निकालकर कहा—“यह देखो इतना सोना है।”

“अच्छी बात है।” ठहरो, हम उन्हें पागल बना देंगे। चाचाजी, तुम आधी रात को उनके इच्छानुसार द्वार खोल देना।”

वृद्ध भी हंसता और सिर हिलाता हुआ चला गया।

बारह बज गये थे। चन्द्रमा की चांदनी छिटक रही थी। कुछ आदमी दुर्ग की ओर छिपे छिपे आ रहे थे। उनका सरदार काफूर था। उसके पीछे सौ चुने हुए योद्धा थे। संकेत पाते ही द्वारपाल ने प्रतिष्ठा पूरी की। विशाल महारावदार फाटक खुल गया। सौ व्यक्ति चुपचाप दुर्ग में घुस गये, काफूर ने मन्द स्वर में कहा—“यहां तक तो

ठीक हुआ। अब हमें उस गुप्त मार्ग से दुर्ग के भीतर महलों में पहुँचा दो, जिसका तुमने वादा किया है।'

राजदूत ने कहा—'म वादे का पक्का हूँ, मगर चाँदा सोना तो दो।'

'यह लो।'

यवन सेनापति ने मुहरों की पैली हाथ में घर दी। राजपूत फाटक का ताला ध्वंश कर चुपचाप प्राचीर की छाया में चला। वह लोमड़ी की भाँति चक्कर खाकर कहीं गायब हो गया।

यवन सैनिक चक्रव्यूह में फँस गए, न पीछे का रास्ता मिलता था, न आगे का। वे वास्तव में कैद हो गए थे, और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे। मलिक काफूर दात पाँस रहा था। राजकुमारी की सहेलियाँ इतने चूड़ों को चूँदनी में फँसाकर हँस रही थीं।

(४)

यवन सैन्य ने दुर्ग पर भारी घेरा डाल रखा था। खाद्य सामग्री धीरे धीरे कम हो रही थी। घेरे के बीच से किसी का जाना अशक्य था। राजपूत मूर्खों मर रहे थे। राजकुमारी का शरीर पीला हो गया था। उसके अंग शिथिल हो गये थे पर नेत्रों का तेज्र वैसा ही था। उसे त्रैदियों के भोजन की बड़ी चिन्ता थी। क्रिले का प्रत्येक आदमी उसे

देवी की भांति पूजता था। उसने मलिक काफूर के पास जाकर कहा—‘यवन-सेनापति ! मुझे तुमसे कुछ परामर्श करना है, मैं विवश हो गई हूँ। दुर्ग में खाद्य-सामग्री बहुत कम हो गई है, और मुझे यह संकोच हो रहा है कि आपकी कैसे अतिथि-सेवा की जाय। अब कल से हम लोग एक मुट्ठी अन्न लेंगे, और आप लोगों को दो मुट्ठी उस समय तक मिलेगा, जब तक कि अन्न दुर्ग में रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।’

मलिक काफूर की आंखों में आंसू भर आये। उसने कहा—‘राजकुमारी ! मुझे यकीन है कि आप बीस किलों को द्विफ़ाजित कर सकती हैं।’

‘हां, यदि मेरे पास हों तो !’

राजकुमारी चली आई।

अठारह सप्ताह बीत गये। अलाउद्दीन के गुप्तचर ने आकर शाह को कोर्निस की।

‘क्या राजकुमारी रत्नवती किला देने को तैयार... ..’

‘नहीं खुदावन्द वहां किसी तरकीब से रसद पहुंच गई है। अब क़िला नौ महीने पड़े रहने पर भी हाथ न आयेगा। फिर शाही फ़ौज के लिए पानी अब किसी तालाब में नहीं है।’

‘और क्या खबर है ?’

‘रत्नसिंह ने मालवे तक शाही सेना को खदेड़ दिया है।’

अलाउद्दीन इत बुद्धि हो गया, और महाराज से सौ का प्रस्ताव किया ।

x

x

x

x

सुन्दर प्रभात था । राजकुमारी ने दुग प्राचार पर लप होकर देखा, शाही सेना डेर डेर उसाह कर जा रही । और महाराज रजासिंह अपने स्वमुखी झंडे को पदरान विजयी राजपूतों के साथ दुग की ओर आ रहे हैं ।

मंगल कलश सज्ये । बाजे बज रहे थे । दुग में प्रत्या वीर को पुरस्कार मिल रहा था । मलिक काफूर महाराज के यमल में बैठे थे । महाराज ने कहा—‘छा साहब ! कितने मेरी परदाजरी में आपको तकलीफ और असुविधाएं हुई होंगी इसके लिए आप माफ करेंगे । युद्ध के नियम सख्त होते हैं । फिर कितने पर भारी मुसीबत आई थी । लड़क अकेला थी । जा यन सजा किया ।’

काफूर ने कहा— महाराज ! राजकुमारी तो पूजने लायक है, ये इंसान नहीं करिश्ता दें । मैं ताजिन्दगा इनके मेहरबानी नही मूल सकता ।

महाराज ने एक पड़मूल्य सरपेच उन्हें दिया, और पान का बीधा देकर बिदा किया ।

दुग में धौसा बन रहा था ।

श्री श्रीराम शर्मा

शर्मा जी ने गल्प लिखने के क्षेत्र में थोड़ी देर से ही प्रवेश किया है। पर इतने थोड़े समय में ही आपकी अच्छी ख्याति हो गई है। आपके गल्प प्रायः 'विशाल-भारत' में निकलते रहते हैं। आपके गल्पों का प्रधान क्षेत्र ग्राम्य जीवन है, साथ ही शिकारी गल्प लिखने में भी आपकी लेखनी खूब चमकती है।

आपकी वर्णन शैली का अपना ही ढंग है। पढ़ते पढ़ते मन नहीं ऊबता। आपकी भाषा सरल, मुहावरेदार और सरस रहती है।

आपकी कहानियों का संग्रह 'शिकार' नाम से छपा है। उसका हिन्दी साहित्यिकों ने अच्छा आदर किया है।

स्मृति

सायंकाल को ज़र मे अफ़ेला जंगल से लौटता हूँ तो द्रुत द्रुप सूर्य की किरणें पृथ्वी की ओर संकेत करता हुई माना कहती है—‘शैशवकाल में हमारी दृष्टि अपने वर्तमान स्थान की ओर थी। इधर आने का हम उतावली हो रही थी, पर मध्याह्न के मद् के उपरान्त अनुमय हुआ—और अब तो हम थिलम्व रही हैं—कि रात्र्यकाल के माधुय की पुनः प्राप्ति असम्भव है ! प रायफलधारी ! शीघ्र ही आयु ढलने पर तू भी हमारी भाति रात्र्यकाल के लिए विदल होकर आसू बहायगा । अच्छा हो, तू अभी से चेते ।’

मैंने इस चेतावनी को बहुत कुछ साधक पाया है । उससे चेदात का पाठ पढ़ा है । प्रातःकाल के समय मनुष्य की छाया—दैवी सिगनल—पश्चिम—अन्त-की ओर होती है । मानो यह कहती है कि अवसान पर दृष्टि डाल पर रात्र्यकाल में विरले ही उधर देपते हैं । कोई देखे भी कैसे और क्यों देखे ! जीवन यात्रा के मार्ग में चारों ओर

हृदय की अन्तरतम लहर और मन की उच्चतम उड़ान तक सज्ज वाग ही दिखाई पड़ते हैं । वरसात में उगे पौदे को अनेवाले शीत और ग्रीष्म का कुछ पता नहीं होता । उद्गम के समीप के सरिता जल का क्या मालूम कि आगे चलकर संसार की गिलाज़त उसमें आकर मिलेगी, और स्वच्छता तथा गंदगी में कितना संघर्ष होगा ! पिल्लो को यह समझ थोड़े ही होती है कि बाल्यावस्था के समाप्त होते ही उनकी स्नेहमयी मां रोटी के एक टुकड़े के लिए उन्हें काटने दौड़ेगी, न मृगशावक को इस बात का ज्ञान होता है कि उसके तनिक पीछे रह जाने पर रंभानेवाली उसकी मां, कुछ बड़े होने पर, उसकी पासवाली घास तक न चरने देगी । और न इस मनुष्य जाति को बाल्य काल में इस बात का ज्ञान है कि आगे चलकर उसका जीवन इतना कष्टपूर्ण और दुःखमय होगा । पर धीरे-धीरे—ज्यो-ज्यो जीवन-यात्रा बढ़ती जाती है, बाल्य-काल का आशारूपी ओसिस (Oasis) मरुभूमि में परिवर्तित होता है । उसका आभास तो युवावस्था का उत्तुंग चोटी से होने लगता है । पर्वत शिखर से जैसे घाटी की दोनों ओर दिखाई पड़ती है—जैसे तराजू की मूँठ से दोनों पलट्टों के हलके-भारी होने को बताया जा सकता है—उसी प्रकार युवावस्था में अतीत का सिंहावलोकन और भविष्य की प्रगति का अनुमान किया जा सकता है । कोई न करे ।

गदला करने का अभियोग लगाया था । डरते डरते घर में घुसा । आशंका थी कि बेर खाने के अपराध में ही तो पेशी न हो, पर आंगन में भाई साहब को पत्र लिखते पाया । अग्र पिढे का भ्रम दूर हुआ । हमे देखकर भाई साहब ने कहा—
“इन पत्रों को ले जाकर मक्खनपुर डाकखाने में डाल आओ । तेजी से जाना, जिससे शाम की डाक में ही ये चिट्ठियां निकल जायं । ये बड़ी ज़रूरी है ।”

जाड़े के दिन तो थे ही, तिस पर हवा के प्रकोप से कंपकंपी लग रही थी । हवा मज्जा तक को ठिठुरा रही थी, इसलिए हमने कानों को धोती से बांधा । लू और शीत से बचने के लिए कान बांधे जाते हैं । दुर्ग की रक्षा के लिए चहारदीवारी की रक्षा की जाती है, ताकि उसमें शत्रु का प्रवेश न हो सके । मां ने भुंजाने के लिए थोड़े चने एक धोती में बांध दिये । हम दोनों भाई अपना-अपना डंडा लेकर घर से निकल पड़े । उस समय उस बबूल के डण्डे से जितना मोह था, उतना इस उमर में रायफल से नहीं । मेरा डंडा तो अनेक सांपों के लिए नारायण वाहन हो चुका था । मक्खनपुर स्कूल और गांव के बीच पड़ने वाले आम के पेड़ों से प्रतिवर्ष उससे आम भूरे जाते थे । इस कारण वह मूक डंडा सजीव-सा प्रतीत होता था । प्रसन्नवदन हम दोनों मक्खनपुर की ओर तेज़ी से बढ़ने लगे । चिट्ठियों को मैंने

बोली की प्रतिध्वनि सुनने की इच्छा थी, पर 'कुपें' में 'ज्यो' ही ढेला गिरा, त्यों ही एक फुसकार सुनाई पड़ी। कुपें के किनारे खड़े हुए हम सब बालक पहले तो उस फुसकार से ऐसे चकित हो गये, मानो किलोलें करता हुआ मृगसमूह अति समीप के कुत्ते की भोक से चकित हो जाता है। उसके उपरान्त सभी ने उभक उभक कर एक-एक ढेला फेंका, और कुपें से आने वाली क्रोधपूर्ण फुसकार पर क्रदकदे लगाये। सांप की फुसकार हमारे लिए अमोद-प्रमोद की सामग्री थी, और ऐसी सामग्री थी जिससे हम बहुत दिनों तक आनन्द ले सकते थे। उस अवस्था में यह खयाल थोड़े ही था कि बेचारे साप के भी जान होती है और ढेला लगने से उसे भी कष्ट होता है। हमें तो उसकी फुसकार से मतलब था। यदि वह विरोध-स्वरूप फुसकार न मारता, तो हमारी चाले-क्रीड़ा का भी अन्त हो जाता। हमारा तमाशा था और उसे जान के लाले पड़े थे। गांव से मक्खनपुर जाते और मक्खनपुर से लौटते समय प्रायः प्रतिदिन ही कुपें में ढेले डाले जाते थे। मैं तो आगे भाग कर आ जाता था और टोपी को एक हाथ से पकड़ दूसरे हाथ से ढेला फेंकता था। यह रोज़ाना की आदत हो गई थी। सांप ने फुसकार करवा लेना, मैं उस समय बड़ा काम-समझता

था। कुए की कैद में इतने दिनों पड़े रहने से साप भी कुछ अपने उस जीवन से अभ्यस्त हो गया था, और बिना देला लगे वह बाद में कुसकार भी नहीं मारता था। देला कुए में गिरा कि फन फैलाकर वह पछा हो जाता और देलों की उपेक्षा किया करता। तनिक सा देला लगते ही वह कुसकार से अपना क्रोध प्रकट करता और कुए में इधर उधर घूमा करता, पर उस कारागार से मुक्ति मिलना कठिन था। उस कारागार में वह पढ़ा रहता और अपनी उस मूर्खता पर जिसके कारण वह कुए में गिरा था पश्चतापा करता—यदि सापों में पढ़ताने की शक्ति होती है तो। अपमान को सहना अथवा अपमान का उत्तर न देना या मन मसोस कर रह जाना मनुष्य-योनी को छोड़ और किसी योनि का धर्म नहीं है। मय होने पर कीड़े मकोड़े और हिरन तक भाग जाते हैं, और मागकर जान बचना ही उनकी धर्म है। घायल होने पर या पकड़े जाने पर आनाही के लिए मरमक प्रयत्न करेंगे। दात साँग डक और पैरों का उपयोग करेंगे। अकल के पुतले की भाँति पिट कुटकर अपना अपमानित होकर महीनों बाद दफ़ा १०६ में अदालत की ओर भागने की उनकी धर्म नहीं। उनके अदालत हैं ही नहीं। प्रकृति शासन है, जिसमें विधि नियम नहीं है। फिर वह साप चोट खाते पर प्रतिज्ञास्वरूप कुसकार क्यों न मारता—आजाही के लिए क्यों न तड़पता।

जैसे ही हम दोनों उस कुएं की ओर से निकले, तो कुएं में ढेला फेंककर फुंकार सुनने की प्रवृत्ति जाग्रत हो गई। मैं कुएं की ओर बढ़ा। छोटा भाई मेरे पीछे ऐसे हो लिया, जैसे बड़े मृगशावक के पीछे छोटा मृगशावक हो लेता है। कुएं के किनारे से एक ढेला उठाया और उभरकर एक हाथ से टोपी उतारते हुए सांप पर ढेला गिरा दिया, पर मुझ पर तो बिजली सी गिर पड़ी। सांप ने फुंकार मारी या नहीं—ढेला उसके लगा या नहीं, यह बात अब तक स्मरण नहीं, टोपी के हाथ में लेते ही तीनों चिट्ठियां चकर काटती हुई कुएं में गिर रही थीं। अकस्मात् जैसे घास चरते हुए हिरन की आत्मा गोली से हत होने पर निकल जाती है और वह तड़पता रह जाता है, उसी भांति वे चिट्ठियां क्या टोपी से निकल गई, मेरी तो जान निकल गई। उनके गिरते ही मैंने उनके पकड़ने के लिए एक झपट्टा भी मारा, ठीक वैसे, जैसे घायल शेर शिकारी को पेड़ पर चढ़ते देख उस पर हमला करता है। पर वे तो पहुंच से बाहर हो चुकी थीं। उनके पकड़ने की घबराहट में मैं स्वयं झटके के कारण कुएं में गिर गया होता।

x

x

x

x

कुएं की पार पर बैठे हम रो रहे थे—छोटा भाई बाँ
मारकर और मैं चुपचाप आँखें डबडवाकर। पतीली

था। कहीं भाग जाने को तबीयत करती थी, पर पिटने का भय और जिम्मेदारी की दुधारी तलवार कलेजे पर फिर रही थी।

x

x

x

x

असंप्रज्ञात समाधि से माया के बन्धन से टूट जाते हैं। दृढ़ संकल्प से दुविधा की वेड़ियां कट जाती हैं। मेरी दुविधा भी दूर हो गई। कुएं में घुसकर चिट्ठियों को निकालने का निश्चय किया। कितना भयंकर निर्णय था। पर जो मरने को तैयार हो, उसे क्या? मूर्खता अथवा बुद्धिमत्ता से किसी काम के करने के लिए कोई मौत का मार्ग ही स्वीकार कर ले, और वह भी जान बूझकर, तो फिर वह अकेला संसार से भिड़ने को तैयार हो जाता है। और फल? उसे फल की क्या चिन्ता! फल तो किसी दूसरी शक्ति पर ही निर्भर है। शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त के अनेक कामों का दुखद फल होता है। शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त बुरी नहीं हैं, पर उनमें किया हुआ फल अपने वश की बात नहीं। मुझे अपने निर्णयकाल की घड़ी और मुहूर्त का पता नहीं, पर मेरा निर्णय मेरी अब की दृष्टि से अति भयंकर था। उस समय चिट्ठियां लिखने के लिये मैं विषधर से भिड़ने को तैयार हो गया। पांसा फेंक दिया था। मौत का आलिंगन हो अथवा सांप से बचकर दूसरा जन्म—इसकी कोई चिन्ता

न थी। पर विश्वास यह था कि डंडे से साप को पहले मार दूंगा, तब फिर चिट्ठिया उड़ा लूंगा। वस इसी दृढ़ विश्वास के बूते पर मैंने कुए में घुसने की ठानी।

छोटा भाई रोता था, और उसके रोने का तात्पर्य था कि मेरी मौत मुझे नीचे घुला रही है, यद्यपि वह शरीरों से न कहता था। वास्तव में मौत खनीज और नग्न रूप से कुए में बैठी थी, पर उस नग्न मौत से मुठभेड़ के लिए मुझे भी नग्न होना पड़ा। छोटा भाई भी नगा हुआ। एक घोती मेरी, एक छोटे भाई की, एक चनेगाली, दो कानों से बंधी हुई घोतिया—पाच घोतिया और कुछ रस्सी मिलाकर कुए की गहराई के लिए काफी हुई। हम लोगों ने घोतिया एक दूसरी से बांधी और खूब धींच धींच कर आजमा ली कि गांठें कहीं हैं या नहीं। अपनी ओर से कोई धोखे का काम न रखा। घोती के एक सिरे पर डंडा बांधा और उसे कुए में डाल दिया। दूसरे सिरे को डेंग (यह लकड़ी जिस पर चरसपुर टिकता है) के चारों ओर एक चक्कर देकर और एक गांठ लगाकर छोटे भाई को दे दिया। छोटा भाई केवल आठ पय का था, इसी लिए घोती को डेंग से कड़ी करके बांध दिया और तब उसे खूब मज़बूती से पकड़ने के लिए कहा। मैं कुए में के सहारे घुसने लगा। छोटा भाई फिर रोने लगा। मैं आश्वासन दिलाया कि मैं कुए के नीचे पहुंचते

ही सांप को मार दूंगा, और मेरा विश्वास भी ऐसा ही था। कारण यह था कि उससे पहले मैंने अनेक सांप मारे थे। दो एक को तो जूते या कंकड़-पत्थर से मारा था। मैं यह बात उस समय ही जानता था कि सांप को अपने दाईं ओर से होकर मारना चाहिए, और उसको मारने के लिये सबसे अच्छी लकड़ी, अरहर की लग—सांट—है। यदि वह सांप के एक भी कहीं—पूंछ को छोड़ कर—लग जाय, तो वह वहीं—का-वहीं रह जाता है। उसकी हड्डियों की बनावट ऐसी होती है कि वेंट या सांट के लगते ही उसकी हड्डी बेंकार सी हो जाती है, और वह वहीं बिलबिलाने लगता है, तब तक दूसरी चोट को अवसर मिलता है। भागते काले सांपों को मैंने इसी प्रकार कई बार मारा था। दो एक बार काटने से भी बचा था, इसलिए कुएं में घुसते समय मुझे सांप का तजिक भी भय न था। उसको मारना मैं बाएं हाथ का खेल समझता था। ऐसा न होता, तो शायद मैं कुएं में घुसने का साहस न करता। हृदय का तूफान तो पहले ही शान्त हो गया था। जो अश्रुधार बहाई थी, वह अपनी असमर्थता पर कि कुएं से चिट्ठिया कैसे निकाली जायं, पर जब घोती के साधन की सूझ हुई, तब तो सन्तोष और प्रसन्नता की सीमा में पहुंच गया। इस समय भी मेरा कद मझौला है, उस समय तो निरा बालक था। घोती के सहारे उतरते समय जोर भुजाओं पर ही अधिक था,

क्योंकि पैरों का पकड़ में घोंठी आती न थी। जैसे जैसे नाच उतरता जाता था हृदय की धड़कन बढ़ती आती थी कि कहीं साप न मरा ता, चिट्ठियाँ कैसे उठाऊगा। कुप के घरातल से जब चार-पांच गज़ रद्दा-हुगा, तब ध्यान से नाच का दया अकल चकरा गर। साप फन फैलाये घरातल स एक हाथ ऊपर उठा हुआ लहरा रहा था। पूछ और पूछ क समाप का भाग पूर्ण पर था, आधा अमभाग ऊपर उठा हुआ था मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। नीचे जो उठा बघा था मेरे उतरने की गति से इधर-उधर दिसता था। उसी क कारण शायद मुझे उतरते देख साप घातक चोट क आसन पर बैठा था। सपेरा जैसे चीन बजाकर काल साप को खिन्नाता है और साप क्रोधित हो फन फला कर खड़ा होता तथा कुकार मारकर चोट करता है, ठाक उमी प्रकार साप तैयार था। उसका प्रतिद्वंद्वी—
 मे—उसस कुछ हाथ ऊपर घाती पकड़े लटक रहा था। घाना देंग स वर्धा हाने के कारण कुप के बीचोंबीच लटक रहा थी और मुझ कुप के घरातल की परिधि के बाबाबाब हा उतरना था। इसके माने ये साप से डेढ़ दो फाट—गच नहीं—की दूरी पर पैर रखना, और इतनी दूरा पर साप पर रहत हा चोट करता। स्मरण रहे, कये का यास बहुत कम होता है। नीचे तो षट् डेढ़

१ ज स आधक दाना ही नहीं। ऐसी दया में कुप में मैं

सांप से अधिक-से अधिक चार फुट की दूरी पर रह सकता था, वह भी उस दशा में, जब सांप मुझ से दूर रहने का प्रयत्न करता; पर उतरना तो था कुएं के बीच में, क्योंकि मेरा साधन बीचोबीच लटक रहा था । ऊपर से लटक कर तो सांप नहीं मारा जा सकता था । उतरना तो था ही । थकावट से ऊपर चढ़ भी नहीं सकता था । अब तक अपने प्रतिद्वन्द्वी को पीठ दिखाने का निश्चय नहीं किया था । यदि ऐसा करता भी, तो कुएं के घरातल पर उतरे बिना क्या मैं ऊपर चढ़ सकता था ? धीरे धीरे उतरने लगा । एक एक इंच ज्योज्यों मैं नीचे उतरता जाता था, त्यों-त्यों मेरी एकाग्रचित्तता बढ़ती जाती थी । एकाग्रचित्त में—चित्तवृत्ति-निरोध में—जो विचार-रत्न सूझते हैं, वे व्यग्रचित्त में नहीं । टूटे हीरे का वह मूल्य नहीं होता, जो सम्पूर्ण हीरे का । मुझे भी एक सूझ सूझी । दोनों हाथों से धोती पकड़े हुए मैंने अपने पैर कुएं की बगल से लगा दिये । दीवार से पैर लगाते ही कुछ मिट्टी नीचे गिरी, और सांप ने फूं करके उस पर मुंह मारा । मेरे पैर भी दीवार से हट गये, और मेरी टांगें कमर से समकोण बनाती हुई लटकती रहीं, पर इससे सांप से दूरी और कुएं की परिधि पर उतरने का ढंग मालूम हो गया । तनिक झूलकर मैंने अपने पैर कुएं की बगल से सटाये, और कुछ धके के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वी के

लिए स्थान ही न था । लाठी या डंडा चलाने के लिए काफ़ी स्थान चाहिए, जिसमें वे घुमाये जा सकें । सांप को डंडे से दबाया जा सकता था, पर ऐसा करना मानो तोप के मुहरे पर खड़ा होना था । यदि फन या उसके समीप का भाग न दबा, तो फिर वह पलट कर ज़रूर काटता, और फन के पास दवाने की कोई सम्भावना भी होती, तो फिर उसके पास पड़ी हुई दो चिट्ठियों को कैसे उठाता । दो चिट्ठियां उसके पास उससे सटी हुई पड़ी थीं और एक मेरी ओर थी । मैं तो चिट्ठियां लेने ही उतरा था । हम दोनों अपने पैतरो पर डटे थे । उस आसन पर खड़े-खड़े मुझे चार-पांच मिनट हो गए । दोनों ओर से मोरचे पड़े हुए थे, पर मेरा मोरचा कमज़ोर था । कहीं सांप मुझ पर झपट पड़ता तो मैं—यदि बहुत करता तो—उसे पकड़ कर, कुचल कर मार देता, पर वह तो अचूक तरल विष मेरे शरीर में पहुंचा ही देता और अपने साथ-साथ मुझे भी ले जाता । अब तक सांप ने चार न किया था, इसलिए मैंने भी उसे डंडे से दवाने का सयाल छोड़ दिया । ऐसा करना भी उचित न था । अब प्रश्न था कि चिट्ठियां कैसे उठाई जायं । वस, एक सूरत थी । डंडे से सांप की ओर से चिट्ठियों को सरकाया जाय । यदि सांप दूट पड़ा, तो कोई चारा न था । फुर्ता था, और कोई कपड़ा भी न था, जिसे सांप के मुंह करके उसके फन को पकड़ लूं । मारना या

छेड़छानी न करना—ये दो मार्ग थे। सो पहला मेरी शक्ति के गहर था। बाध्य होकर दूसरे मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा।

डंडे को लेकर ज्यों ही मैंने साप की दाईं ओर पड़ी दूर चिट्ठी की ओर उसे बढ़ाया कि साप का पन पीछे का हुआ। धीरे धीरे डंडा चिट्ठी की ओर बढ़ा और ज्यों ही चिट्ठी के पास पहुँचा कि पृष्ठों के साथ काली विजली तड़पी और डंडे पर गिरी। हृदय में कंप हुआ, और दायाँ न आग माना। डंडा छूट पड़ा। मैं तो न मालूम कितना ऊपर उछल गया। जानबूझकर नहीं, यों ही निद्रक कर। उछल कर जो खड़ा हुआ, तो देखा डंडे के सिर पर तीन चार स्थानों पर पीव सा कुछ लगा हुआ है। वह जिन वा। साप ने मानों अपनी शक्ति का सर्टॉफ़िकेट सामन रख दिया था, पर मैं तो उसकी योग्यता का पहेल ही स कायल था। उसी सर्टॉफ़िकेट की ज़रूरत न थी। साप न लगातार पृष्ठ करके डंडे पर तीन चार चोटें का। वह डंडा पहला बार ही इस भाँति अपमानित हुआ था या वह साप का उपद्रास कर रहा था।

उपर उपर पृष्ठ और मेरे उछलने और फिर वही धमाक़ा सड़क हान से डोटे माँ ने समझा कि मेरा काव्य मान हो गया और गन्तु का नाता पृष्ठ और धमाके से टूट गया। उसने खयाल किया कि साप के काटने से

मैं गिर गया। मेरे कष्ट और विरह के खयाल से उसके कोमल हृदय को धक्का लगा। भ्रातृस्नेह के ताने बाने को चोट लगी। उसकी चीख निकल गई। सिनेमा में कदना-पूर्ण दृश्य देखकर मैं इस आयु में भी रो पड़ता हूँ। विरह-वर्णन से मेरी आंखें अब भी सजल हो जाती हैं। शफ़ाखाने में दूसरे के—गैर के—चीरा लगते देख बहुतों को बेहोशी आ जाती है।

फिर छोटे भाई की आशंका बेजा न थी, पर उस फूँ और धमाके से मेरा साहस कुछ बढ़ गया। दुबारा फिर उसी प्रकार लिफ़ाफ़े को उठाने की चेष्टा की। अब की बार सांप ने वार भी किया और डंडे से चिपट भी गया। डंडा हाथ से छुटा तो नहीं, पर भिन्नक—सहम अथवा आतंक से अपनी ओर को खिंच गया और गुंजलक (Coils) मारता हुआ सांप का पिछला भाग मेरे हाथों से छू गया उफ़! कितना ठंडा था। डंडे को मैंने एक ओर पटक दिया। यदि कहीं उसका दूसरा वार पहले होता, तो उछल कर मैं सांप पर गिरता और न बचता, लेकिन जब जीवन होता है तब हजारों ढंग बचने के निकल आते हैं। वह दैवी कृपा थी। डंडे के मेरी ओर खिंच आने से मेरे और सांप के आसन बदल गए। मैंने तुरन्त ही लिफ़ाफ़े और पोस्ट-कार्ड चुन लिए। चिट्ठियों को धोती के छोर में बांध दिया, और छोटे-भाई ने उन्हें ऊपर सींच लिया।

× × × ×

झंड़े को साप के पास से उठाने में भी बड़ी कठिनाई पड़ी। साप उससे दुरुलकर उस पर घटना देखकर बैठा था। जीत तो मेरी हो चुकी थी, पर अपना निशान गथा चुका था। आगे हाथ बढ़ाता, तो साप हाथ पर घार करता, इसलिए हुप की बगल से एक मुट्ठी मिट्टी लेकर मैंने उसकी दाईं ओर फेंकी कि वह उस पर झपटा, और मैंने दूसरे हाथ से उसकी बाईं ओर से डहा खींच लिया पर पात-की पात में उसने दूसरी ओर भी घार किया। यदि बीच में उछान होता, तो पैर में उसके दात (Fangs) गड़ गये होते।

+ + + +

धियाद और जीत का मोर भी बड़ा विकट होता है। ऊपर चढ़ना कोई कठिन काम न था। केवल हाथों के सहारे पैरों के बिना वहाँ लगाए हुप ३६ फुट ऊपर चढ़ना 'मुझसे अब नहीं हो सकता। १५२० फुट बिना पैरों के, सहारे केवल हाथों के बल चढ़ने की हिम्मत रखता हूँ। कम ही—अधिक नहीं, उस पर ग्यारह वर्ष की आयु में मैं ३६ फुट चढ़ा। यादें भर गई थीं। छाती फूल गई थी। घोंकनी चल रही थी, पर एक एक ईंच सक् सरक कर अपनी मुत्राओं के बल मैं ऊपर चढ़ आया। यदि हाथ छुट जाते, तो क्या होगा, इसका अनुमान करना कठिन है। ऊपर आकर,

बेहाल होकर थोड़ी देर पड़ा रहा । देह को भार-भूर कर धोती और कुर्ता पहना । फिर किशनपुर के लड़के को, जिसने ऊपर चढ़ने की मेरी चेष्टा को देखा था, ताकीद करके कि वह कुएं वाली घटना किसी से न कहे, हम लोग आगे बढ़े ।

× × × ×

सन् १९१५ में मैट्रीक्यूलेशन पास करने के उपरान्त यह घटना मैंने मां को सुनाई । सजल नेत्रों से मां ने मुझे अपनी गोद में ऐसे बैठा लिया, जैसे चिड़िया अपने बच्चों को डैने के नीचे छिपा लेती है ।

× × × ×

कितने अच्छे थे वे दिन ! उस समय रायफल न थी, डंडा था । और डंडे का शिकार—कम-से-कम उस सांप का शिकार—रायफल के शिकार से कम रोचक और भयानक न था । बालकपन की वह घटना मैं कभी भूल नहीं सकता । उस घटना के साक्षी परमात्मा को छोड़ कर हम तीन हैं; छोटे रुग्ण भाई पं० जगन्नाथ शर्मा, पाती और स्वयं मैं । शायद पास के वृत्त भी हैं, जो यों ही खड़े हैं । सांप उसी कुएं में दबा पड़ा है । कुएं के स्थान का चिह्न अब भी है, पर वे दिन नहीं हैं, न वह उमंग ! अब तो बस—

“मसरत हुई, हंस लिए दो घड़ी,
मुसीबत पड़ी, रोके चुप हो रहे ।”



श्री जयशङ्कर 'प्रसाद'

जाति के आप वैश्य हैं और एक प्रतिष्ठित कुल के दीपक हैं । आपका जन्म सन् १८६० में हुआ था । आपके पिता ने आपको घर पर ही अच्छी शिक्षा देने का प्रबन्ध किया था ।

पहले पहल आप कविता-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए । तत्पश्चात् कहानी और नाटक लिखना शुरू किया । नाटकरचना में आपको इतनी सफलता नहीं मिली । कारण यह है कि रंगमञ्च पर अभिनेय नाटकों की भाषा यही सरल और साधारण जन-ग्राह्य होनी चाहिये, यह बात आपकी भाषा में नहीं ।

आपकी कहानियों के भाव बहुत हृदयाकर्षक होते हैं । इस समय तक आपकी कहानियों के तीन संग्रह और साधे दूरजन के लगभग नाटक प्रकाशित हो चुके हैं । कहानी संग्रहों में आंधी, आकाशदीप और प्रतिध्वनि और नाटकों में जनमेजय का नागयज्ञ, अज्ञातशत्रु, स्कन्द-गुप्त, एक घूंट, चन्द्रगुप्त विशेष उल्लेखनीय हैं । आपका ककाल (न्यास) भी अच्छा विख्यात है । आपके 'तितली' उपन्यास जनता ने अच्छा आदर किया है ।

ममता ।

(१)

रोहतास दुग के एक प्रकोष्ठ में घेड़ी दूर युषती ममता शोण के तीक्ष्ण नम्रार प्रवाद को देख रही है । ममता विधवा थी । उसका जीवन शोण के समान ही उमड़ रहा था । मन में घटना, मन्तक में आधी, आँखों में पानी की बरसात के लिए वह सुख के कण्टक शयन में विकल थी । वह रोहतास दुगपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिये कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु वह विधवा थी —दिम्नू विधवा संसार में सबसे सुन्दर निराश्रय प्राणी है तब उसकी दिहम्यना का कदा अन्त था ।

चूड़ामणि ने सुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया । शोण के प्रवाद में उसके कल नाद में अपना जीवन मिलाने में वह प्रसुप्त थी । पिता का आना न जान सही । चूड़ामणि स्थापित हो उठे । खेद पालिता पुत्री के लिए क्या करे, वह स्थिर न कर सकते थे । लौट कर बाहर चले गए । ऐसा

प्रायः होता, पर आज मन्त्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी।
पैर साँघे न पड़ते थे।

एक पहर रात बीत जाने पर फिर वे ममता के पास
आए। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों
में कुछ लिए हुए थे, कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन
ममता ने घूम कर देखा। मन्त्री ने सब थालों के रखने का
संकेत किया। अनुचर थाल रख कर चले गए।

ममता ने पूछा—यह क्या है पिता जी ?

‘तेरे लिए वेटी ! उपहार है’ कहकर चूड़ामणि ने उसका
आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली
सन्ध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी—

‘इतना स्वर्ण ! यह कहाँ से आया ?

‘चुप रहो ममता ! यह तुम्हारे लिए है।’

‘तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया ?
पिता जी ! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिए। पिता
जी ! हम लोग ब्राह्मण हैं। इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?’

‘इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त वंश का अन्त समीप है,
वेटी ! किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर
सकता है। उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिए वेटी !’

‘हे भगवान ! तब के लिए ! विपद के लिए !
आयोजन ! परम पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस
पिताजी ! क्या भीख न मिलेगी ! क्या कोई हिन्दू भूपट

न बचा रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके ! यह असम्भव है । फेर दीजिए पिता जी ! मैं काप रही हूँ— इसकी चमक आँखों को आघात बना रही है !'

मूर्ख है — कहकर चूड़ामणि चले गए ।

दूसरे दिन जब डालियों का ताता भीतर आ रहा था ब्राह्मण मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक धक करने लगा । यह अपन का राक न सका । उसने जाकर राक्षिताम्ब दुर्ग के तारण पर डालियों का आवरण तुलाना चाहा । पठानों ने कहा—

‘यह महिलाओं का अपमान करना है ।’

बात बढ़ गई । तलवारें खिंचीं, ब्राह्मण घड़ी मारा गया और रानी रानी काप सब छली शेरशाह के हाथ पड़े । नक्कल गई ममता । डाली में भर हुए पठान सैनिक दुर्ग भर में फल गए पर ममता न मिली ।

(२)

काशा के उत्तर धर्मचक्र विहार, मौय और गुप्त सम्राटों का कीर्ति का खड्ग था । भग्न-चूड़ा एवं गुलमों से ढके हुए प्राचार ईंटों के ढग में खरों हूँ भारतीय शिल्प की विभूति प्राप्ति रत्न का चाद्रक में अपन आपको शीतल कर रही थी ।

वह पञ्चवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश प्रदण करने के लिय पदल मिल था उसा स्तूप के भग्नावेश की मलिन छाया

मे एक भौंपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी—
‘अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते .’

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बंद करना चाहा। परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—‘माता ! मुझे आश्रय चाहिए।’

‘तुम कौन हो ?’ स्त्री ने पूछा।

‘मैं मुगल हूँ। चौसा युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।’

‘क्या शेरशाह से ?’ स्त्री ने अपने आँठ काट लिए।

‘हां माता !’

‘परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो ? वही भीषण रक्त की प्यास ! वही निष्ठुर प्रतिविम्ब, तुम्हारे मुख पर भी है ! सैनिक ! मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ कहीं दूसरा आश्रय खोज लो !’

“गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ इतना !”—कहते कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई ! उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—‘सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी !’ घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—‘माता ! तो फिर मैं चला जाऊँ ।’

स्त्री विचार कर रही थी— मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म—आतिथिदेव की उपासना—का पालन करना चाहिए । पर तु यहाँ नहीं नहीं सब विधर्मों दया के पात्र नहीं । पर तु यह दया तो नहीं कर्तव्य करना है । तब !’

मुगल अपनी तलवार टेककर उठ खड़ा हुआ । ममता ने कहा— क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो, ठहरो ।’

छल ! नहीं तब नहीं माता ! जाता हूँ तैमूर का घर धर स्त्री से छल करेगा ? जाता हूँ । माय्य का खेल है ।’

ममता ने मन में कहा—यहाँ कौन दुग है ! यही झोपड़ी ने जा चाहे लेने मुझ को अपना कर्तव्य पालन करना पड़ेगा ।— यह गहर चला आइ और मुगल से बोली—‘जाओ भीतर, थक हुए भयभीत पथिक । तुम चाहे कोर दो, मैं तुम्हें आश्रय दूँगा । मैं ब्राह्मण कुमारी हूँ सब अपना धर्म छोड़ दें तो मैं भी क्यों छाड़ूँ ?’ मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में यह महिमामय मुखमण्डल देखा उसने मन ही मन नमस्कार किया । ममता पास की दूटा हुई दीवारों में चली गई । भीतर थक पथिक ने झोपड़ी में विधाम किया ।

प्रभात में खगडहर का सन्धि से ममता ने देखा, सैकड़ों अम्बाराहा उम पात में दूध रह हैं । वह अपनी मूर्खता पर अपने का कामन लगा ।

अब उस भोपड़ी से निकल कर उस पथिक ने कहा—
'मिरज़ा ! मैं यहां हूं ।'

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रान्त
गूंज उठा । ममता अधिक भयभीत हुई । पथिक ने कहा—
'वह स्त्री कहां है ? उसे खोज निकालो ।' ममता छिपने के
लिए अधिक सचेष्ट हुई । वह मृग दाव में चली गई । दिन भर
उसमें से न निकली । संध्या में जब उन लोगों के जाने का
उपक्रम हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते
हुए कह रहा है—'मिरज़ा ! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका ।
उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में वहां विश्राम
पाया था । यह स्थान भूलना मत ।' इसके बाद वे चले गए ।

चौसा के मुगल-पठान युद्ध को बहुत दिन बीत गए ।
ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है । वह अपनी भोपड़ी में
एक दिन पड़ी थी । शीतकाल का प्रभात था । उसका जीर्ण
कंकाल खांसी से गूंज रहा था । ममता की सेवा के लिए गाव
की दो तीन स्त्रियां उसे घेरकर बैठी थीं, क्योंकि वह आजी-
वन सब के सुख दुःख की समभागिनी रही ।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल
पिलाया । सहसा एक अश्वारोही उस भोपड़ी के द्वार पर
दिखाई पड़ा । वह अपनी धुन में कहने लगा—'मिरज़ा ने जो
चित्र बनाकर दिया है, वह तो इती जगद का होना चाहिए ।
वह बुढ़िया मर गई होगी, अब किससे पूछूं कि एक दि-

शाहशाह हुमायू किस छप्पर के नीचे बैठे थे ? यह घटना भी तो सत्तालीस वर्ष से ऊपर की हुई ।'

ममता ने अपने निकल कानों से सुना । उसने पास की स्त्री से कहा— उसे बुलाओ ।'

अन्धाराही पास आया । ममता ने दक दक कर कहा— 'मैं नहीं जानती कि वह शाहशाह था या साधारण मुगल पर एक दिन इसी भोंपड़ी के नीचे उड़ रहा । मैंने सुना था कि वह मरा पर मनवान की आज्ञा दे चुका था, मैं आजीवन अपना भोंपड़ी खोदवान के दर से भीतर ही थी । मगवानने मुन लिया मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ । अब तुम इसका मकान बनाओ या महल—मैं अपने चिर विधाम गृह में जाती हूँ ।'

वह अन्धाराही अवाक् खड़ा था । बुढ़िया के प्राण पक्षी अनन्त में उड़ गए ।

वहा एक अष्टकोण मंदिर बना, और उस पर शिलाशेख लगाया गया—

सातों दश क नेश हुमायू ने एक दिन वहा विधाम किया था । उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह मंगन चुम्पा मंदिर बनाया था ।

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं ।



श्री रायकृष्णदास

राय कृष्णदास जी काशी निवासी एक प्रतिष्ठित रईस हैं । आपका जन्म सम्बत् १९४९ में हुआ था । आपके पिता भारतेन्दु जी के पुत्रा के पुत्र थे । इतने बड़े रईस होने पर भी आपका साहित्य-प्रेम अगाध है । आपके लेखों में कला और प्रेम के शुद्ध स्वरूप की प्रधानता रहती है—इन्हीं के कारण आप हिन्दी के गद्य लेखकों में उच्च कोटि तक पहुँच चुके हैं । आपके 'साधना' गद्य-काव्य ने साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करते ही हलचल मचा दी थी । जिस विषय का आप वर्णन करते हैं उसका चित्र-सा खड़ा कर देते हैं ।

आपकी कहानियों में भी गद्य काव्य की ही प्रधानता रहती है और बीच-बीच में ग्रामीण भाषा का भी सुचारु रूप से प्रयोग होता जाता है । जहाँ जहाँ पर आपने अलंकारों का प्रयोग किया है वहीं वहीं पर भाषा और भावों में विशेष सौष्ठव आगया है । आपकी भाषा में यत्र तत्र उर्दू शब्द रहते हैं, पर समुचित स्थानों पर ।

'साधना' के अतिरिक्त आपके 'प्रवाल' और 'भावुक' तथा 'सुधाशु' ने अच्छी रयाति पाई है । इनमें से पहले दो गद्य-काव्य हैं, शेष इनकी गल्पों के संग्रह ।

माँ की आत्मा

हे मगधान् माँ की आत्मा में तूने कहीं से ममता भर दी है। नि स्वार्थ प्रेम सच्चा छेद, अदृष्टिम प्रणय देखना है तो माँ के हृदय को देखो। यदि आत्मोत्सर्ग का अभ्यास करना हो, तो माता से सीखो। यदि कल्याण का तत्त्व जानना हो तो माता के अ त करण का अध्ययन करो। यदि परम पवित्र तीर्थ में स्नान करना हो तो मा के आसुओं से भीगो। यदि इस पापपूर्ण ससार में देव सेवा करके निष्पाप होना है तो निरन्तर मातृचरण की धूल में लोटो।

“ हे राम ” ये शब्द मुह से नहीं निकले थे। इनमें एक व्यथित हृदय की समस्त व्यथा भरी हुई थी। ज्वालामुखी से जालपट्टें निकलती हैं उ हें वहाँ साधारण दीपशिखान समझ लेना। जिस अनंत अग्नि को वे बाहर निकालने का उद्योग करती हैं इसका अनुमान कर लेना कोई साधारण काम नहीं। राम तुम्हारे सिवा दुःख में प्राणी किसे पुकार सकता है ? हे दान ! दुःखियों के एकमात्र आधार इस स्वाध , मय चय य ससार में उ हें और कौन आश्रयदाता है ?

लंबी साँस के साथ “ हे राम ” कहती हुई, सेवती ने चूड़ी पोसनी शुरू की । छोटा सा घर है । वह कच्चा है । उसमें केवल दो कोठरियाँ, एक दालान और एक छोटा सा आँगन है । आज, माघ के महीने में उसे खड़ा देख कर यही आश्चर्य होता है कि वह पिछली बरसात में टिक कैसे गया !

एक कोठरी में दो खाटे पड़ी हैं । खाटें क्या, भिलंगे हैं । उन पर फटी-पुरानी, मैली-कुचैली कथरी गुदाड़ियाँ धरी हैं । दूसरी कोठरी में एक फटी चटाई, दो फटे बोरे पड़े हैं । वे इस योग्य हैं कि यदि भारत की आर्थिक दशा दिखाने के लिए कोई प्रदर्शनी की जाय, तो उसमें उन्हें सर्वोच्च पुरस्कार (Grand Prize) मिले । एक कोने में दो तीन छोटे बड़े घड़े और झञ्झर पड़े हैं । चुड़िया बार-बार आती है और कूद कर उनके गले पर जाकर, उनके भीतर भाँक कर फिर अपने बिल को लौट जाती है । शायद किसी ज़माने में उनमें सौदा-सामान रक्खा जाता रहा होगा । एक ओर एक डोरी पर कई फटे पुराने कपड़े टंगे हैं । बस, इतनी गृहस्थी के घूँते पर इस घर के लोग ‘ गृहस्थ ’ कहे जाते हैं ।

नहीं नहीं, मैं एक बात तो भूल ही गया । दालान में एक चूल्हा भी है । देखने से जान पड़ता है वह कई

दिनों से नहीं जला । टीक उसके ऊपर खुटियों में दो काली काली होंडियाँ टगी ह ।

पाठक, यह घर है किसका ? पंडित रामद्विज दूबे का । दूबे जी अब इस ससार में नहीं, उन्हें मेरे तीन बप हो चुके । अब उनकी विधवा सेवती और सात बरस का लड़का रामसूरत उनकी स्मृति बनाए हुए है ।

दूबे जी एक लोअर प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे । उन्हें =) मिलते थे उसी में थे मुख दुख घर चलाते थे । उनके मरने पर घरवालों का कोई आश्रय न रह गया ।

आ बेचारी न पढ़ी लिखी थी, न कोई कला-कौशल ही जानती थी । घर का सब चलता तो कैसे ? हाँ उसके तन पर कई गहन अश्रय थे । वे एक एक करके आधे दामों पर । रक गये । तब भूखों मरने की नौबत आई । पर मौ की आत्मा भला लड़क का दुखी देख सकती है ! सेवती ने १०) पर मकान उधर रख कर माल मर किसी प्रकार उसका पेट भरा । इधर महाजन न तकाजा शुरू किया । पहले तो यह महाजनों तक टालती रही । जब काह उपाय न देख पड़ा तब उसने माफ कह दिया कि भाई रुपये मेरे दिये न दिये जायग तुम्हारे जा मन आव करो । बस इसी की तो प्रताप्ता जा । महाजन का शील कहीं ! मला महाजनों और शाल कहीं एक साथ रह है । ' राम कहिये ' ! उसने

चट नालिश करके ५६) पर मकान नीलाम करा लिया । ३७) की डिगरी घाते में बनी रही ।

आज तीन दिन हुए, उसने सेवती को ज़बानी नोटिस दे दिया कि माघी पूर्णिमा से या तो किराया दिया करो या मकान खाली कर दो । अब तक मैंने बहुत नुकसान उठाया अब नहीं सह सकता ।

गाँववाले उसकी इस दयालुता की भूरे-भूरि प्रशंसा करते हैं । दूसरा नीलामदार होता तो उसने तुरंत कब्ज़ा ले लिया होता । प्रशंसा न करते, तो जाते कहाँ ? सारे गाँव का साहूकार तो वही था ।

रामसूरत को इन सब बातों की कोई चिंता नहीं । चिंता कैसे हो ? एक तो उसकी उम्र नहीं, दूसरे सिर पर माता का छत्र है । वह अपने खेलने-कूदने में मस्त रहता है । जिस दिन मकान नीलाम हो रहा था, वह और लड़कों के संग खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा था ।

जब एक, दो, तीन होकर आखिरी बोली बोली गई थी, तब वह आनन्द की किलकारी मारता हुआ उछलने लगा था । बेचारी माता भीतर बैठी बैठी रक्त के आंसू रो रही थी, और 'उत्तर-रामचरित' के राम की भाँति पुटपाक में पक रही थी । उसको सब से भारी चिन्ता रामसूरत के भविष्य की थी ।

रामसूरत, जाने आज के याद तेरे भाग्य में वे आनन्द की कित्तकारियाँ हैं या नहीं । '

सेवती में कोई विद्या तो न थी, पर बाहुबल था । उसने घर-घर यह प्रस्ताव किया था तो मुझ से आटा पिसाया करो पानी भरवाया करो या और जो मेहनत मजदूरी चाहो, करा लो । पर इस पर कोई कैसे सम्मत होता ? भला, हिंदू-समाज पड़ितानी से कहीं चाकरी करा सकता है ? ऐसा हो तो वह आज ही रसातल को न चला जाय । अततोमत्या उसे चारों ओर अधिकार ही अधिकार सूझने लगा । किसके लिए ? कुछ अपने लिए नहीं, अपने एकमात्र प्राण रामसूरत—लटलू—के लिए । जिस प्रकार कलुर पानी में बैठे-बैठी बालू में गड़े अपने अड्डों की मंगल कामना किया करती है, उसी भाँति लटलू चाहे जहाँ रहे, सेवती का जी उसी में लगा रहता, उसी की शुभ कामना किया करता ।

आज लटलू के सभ्या को खाने के लिए घर में कुछ भी नहीं । सत्तू की अंतिम मुट्ठी खाकर घट घेलने गया है । आज ही क्या आज से आगे सेवती के किये कुछ नहीं हो सकता । यों होने को तो एक उपाय है । पर क्या वह उसके लिए तैयार होगी ? कदापि नहीं । इसी से उसने चूड़ी या फर प्राण देना निश्चित किया है ।

लटलू का कह क्या वह अपनी आँखों देय सकती है ?

कभी नहीं । क्या वह लल्लू से अपने मुँह से कह सकती है 'बेटा, तुम्हारे खाने के लिए कुछ नहीं है ।' कभी नहीं, कभी नहीं—ऐसा अवसर आने के पहले ही वह खुशी खुशी प्राण देकर अपना जी ठंडा करेगी ।

सेवती, सेवती, तुम यह क्या अनर्थ कर रही हो ? सोचो तो, तुम कैसे भयंकर पाप गर्त में कूद रही हो ! अब भी समय है । चेत जाओ—'जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्।' पर नहीं, मैं भूल रहा हूँ, वे भारत के स्वर्णमय दिनों की बातें थीं । अब तो इस अभाग्य देश में दुःख के सिवाय सुख कहां सेवती, तुम मरो, अवश्य मरो, इसी में तुम्हें चिरशांति मिलेगी, हत-भाग्य भारतवासियों, प्राण देने में ही तुम्हारे लिए जीवन है ।

चूड़ी पिस गई । सेवती ने उसे जिस धीरज के साथ फाँककर पानी पिया, उस धीरज के साथ शायद ही किसी योगी ने आज तक ब्रह्माण्डद्वारा प्राणवायु-विमोचन के लिए समाधि लगाई हो । परन्तु इसके बाद वह अपने को न संभाल सकी—'हाय लल्लू, अब तेरा क्या होगा ! क्या तू सचमुच ही सपना हो जायगा !' कहकर रोते-रोते वह घड़ाम से आँगन में गिर पड़ी । पर शीघ्र ही संभल कर रोती-रोती अपनी टूटी खाट पर जाकर मुँह ढक के पड़ रही ।

सोओ सेवती, तुम शांतिपूर्वक महानिद्रा में सोओ, अब लल्लू की चिन्ता का समय नहीं । उसके सिर पर भगवान् है ।

श्री पदुमलाल पुनालाल बरूशी

बरूशी जी का निवासस्थान मध्यप्रदेश में है। आपके विचार बहुत गहन होते हैं और आपकी रचना में प्रौढ़ता और व्यङ्ग्य का विशेष मिश्रण रहता है। जैसा आपको प्राच्य-साहित्य का अच्छा ज्ञान है वैसा ही आपका परिचय पाश्चात्य साहित्य से भी बहुत है। आपके लेखों से यह स्पष्ट मालूम भी होता है।

श्रीयुक्त महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के बाद सरस्वती का सम्पादन-भार आपके ही कंधों पर पड़ा था। जब तक उसे उठाया खूब निभाया।

आपके 'साहित्यविमर्श' का खूब आदर हुआ है। 'विश्वसाहित्य' भी अच्छा है। 'पंचपात्र' 'प्रदीप' भी आपकी ही कृतियाँ हैं। आपके गल्पों में मानवजीवन का अच्छा चित्र-चित्रण होता है। आपका कहानीसंग्रह 'मलमला' अब प्रकाशित हुआ है। आप कवितायें भी अच्छी लिखते हैं पर आलोचनात्मक साहित्य आपका प्रधान क्षेत्र है।

गूँगी

गूँगी का नाम था गोमती । पर वह रूख बोलती थी ।
इसलिए मैंने उसका नाम गूँगी रख दिया था । गूँगी बन
जाने पर भी गोमती की बातें शक्ति कम नहीं हुई । तो भी
सब लोग उस गूँगी ही कहते गए ।

गूँगी हम लोगों की दासी विमला की लड़की थी । नीच
पशु में जन्म लेकर भी भगवान् ने उसे कुछ ऐसा रूप दिया
था कि उसे देखते ही सब लोग उसे गोद में लेना चाहते थे।
वह प्रति दिन अपनी माँ के साथ हमारे घर आती । जब तक
विमला घर का काम काज करती, वह मिनी के साथ खेलती
जब मिनी पढ़ने के लिए आती, तब वह भी आ जाती । पर
वह थुप तो बैठ नहीं सकती थी, इसलिए वह भी मिनी के
साथ पढ़ती थी । गूँगी की खुशियाँ भी तीव्र थी । मैंने देखा थोड़े
ही दिनों में वह मिनी से आगे बढ़ गई । उसकी ऐसी खुशियाँ
देख, मैं उसे रूख उत्साह से पढ़ाने लगा । मैं पाँच वर्ष तक
५८ ~ रहा, और गूँगी पाँच वर्ष तक मुझसे पढ़ती

रही। जब मुझे विलासपुर छोड़कर कलकत्ता जाना पड़ा, तब गूँगी ११ वर्ष की थी। पर उस समय भी उसने मुझसे 'वालिका-भूषण', 'भूगोल', 'अङ्क-गणित' और 'इतिहास' तक के कुछ अंश पढ़ लिए थे। जाते समय मैं उसे 'रामचरित-मानस' देता गया। मैं जानता था, थोड़े ही दिनों में वह सब भूल जायगी।

कलकत्ता आते ही मेरा भाग्योदय हुआ। साहब की मुझ पर कृपा दृष्टि हुई। मेरी पदोन्नति होने लगी। मैं भी खूब परिश्रम करने लगा। कलकत्ते में मैं १५ वर्ष तक रहा। १५ वर्ष के बाद मैं फ़र्स्ट ग्रेड का डिपुटी-मजिस्ट्रेट होकर श्रीरामपुर चला गया।

शीत काल का प्रारम्भ ही था, पर ठण्ड पड़ने लगी थी। मैं बाहर धूप में कुर्सी डालकर आराम से 'स्टेड्समैन' पढ़ रहा था। कुछ देर पढ़ने के बाद मैंने "स्टेड्समैन" फेंक दिया और एक बार चारों ओर दृष्टि पात किया। मेरे घर के सामने ही एक कुँआ था। प्रति-दिन वहाँ प्रातःकाल स्त्रियों की बड़ी भीड़ रहती थी। उस दिन भी वहाँ स्त्रियों की संख्या कम न थी। मैंने देखा कि हमारे घर की दासी, मालती, भी गगरा लिये बैठी है। इतने में कुछ स्त्रियाँ लकड़ियों का गट्टा सिर पर लिए उधर से निकलीं। मालती ने उनमें से एक को पुकार कर कहा—“लकड़ी बेचोगी?” उसने उत्तर दिया, “क्या दोस्त”

मालती कहने लगी—“तू ही कह देना, क्या लेगी !”

उस स्त्री ने कहा—“आठ आना ।”

मालती ने कहा—“यस यहन, हो गया ! यह तो लेने-देने की बात नहीं है ।”

तब उस स्त्री ने कहा—“यहन, छ आने से कम न लूँगी, तुम्हें लेना हो तो लो, नहीं जाती हूँ ।”

यह कहकर यह जाने का उपयम भी करने लगी ।

मालती ने कहा,—“मैं तो पाँच आने दूँगी ।” तब यह स्त्री जाने लगी ।

इतने में दूसरी लकड़ीवाली ने उससे कहा—“देदे री, पाँच आने ठीक तो हैं ।”

उस स्त्री ने उत्तर दिया—“नहीं यहन, मैं न दूँगी। छ आने से एक कौड़ी भी कम न लूँगी ।”

तब तब मालती ने गगरा भर लिया था । यह कहने लगी—“अच्छा ला ।

यह स्त्री मालती के साथ आने लगी । उसकी सक्किनी लकड़ीवाली दूसरी ओर चली गई ।

मैंने फिर चश्मा साफ करके ‘स्टेड्समैन’ उठा लिया और पढ़ने लगा । थोड़ा ही पढ़ा था कि मालती आकर कहने लगी—“बाबूजी, लकड़ीवाली लकड़ी रखकर कहाँ गई ? उसने पैसे भी नहीं लिए !”

मैंने कहा—“आती होगी, उसे क्या अपने पैसों की

चिन्ता न होगी ?” मालती चुप हो गई । तब तक धूप कुछ तेज़ हो गई थी । मैंने उससे कहा—“मालती, कुरसी भीतर रख दे ।”

मालती ने वैसा ही किया । मैं भीतर बैठ गया ।

दस बजते ही मैं कचहरी चला गया । दिन-भर मैं काम में लगा रहा । सन्ध्या होते ही मैं घर लौट आया । घर में आकर मैंने देखा कि पुरुषोत्तम बाबू मेरे कमरे में बैठे हुए हैं । मैंने प्रसन्नता-सूचक स्वर में कहा—“ओ हो, पुरुषोत्तम बाबू ! इतने दिनों मैं ! मिनी कैसी है ?”

पुरुषोत्तम बाबू ने कहा—“वह भी तो आई है ।”

तब तो मैं पुरुषोत्तम बाबू को छोड़कर भीतर चला । देखा, तो मिनी कमला के साथ बैठी हुई है ।

मिनी ने मुझे प्रणाम किया । मैंने उसे अन्तःकरण से आशीर्वाद दिया । बड़ी देर तक हम लोग बैठे रहे । इधर-उधर की खूब गप्पें होती रहीं । ग्यारह बजे हम लोग सोने लगे ।

दूसरे दिन मैं फिर बाहर कुर्सी डालकर बैठ गया । पुरुषोत्तम बाबू अभी तक सो रहे थे । मैंने ‘स्टेडस्मैन’ उठा लिया । थोड़ी देर बाद मैं फिर कुर्से की ओर देखने लगा । आज भी वहाँ स्त्रियों की वैसी ही भीड़ थी । मालती भी गगरा लिए वहाँ बैठी थी । इतने में पिछले दिन की लकड़ीवाली फिर उधर से निकल पड़ी । मालती ने उसे पुकारकर कहा—

“ओ लकड़ीवाली ! कल तूने पैसे नहीं लिये ?”

यह कहने लगी—‘यह न आज भी तो लकड़ी लाई है। ईंटें भी ले लो। दोनों का दाम साथ ही ले लूंगी।’

मालती ने कहा—‘अच्छा।’ इतने में पुरुषोत्तम बाबू आ गए। मैं उनसे गप्पें मारने लगा। थोड़ी देर में भीतर से “चोर ! चोर !” का दंजा हुआ। हम लोग घबराकर भीतर दौड़े। देखा, लकड़ीवाली को दरवान ने पकड़ लिया है। मालती आदि चार पाँच और स्त्रियाँ इधर उधर खड़ी थीं; मुझे देखकर सब चुप हो गईं। मैंने पूछा—“माजरा क्या है ?”

मालती कहने लगी—“बाबू, मैं इस लकड़ीवाली के पैसे लाने के लिये भीतर गई। लौटने पर देखती हूँ कि यह नहीं है। इतने में आपके कमरे में से कुछ आवाज आई। मैं ‘चोर-चोर’ कहकर चिल्लाने लगी। जय दरवान आया, तब यह आपके कमरे में पकड़ी गई।’

दरवान ने कहा—“बाबू, इसने अपने कपड़ों में कुछ छिपा लिया है।”

तब मैंने लकड़ीवाली से पूछा—‘क्यों, क्या बात है ?’

लकड़ीवाली ने एक थप्ता निकालकर कहा—“बाबूजी, मैं इसे रखने के लिये आई थी।”

मैंने थप्ता खोलकर देखा, तो उसमें ‘रामचरितमानस’ की एक कौपी थी। उसके ऊपरी पृष्ठ पर मेरे हाथ का लिखा

हुआ था-‘गूँगी’ । मैं चौंक पड़ा । तब मैंने लकड़ीवाली की ओर ध्यान से देखा वह मेरी ‘गूँगी’ ही थी । ‘गूँगी !’ मैंने इतना कहा ही था कि वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी । क्षण भर के लिए सब भूलकर मैंने उसे गोद में उठा लिया । गूँगी मेरी गोद में रोने लगी ।

श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'

हृदयेश जी का जन्म १९५६ वि० में हुआ था। आपको गोलोक सिधारे लगभग दस-ग्यारह साल बीत चुके हैं। आप पीलीभीत के रहने वाले थे। आपकी भाषा मधुर और श्लिष्ट होती थी। श्लोकारों में भी अनुप्रास का आप अधिक प्रयोग करते थे। आख्यायिकाओं के चरित्र-चित्रण में आप सिद्धहस्त थे।

आप हिन्दी साहित्य में एक विशेष धारा चलाना चाहते थे पर उसे कार्यरूप में लाने से पूर्व ही आपको कराल काल ने कवलित कर लिया। आपने कुछ समय तक 'चांद' का संपादन भी किया है। आपके 'संगलप्रभात' ने अच्छी ख्याति पाई थी। आपका 'मनोरमा' उपन्यास भी अच्छा है। आपका 'नन्दननिकुञ्ज' और 'वनमाला' आदि कतिपय गल्प-संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं। आप कवि भी थे।

प्रतिज्ञा

(१)

जीवन-ज्योति का निवाण ! कदा है ! नैराश्य की कालिमायों कदरा में, अथवा आनन्द के आलोकमय आसाद में ! कल्पना और चिन्ता ! इनका समुचित उत्तर क्या तुम दोनों की सद्यः विहारिणी बुद्धि के भी परे है !

उत्तर दो, या न हो, कतव्य के कठार पथ से भ्रष्ट हो जाने पर जीवन-ज्योति अवश्य ही रसातल की अपमान कक्षा में चिरकाल के लिये पतित हो जायगी, भविष्य गगन के घाल सूर्य की उज्ज्वल आभा अछान सिन्धु के मयकर घटः स्थल में निक्षय हो विलीन हो जायगी। ऐसे समय जीवन-मरण की विकट समस्या, के समुपस्थित होने पर बौन से मार्ग का अवलम्बन करना होगा ! विभ्रनाथ के विमल इस आतिशारी प्रश्न ने बढ़ी हलचल मचा है।

विभ्रनाथ की अवस्था २० वर्ष की है। बी० ए० पास

होने पर भी उन्हें ग्राम्य जीवन और गामीण वेश ही विशेष प्रिय हैं। जिन्हें अंगरेज़ी पढ़कर अपने देश और वेश से घृणा हो जाती है, शिक्षा के सर्वोच्च सोपान पर पहुँच कर भी जिन में करुणा और विनय का एकान्त अभाव तथा स्वार्थ और अहंकार का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है, जो देश के सर्वस्व का उपभोग करते हुए भी उसके साथ—अपने जन्म-दाता के साथ—विश्वासघात करने में कण-मात्र भी कुंठित नहीं होते, जो देश की दरिद्र संतान से—अन्न दात्री कृपक मंडली से—एक बार हँसकर बोलने में भी अपनी निःसार मान मर्यादा के अपमान की कल्पना करते हैं, उनके—विदेशी सभ्यता के तीव्र आलोक में विचरने वाले ममता-शून्य अहम्मानियों के—विश्वनाथ अपवाद स्वरूप थे।

विश्वनाथ जिस गाँव में रहते थे, वह उन्हीं की ज़िम्मेदारी में था। विश्वनाथ केवल अपने माता पिता के ही स्नेह-भाजन हों, यह बात न थी। गाँव के छोटे-बड़े धनी-मानो, राव-रंक, सभी विश्वनाथ से समान स्नेह करते थे। विश्वनाथ की करुणा-लहरी भी अनवरुद्ध गति से प्रवाहित होकर सबको समान भाव से शीतल करती थी। गाँव की युवतियाँ उन्हें भाई कहती, गाँव के कपट-शून्य युवक उनसे सहोदर समान स्नेह करते, गाँव की प्रौढ़ा उन्हें अपनी संतान के समान देखती और गाँव के बच्चे, बूढ़े उन्हें अपनी आत्मा का दूसरा स्वरूप समझते। प्रकृति क उस परम रम्य

विहार-वन में स्नेह के उम सौरभमय निकुञ्ज में और शांति के उस दुर्लभ-उपरन में विभ्वनाथ इस प्रश्न की समुचित समस्या हल करने के लिये व्याकुल हो उठे।

तर्क ! चक्रगति का परित्याग कर दो। नियम ! अपराध का अनादर कर दो। न्याय ! विचार का बहिष्कार कर दो। और सत्य ! तुम अपने ध्रुव आलोकमय रूप में दर्शन देकर विभ्वनाथ के इस हृदय-गगन की इस सदेह-कालिमा को दूर कर दो।

(२)

इस प्रह्लाद-व्यापी भू-रूप के समय भारत-उप अपने पैरों पर सदा रह सकेगा या नहीं, इस विषय पर विचार करते करते विभ्वनाथ ग्राम-वाहिना कल्लोलिनी के तट पर घूम रहे हैं। दिननाथ अपनी कदण किरणों से सरोजिनी के स्नान होते हुए मुक्त का रसास्वाद पान कर अपनी रसातल-यात्रा में अग्रसर हो रहे हैं। मध्य गगन में अष्टमी का अधचन्द्र मुन भास्कर के असीम राज्य पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए विशेष समुत्सुह हो रहा है।

विभ्वनाथ आप हो आप कहने लगे कैसी भयंकर परिस्थिति है ! कहाँ है दयताओं के पेरुष्य को पराजित करने वाली ब्रह्म विभूति ' सप्त हो गई ' ये सब इतिहास शेष बालें हैं। देयता हैं, कमल दत्त विहारिणी भगवती कमला अपने तर सरोज क मुरझाए हुए एक पल्लव शेष सरोज की अपनी प्रभु घास से मित्र कर रही हैं, दवी शारदा भगवतेश भगवत

मैं बैठकर, अपनी भुवन-मोहिनी वीणा के दूटे हुए तारों को मिलाकर, मर्मंतक गान गा रही है। चली गई सब संपदा ! कहाँ है वह ऋद्धि सिद्धि का अनुपम नृत्य ? कहाँ है वह विश्व विमोहन ऐश्वर्य ? विधि का कैसा भयानक विधान है ? भाग्य नाटक का कैसा मर्मभेदी दुःखात दृश्य है ? आनंद का वह जयोल्लास मानो अनंत गगन में विलीन हो गया, ऐश्वर्य की वह आभा मानो अनंत तिमिर के उदर में शेष हो गई, विभूति मानो श्मशान भूमि में भूति-शेष रह गई !”

कहते कहते विश्वनाथ के लोचन युगल से अश्रु धारा बहने लगी। हृदय में जब भयंकर उत्ताप होता है, कल्पना जब केवल प्रज्वलित प्रदेश में परिभ्रमण करती है, मस्तिष्क जब, चिता-भूमि की भाति, धधकते हुए विचारों का केन्द्र बन जाता है, तब नयनों की अश्रु धारा क्या इस भयंकर अग्नि-त्रयी को शांत करने में समर्थ होती है ?

विश्वनाथ अश्रु-प्रवाह को पोंछकर पुनः कहने लगे—
“सुनता हूँ विधवाओं का मर्म-भेदी आर्तनाद, शुष्कस्तानी माताओं के मृतप्राय बालकों का भयंकर चीत्कार, दरिद्रता का भीषण अट्टहास, और हाय ! इन सबके बीच में सुनता हूँ सर्वनाशिनी ईर्ष्या की पैशाचिक हँसी ! लज्जा आज शीर्ण-वस्त्रावृता है, शील जठराग्नि में दग्ध होकर विकल हो रहा है, आचार अभाव के कठोर अत्याचार से मृतप्राय हो रहा है

और प्रेम धिता की भयंकर धिता में दग्ध होकर भस्मारण होना चाहता है । हाँ दैव ।"

विश्वनाथ अत्यन्त उद्विग्न हो उठे । जब दुःख सिन्धु अपनी मर्यादा का उल्लंघन करना चाहता है प्रगाढ़ भूकप का आघात जब धैर्य शैल को रसातल क गर्भ में ले जाने का उपशम कर रहा है प्रबल पयोद पुञ्ज अपनी भयंकर गनना में जब निर्मल के भद्र चीत्कार को विलीन कर लेना चाहता है तब प्रलय में—जगत् के मीषण परिवर्तन में—विशेष विलम्ब नहीं है ।

(३)

रमानाथ और विश्वनाथ बाल्य बधु हैं । कल्लोलिनी तट पर निकुञ्ज वन में, दोनों ने अनेक बार अपने अपने सरल हृदय के निदग्न भावों को एक दूसरे के सम्मुख प्रकट किया है । एक ही भूमि पर दोनों ने सृष्ट की प्रथम किरणों को देखा एक ही भूमि पर दोनों ने मनोहर बाल्य जीवन को समाप्त करके यौवन में पदार्पण किया, एक ही कॉलेज में अध्ययन करके दोनों ने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की और एक ही मनप्राण होकर दोनों ने अपने अपने जीवन की अमूल्य मणि को एक ही प्रेम सूत्र में पिरोया । रमानाथ विश्वनाथ का यह देरदुलभ प्रगाढ़ प्रेम इस कुत्सित की कपट नाट्यशाला में, धीरामचन्द्र और लक्ष्मण के चरित्र की भाँति, एक स्वर्गीय दृश्य है ।

विश्वनाथ आज रमानाथ के बिना ही कल्लोलिनी-तट पर विचरण करने आए थे। यह रमानाथ के लिए प्रथम आश्चर्य था। अपने अतीत जीवन में रमानाथ ने विश्वनाथ के बिना और विश्वनाथ ने रमानाथ के बिना कोई भी कार्य नहीं किया था। नित्य ही दोनों एक स्थान पर भोजन करते, नित्य ही दोनों एक ही कक्षा में अपने अपने अध्ययन में प्रवृत्त होते। आज विश्वनाथ रमानाथ को छोड़कर, अपने चिन्ता-दग्ध हृदय को लेकर, कल्लोलिनी-तट पर कल्पना की सहायता से माता का करुणा-पूर्ण मुख-मण्डल देखते-देखते विचरण कर रहे हैं। यह विश्वनाथ और रमानाथ के प्रेम-इतिहास का एक नूतन अध्याय है।

जिस समय विश्वनाथ अपनी कक्षा से बाहर निकले थे, उस समय रमानाथ सो रहे थे। उन्हें निद्रादेवी की सर्द-संतापहारिणी गोद में छोड़कर विश्वनाथ चले आए थे। रमानाथ ने जागकर देखा कि विश्वनाथ नहीं है। आश्चर्य और आवेग के साथ, संदेह और संशय के साथ, रमानाथ शीघ्रता-पूर्वक कल्लोलिनी-तट के अभिमुख चल दिए।

जिस स्थल पर प्रेम की दो शीतल धाराएं मिलती हैं, उस स्थान को भगवान् की अदृश्य करुणा लहरी प्रयाग-तीर्थ में परिणत करती है। इस पवित्र त्रिवेणी संगम पर स्नान करने वाले, योग दुर्लभ परममद को प्राप्त कर, विश्व को—सतत संसार को—विश्वप्रेम का पवित्र पाठ पढ़ाते हैं।

रमानाथ और विश्वनाथ की सृष्टि क्या भगवान् ने इसी उद्देश्य से नहीं की ?

रमानाथ ने देखा, विश्वनाथ की मुख थी, दिनकरण किरण सतत सुमन की भाति, मलिन हे, स्निग्ध कदना पूर्ण लोचन युगल जल पूण हैं और वसुम कोमल शरीर शिथिल हो रहा है। रमानाथ ने आवेग से उनका हाथ पकड़कर कहा—
' विश्वनाथ !'

विश्वनाथ ने चौंकर कहा— 'कोन ? रमानाथ !'

(४)

पतंग प्रिया पद्मिनी, थी विहीन होकर सकुचित हो गई। पक्षिकुल सरलक विहीन गायक समाज की भाति, मूक हो गया। प्रकृति, परिश्रम के विधाम की भाति, स्तब्ध हो गई। गगनागण में विहार करता हुआ चन्द्रमा अपनी शुभ्र चद्रिका की शीतल धारा से धरणीदेवी के दिनकर करतल कलेवर का सिंचन करने लगा। सुमुदिनी प्रफुल्लित हो गई। औषधिया अनुकूल नायक को प्राप्त करके खेद के अपेक्ष में धमकने लगीं। कल्लोलिनी की तरंग माला चन्द्रमा की स्त्रियों खेलने लगी। रमानाथ ने कहा— विश्वनाथ, अपनी इस प्यथा की यात मुझसे न कहकर तुमने मेरे साथ कैसा

५ है, सो तुम जानते हो।

विश्वनाथ ने बुलित स्वर में कहा— 'भैया, मैं सदा का

दोषी हूँ। तुम्हारे प्रेम का मैंने अनादर किया हो, यह बात नहीं है। तुमसे मैंने कौन-सा रहस्य छिपाया है? वास्तव में मेरे इस जीवन का समस्त इतिहास तो तुम्हारे हृदय की प्रेम-पुस्तक में लिखा हुआ है। भैया, मैं समझता था कि इस विश्व में सहानुभूति और करुणा की शीतल तरंगिणी अनवरुद्ध गति से बढ़ती है। किंतु नहीं, अब देखता हूँ कि प्रवल अत्याचार का प्रकांड पर्वत, द्वेष की कठोर भित्ति, स्वार्थ-प्रवृत्ति का भीषण पापाण समूह, एकमत होकर, पग पग पर, मही-तल के हृदय-तल को शीतल करने वाली इस निर्भरिणी के मार्ग का अवरोध कर रहे हैं। भारत भूमि निर्वलो के रक्त से लाल हो रही है। हिमाचल की कन्दराएँ निरीह बालक-बालिकाओं की कंदन-ध्वनि से परिपूर्ण हो रही हैं। भारतीय गगन मंडल अचलाओं की रोदन-ध्वनि से विदीर्ण हो रहा है। वो लो रमानाथ, विश्वेश्वर का सिंहासन फिर कब डोलेगा?"

कहते-कहते विश्वनाथ फिर अधीर हो उठे। रमानाथ ने भी इस बार आवेश के साथ उत्तर दिया—"डोलेगा! अवश्य डोलेगा! क्यों न डोलेगा! किंतु भाई, जब तक हमारे ही हृदय का करुणा-सिंहासन अचल भाव में स्थित रहेगा, जब तक हमारा रक्त धमनी में जल होकर बहता रहेगा, जब तक समस्त भारत एक मन, एक प्राण होकर एक ही उद्देश्य की ओर प्रधावित नहीं होगा, जब तक अकर्मण्य बनकर केवल कल्पना द्वारा ही भारतवासी, भगवान् की करुणा को पुकारते

(५)

रमानाथ और विश्वनाथ चौक उठे। उन्होंने देखा, एक शतायु संन्यासी सम्मुख खड़ा है। मुख पर अपूर्व तेज है। शरीर अत्यंत सुंदर एवं गठा हुआ है। एक हाथ में त्रिशूल है, दूसरे में भिक्षा पात्र। संन्यासी ने कहा—‘बंधु-द्वय ! तुम दोनों की बातें सुनकर मुझे परम सुख प्राप्त हुआ है। चलो, संन्यासी की कुटी को पवित्र करो।’

रमानाथ और विश्वनाथ ने वद्धांजलि प्रणाम किया। संन्यासी ने ईपत् हास्य के साथ कहा—‘विजय हो।’

रमानाथ और विश्वनाथ संन्यासी के पीछे-पीछे चल दिए। गाम-विहारिणी सरिता एक सुन्दर वन में प्रवेश करती है। वास्तव में वह एक विस्तृत वन के मध्य ही में होकर, मधुर कलकल ध्वनि करती हुई, सिंधु पति की ओर अग्रसर होती है। प्रकृति की उस विहार स्थली में सरोजिनी शोभित सरिता के सुरम्य तट पर, संन्यासी की लता-पत्रादि घेष्टित स्व-निर्मित कुटी है। संन्यासी की आशा पाकर विश्वनाथ और रमानाथ, कुटी के बाहर ही, चंद्रिका-चर्चित दूर्वा के कोमल आस्तरण पर बैठ गए। संन्यासी भी उनके सम्मुख बैठ गया।

संन्यासी ने कहा—‘युगल बंधु, तुम जानते हो युग-कर्मक्षेत्र दुग्ध-फेन-सम कोमल शय्या नहीं, किंतु दुस्तर मार्ग है। विश्व के समस्त काल्पनिक बंधनों को

शीश पर धारण करके, ऋषि पुंज के मंत्र पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंथानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल-ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

मिलाकर गाने लगे । मातृ प्रतिमा मद हास्य करती हुई
सुनन लगी—

गान

जयति जयति जननी !

आवन मूरि, "याति लाघन की अरि कञ्ज सकल प्रथमनी !
नित पयोधि परमन पद्म पवन, पुण्य पियूष प्रसवनी !
वारन तन, मन धन जन जीवन पाप प्रशमनी ।
मागत नित ह यश चरण रति भक्ति-गति मा मन वसनी ।

गान समाप्त होन के बाद स-यासी ने कहा—
' यधु द्वय, मातृ चरण का स्पर्श करके प्रतिष्ठा करो कि
हम माता की उन्नति के लिये जीवन दान देकर चेष्टा करने में
भी पराङ्मुख नहीं होंगे ।

विश्वनाथ और रमानाथ ने मातृ-चरण छूकर प्रतिष्ठा
की । उसी समय माता के कर सरोजों से विश्वनाथ और
रमानाथ के गल में दो मालाएँ गिर पड़ीं । माता ने मारों
विजय-माला पहनाकर कहा—“विजय हो ।

× × × ×

उसी रात्रि को उसी पुरुष अयसर में, विश्वनाथ और
रमानाथ ने अपने कर्तव्य-भाग को ठीक ठीक जान लिया ।
समार का नि सार मोह यवन काटकर विश्व-प्रेम के अनन्त
आनन्द का प्राप्त करके, प्रकृति के पुरुष आशीर्वाद

शीश पर धारण करके, ऋषि-पुंज के मंत्र-पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प-वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंथानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'



मिलाकर गाने लगे । मातृ-प्रतिमा मद-हास्य करती हुई सुनने लगी—

गान

जयति जयति जननी !

जीवन मूर्ति, उद्योति लोचन की श्री कुञ्ज सकुञ्ज प्रथमनी !

नित पयोधि परसत पद-पङ्कज, पुण्य-पियूष प्रसवनी !

धारत तन, मन धन जन जीवन पाप प्रशमनी !

मौगत नित हृदये' चरण रति मति-गति मो मन बसनी ।

गान समाप्त होने के बाद स यासी ने कहा—
“यधु द्वय, मातृ-चरण का स्पर्श करके प्रतिज्ञा करो कि इस माता की उन्नति के लिये जीवन दान देकर चेष्टा करने में भी पराङ्मुख नहीं होंगे।”

विश्वनाथ और रमानाथ ने मातृ-चरण छूकर प्रतिज्ञा की। उसी समय माता के कर-सरोजों से विश्वनाथ और रमानाथ के गले में दो 'मालाएँ' गिर पड़ीं। माता न मानों विजय-माला पहनाकर कहा—'विजय हो।'।

x x x x

उसी रात्रि को उसी पुण्य अयसर में, विश्वनाथ और रमानाथ ने अपने कर्तव्य-मार्ग को ठीक ठीक जान लिया। ससार का नि सार मोड़ बघन काटकर विश्व-प्रेम के अनन्त आश्रय को प्राप्त करके, मूर्ति क पुण्य

शीश पर धारण करके, ऋषि-पुंज के मंत्र-पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प-वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंथानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'
अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

मिलाकर गाने लगे । मातृ प्रतिमा मद हास्य करती हुई सुनने लगी—

गान

अपति अपति जननी !

जीवन मूँरे, उद्योति लोचन की, अरे कुञ्ज सकल प्रथमनी !
निष्ठ पयोधि परसत पद पङ्कज, पुष्प पियूष प्रसवनी !
वारत तन, मन धन जन जीवन पाप प्रशमनी !
मौनत निष्ठ हृदयेय' चरण रति मति गति मो मन बसनी !

गान समाप्त होने के बाद सन्यासी ने कहा—
“यधु द्वय, मातृ चरण का स्पर्श करके प्रतिष्ठा करो कि
इम माता की उन्नति के लिये जीवन दान देकर द्योष्ट करके मैं
भी परोदमुख नहीं हूँगे।”

विश्वनाथ और रमानाथ ने मातृ-चरण छूकर प्रतिष्ठा
की। उसी समय माता के करसरोजों से विश्वनाथ और
रमानाथ के गले में दो मालाएँ गिर पड़ीं। माता ने मातों
विजय-माला पहनाकर कहा—“विजय हो।”

x x x x

उसी रात्रि को उसी पुरुष अथमर में, विश्वनाथ और
रमानाथ ने अपने कर्तव्य-भाग को ठीक ठीक जान लिया।
ससार का नि सार मोह बंधन काटकर विश्व-प्रेम के अनंत
आश्रय को प्राप्त करके, प्रकृति व पुण्य आशीर्वाद का अपने

शीश पर धारण करके, ऋषि-पुंज के मंत्र-पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प-वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश-सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंथानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल-ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'
अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त

पन्त जी का जन्म संवत् १९५६ वि० में हुआ था । आपका जन्म स्थान आल्मोड़ा है । आजकल आप ए०वी स्कूल, रानीखेत में अध्यापक हैं । आपने एक नाटक लिखा था—‘वरमाळा’ । नाटक था तो अच्छा और अपने ढंग का एक ही, पर इसका कुछ बहुत आदर नहीं हुआ । उसके बाद एक आपका नाटक राजमुकुट निकला है । इस नाटक की अच्छी प्रशंसा हुई है । आप अच्छे कहानी-लेखक हैं । आपकी कहानियां हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होती रहती हैं ।

आपकी रचनाओं में छायावाद का आभास रहता है ।

प्रियदर्शी

(१)

चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक वात्स्यकाल से ही निद्रय, निमम और नृशस था । ममध के सिंहासन पर बैठकर उसने अपने राज्य भर में यह कठार आज्ञा प्रचारित की कि समस्त यौद्धों के सिर काट लिए जायें । प्रत्येक नर मुंड के लिए पुरस्कार की घोषणा हुई । चंडगिरि नामक एक दुरात्मा इस काय के लिए नियुक्त किया गया ।

शांति की सुनिमल सुर सरिता में सद्य छाँट आयायत फिर अधिराज होने लगा । देश के चारों ओर हाहाकार मच गया । कितने ही घरों के दीपक बुझ गए कई जनपद उठाड़ हो गए, कई पुर शमशान बन गए । मुक्तकुतला, दीना रमणियों के करुण वदन से चंडगिरि का हृदय नहीं पसीजा । छोटे छोटे बालकों के निष्पाप सरल मुख मडलों को देखकर वह प्रवित नहीं हुआ ।

अशोक की भीषण आज्ञा और पापात्मा चंडगिरि की कठोर आसि के आगे किसी की न चली। वसुंधरा ने शत-सहस्र मुंडों की माला धारण की। इस भयानक रक्त-पात से भारत-माता थर-थर काँपने लगी। आँखों से छल छल अध्रु धारा बहाने लगी।

(२)

मथुरा पुरी में एक वृद्ध वणिक् रहता था। श्याम-सलिला यमुना के तट पर उसकी गगनचुम्बी अट्टालिका थी। अट्टालिका का सौंदर्य और विस्तार वणिक् की अतुल धन-राशि का परिचय देता था। उसके समुद्र नाम का एक पुत्र था, जो वाणिज्य सम्बन्धी कार्य के लिये देशांतर में था।

जो पुष्प सबसे सुंदर और सरस होता है, उसी पर मधु मक्षिका सबसे पहले आक्रमण करती है, जो देश सबसे अधिक धन-धान्य और प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण होता है, उसी पर विदेशी आधिपत्य स्थापित कर उसे पददलित करते हैं, जो वृक्ष सबसे ऊँचा होता है, उसी पर पहले वज्र गिरता है। सौंदर्य दुःख का जनक है, लक्ष्मी क्लेशों की जननी है, उत्थान ही पतन का मूल कारण है।

छिपते हुए सूर्य की स्वर्ण-वर्ण आभा से प्रकाशित वणिक् की सुविशाल अट्टालिका पर तस्करो की दृष्टि पड़ी। अट्टालिका के भीतर रहने वाली अवगुंठनवती लक्ष्मी का मुख भी

उन्होंने कल्पना और अनुमान के नेत्रों से देख लिया । वस फिर क्या था ! एक दिन वे दूध निर्जन में एकत्र हुए, और उस वणिक् का सधस्य द्रव्य करना निश्चित किया ।

अभावस्था की तामसी रात्रि थी । उस अँधेरी रात्रि के आतंक से चन्द्रमा आकाश में पदापण नहीं करता, मनुष्य गृह के द्वार बंद कर लेता है, पशु झाड़ियों और गुफाओं में छिप जाते हैं पक्षी पेड़ की सर्वोच्च शाखा पर स्थित नोक में विधाम करते हैं । कहते हैं, वृत्त भी उस समय अपनी सुगंध को कोरक में बंद करके सो जाते हैं, धाति से अपवित्रित तरंगिणी भी रुक जाती है । ऐसे भयानक समय में उस दस्यु दल ने एक हाथ में मशाल और दूसरे हाथ में खदग लेकर उस धेड़ी के प्रासाद की ओर प्रस्थान किया ।

वृद्ध वणिक् सुख की आशा और प्रतीक्षा करते-करते सो गया था । अचानक मूर्तिमान् दुख ने उसे पुकारा, उसका द्वार छटखटाया उसके द्वार की गृधला मूनमूनार ।

वृद्ध अर्द्ध निशा को उस अर्द्ध निद्रा से चौंकर उठा, और उसने अचतुले गगन द्वार से बाहर देखा । दस्युओं का एक दल सिंह द्वार पर उसके प्रहरियों को विद्युद्देग से मृमि शाय कर रहा है । वणिक् ने द्वार बंद कर एक दुख भरी चान्कार छोड़ी । उस चान्कार से उसकी स्त्री, उनका पुत्रपथू और उसका नव जात पौत्र तीनों जाग उठे । उस समय दस्यु-दल द्वार तोड़कर भीतर आ गया था ।

मनुष्य का हृदय रखकर भी जब दस्युओं को गलित अंग और पलित केशवाले वृद्ध और उसकी वृद्धा गृहिणी की उन आँखों को, जो आलोक के स्थान में अश्रुओं से पूर्ण थी, देखकर दया न आई, तो वे खड्ग, जिनके आँखें न थी, जो जड़ थे, क्या देखते ? किसे देखकर दया आती ?

चार दस्युओं ने खड्ग उठाए—चार खड्गों की 'धार' में वृद्ध दंपति और संसार के सुखों का संपूर्ण भोग न किए हुए माता और पुत्र के जीवन न जाने किस दिशा को बह गए ।

दस्यु-गण सब रत्नाभरण, मणि-मुक्ता, मुद्रा सुवर्ण एकत्र करके चले । जाते समय मशालों से उस गृह में आग लगा गए । जिस गृह ने वणिक् कुटुंब को जीते-जी स्थान दिया था, उसी गृह ने चिता बनकर अपनी उभ्र भेदी ज्वालाओं में उन्हें अपनाया । यह स्वामी के ऋण का परिशोध था !

घड़ी भर पहले जहाँ सदन था, वहाँ मसान बन गया ! जो संगीत-निमग्न थे, उनकी मृत्यु पर कोई रोनेवाला भी न रहा । मनुष्य जिस जीवन के लिये घोर युद्ध, घोर अत्याचार करता है, जिस देह के स्वास्थ्य और सौंदर्य के लिये अनेक चिंताएँ किया करता है, जिस सुख का इतना गर्व करता है, वे कहाँ पर जाकर पर्यवासित हुए ! कैसा यह संसार है ! कितना यह क्षणिक है !

दो पक्ष बाद की बात है । समुद्र विदेश से लौट रहा था,

अपरिमित धनोपाजन कर नाना प्रकार की कल्पनाओं में निमग्न होता आ रहा था। वह माता पिता के तीर्थ चरणों के दशन की इच्छा लिए विरह विकला प्रियतमा के मिलन का सुख लिए, सुन्दर बालक की अस्पृष्ट चाणी और अर्द्ध विकसित हास्य की स्मृति लिए यव को योजन और पल को ग्रहण अनुमय करते हुए आ रहा था। आह ! उस समय उससे कौन कहता कि "समुद्र कहाँ जा रहे हो ? तुम्हारा घर इस ससार में कहाँ नहीं है। सदन द्वार के समीप प्रमात समय काक पक्षी की ध्वनि को तुम्हारे आगमन की पूर्व सूचना समझकर द्रपों फुल्ल होनेवाली तुम्हारी माता अब इस पृथ्वी पर तुम्हें खोजने से भी नहीं मिल सकती। जहाँ से तुमने उस दिन विदेश गमन किया था, शिशु को गोद में लेकर, उस पथ को निमिषहीन नेत्रों से सत्या के अत और रात्रि के प्रारम्भ तक देखनेवाली तुम्हारी अर्द्धांगिनी इस विश्व में कहाँ नहीं है। वह सर्वस्थ देने पर भी नहीं लौट सकती। लौटो समुद्र, किसी का कहाँ घर नहीं है किसी का कोई माता पिता नहीं है, किसी का कोई स्त्री पुत्र नहीं है, सब मरोचिका है, सब माया है।'

प्रमात का आरम्भ था। समुद्र अपने गृह से आधे कोस की दूरी पर सुन्दर रथ में बैठा हुआ आ रहा था। उसके पीछे कई रथों में उसका उपार्जित धन आदि सामग्री थी। क्रमशः समुद्र अपने गृह के निकट पहुँचा। जहाँ उसको

सुप्रशस्त अट्टालिका देखने का विश्वास था, वहाँ उसने क्या देखा—एक भस्म स्तूप !

समुद्र ने चौंककर सारथी से पूछा—“तुम पथ तो नहीं भूले ?” सारथी ने चकित होकर उत्तर दिया—“नहीं, स्वामी !”

“फिर—?” समुद्र इसके आगे कुछ न कह सका । उसका मस्तक चकराने लगा; स्थिर आकाश घूमता हुआ देख पड़ा—अविराम-प्रवाहिनी यमुना स्थित प्रतीत हुई !

रथ उस भस्म-स्तूप के निकट आ लगा । समुद्र ने देखा, वह वही स्थल था, जहाँ से यमुना पार के वृक्षों के झुरमुट में छिपे हुए नंद-नंदन के मंदिर का सर्वोच्च हेम-कलश उसे नित्य दिखाई देता था । आज भी वह उसे उसी प्रकार दिखाई दिया । मंदिर ऊपर मुक्त आकाश में फहरानेवाली ध्वजा भी उसी रंग-ढंग से फहरा रही थी । मंदिर के घण्टे का रव भी उसी भाँति भरे स्वर में था । यमुना के इस पार उसने देखा—उसके पूज्यपाद पिता की बनवाई सोपान-श्रेणी वही थी । यह आँखों का भ्रम नहीं था, स्मृति की भूल नहीं थी ।

समुद्र का हृदय दूने-चौगुने वेग से स्पंदित होने लगा । वह रथ से विद्युद्देग से उतरा । रत्न खचित मुकुट भूमिशायी हुआ, पादत्राण न जाने कहाँ गिर गए, उत्तरीय रथ में उलझ कर फट गया, रत्न द्वार छिन्न होकर पृथ्वी में बिखर गया ।

वह एक विलसित की भौति रथ से उतरकर मम्म-स्तूप की आर दीदा । अचानक उसे समीप ही एक परिचिता, प्रतिवेशिना वृद्धा मिली । वह रिक्त कलश लिए सरोवर को आ रही था । वृद्धा ने उसे देखते ही दीर्घ श्वास त्यागकर कहा—
‘हाय ! भाग्य-हीन समुद्र !’

समुद्र का मस्तक सङ्कुचित हुआ, ढोंठ हिले आँखें विस्फारित हुई । वृद्धा का हाथ पकड़कर उसने एक साँस में कहा— ‘देवा देवी, तुम यह क्या कहती हो ? तुम्हारे शरीर में अमंगल का आभास पाया जाता है । मेरे गृह में कुशलता है ।’

“तुम्हारे गृह के साथ ही कुशल चली गई”-वृद्धा ने दुर्घी हाकर यह कहा । आश्चर्य और दुःख के आवेग में समुद्र ने कहा—‘ क्या ? क्या ? हमारी अट्टालिका कहाँ है ?’

वृद्धा ने शोक में डूबे हुए स्वर से कहा— ‘दस्युओं ने नत्ता डाला ।’

इस आघात को सहनकर समुद्र ने पूछा— ‘माता पिता’
वृद्धा ने नीरव रह कर कर एक दीर्घ श्वास ली, समुद्र का धप जाता रहा । उसने विरक्त होकर पूछा—“स्त्री-पुत्र ?”

वृद्धा का आँखों से अध्रु गिरने लगे । समुद्र ने कहा—
‘मताआ मताआ या तुम चुप क्यों हो ? कहाँ, कहाँ, मेरे रुदन मरा सुखसान्नाय्य मरा स्वर्ग कहाँ गया ?’

वृद्धा ने पहले आकाश और फिर पृथ्वी की ओर संकेत करके कहा—“उसकी इच्छा !”

समुद्र ने विद्वल होकर पूछा—“क्या सब भस्मसात् हो गए ?”

वृद्धा—“हां, दस्युओं ने तुम्हारी संपत्ति लूट ली, तुम्हारा गृह जला डाला, और उस अग्नि में तुम्हारे माता, पिता, स्त्री, पुत्र सब भस्मीभूत हो गए।”

समुद्र ‘हाय !’ कहकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा।

(३)

समुद्र स्वजन और सर्वस्व से हीन होकर संसार के प्रति वीत राग हुआ। जो कुछ संपत्ति वह अपने साथ लाया था, सो सब उसने दीन दुखियों को बांट दी। कौपेय वस्त्र के स्थान में काषाय चीर धारण किया। मस्तक के सुवासित तैल-सिक्क केश गुच्छ काट कर सिर का मुंडन किया। रत्ना-भूषण विहीन करो मे भग्न मृत्तिका-पात्र लिया। पुष्प की कोमलता में कंटक की तीक्ष्णता का अनुभव करने वाले चरण द्वय उपानह हीन किए, और प्रव्रज्या लेकर बुद्ध-धर्म और संघ की शरण ली।

इसके बाद उसने ज्ञानान्वेषण के लिए बौद्ध-धर्मियों का सत्संग किया, बौद्ध-तीर्थों का परिभ्रमण किया। इन्द्रियों का दमन किया, और उन पर विजय पाई। माया के पोश को

तोड़ा और शांति पाई । अनेक वर्ष के बाद वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाटलिपुत्र नगर में आया ।

पाटलिपुत्र में उन दिनों राजा अशोक अहिंसामतो योद्धों के निर्दोष रहूँ की नदिया बहा रहा था । समस्त चैत्य नष्ट कर दिए गए थे, विहारों में आग लगा दी गई थी । समुद्र ने एक भग्न मठ में जाकर निवास किया ।

चंडगिरि को जब यह समाचार ज्ञात हुआ कि पाटलिपुत्र में एक योद्धा आया है तो उसने उसका सिर काट लाने के लिए एक सशस्त्र सैनिक भेजा ।

सैनिक ने जाकर देखा एक सौम्य मूर्ति, ज्ञान के दिव्या लोक से जिनका मुख मंडल ही नहीं, समस्त शरीर मासमान था एक घट वृक्ष के नीचे मुद्रासनस्थ है । सैनिक के हाथ से तलवार झनककर गिर पड़ी । वह स्वामी का काय भूल गया । उसने पातर भाव से भिक्षु के चरणों को छुआ । भिक्षु ने उसे आशीर्वाद दिया—'धर्म में मति हो । क्या चाहते हो परस !'

सैनिक— भगवान् की दया ।"

समुद्र—'वह तो प्रत्येक पल्लव से परस रही है परस ! आओ, उसमें स्नान कर पवित्रता और शांति प्राप्त करो ।'

सैनिक—'मुझे क्षमा करो भिक्षु भेष । मैं आपका प्राण नाश करने आया था । मुझे जीवन दो ।'

भिजु समुद्र ने स्मित आनन से कहा—‘तो तुमने मेरी हत्या करने से हाथ क्यों खींच लिया ?’

सैनिक ने दीन होकर कहा—‘क्या इस स्थिर, शांत मूर्ति के ऊपर किसी की तलवार उठ सकती है ? यह गर्दन तलवार के लिये नहीं, भक्ति के पुष्पहार के लिये है । जब संसार का मंगल करने वाले भिजु की हत्या की जायगी, तो संसार के दुरात्माओं के दंड की क्या व्यवस्था होगी ? भगवन्, मैं आपकी दया का भिखारी हूँ, राजा के दिए हुए दंड को हँसते-हँसते सह लूँगा ।’

‘यह राजा का दंड कैसा ?’—भिजु ने आश्चर्य-मुद्रा से कहा ।

सैनिक—‘क्या आपको विदित नहीं है ? महाराज अशोक ने समस्त बौद्धों के विनाश की कठोर आज्ञा राज्य भर में प्रचारित की है । उसी के अनुसार मैं आपका वध करने आया था ।’

भिजु—‘फिर तुमने मेरे बदले अपने स्वामी की आज्ञा का वध क्यों किया ? यह तो स्वामी के प्रति विश्वास घात है ।’

सैनिक—‘किंतु इस लोक के बाद भी एक महालोक है । उसका भी एक स्वामी है । यह उस स्वामी की भक्ति है ।’

अमण समुद्र ने मुग्ध होकर कहा—‘धन्य सैनिक, तुम्हारा ज्ञान धन्य है । आओ, मैं तुम्हें तथागत अमिताभ के प्रेम से परिपूर्ण साम्राज्य का पथ बतलाऊँगा ।’

जब चडगिरि को ज्ञात हुआ कि उसके भेजे हुए सैनिक ने समुद्र से बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली है, तो यह श्राव्य से लाल हो उठा। उसने तत्क्षण चार सैनिकों को आज्ञा दी—‘जाओ शीघ्र उन दोनों राजकुमारों के क्षिप्र मुह मर समीप उपस्थित करो। तुम्हें प्रचुर पुरस्कार दिया जायगा।’

सैनिक नगी तलवारें चमकाते हुए चले। मठ में पहुँचकर उन्होंने ‘यों हा बौद्ध भिक्षु और उस सैनिक का वध करने के लिए तलवार उठाई परमेश्वर की सीला, उन दोनों के मस्तकों के उदल चारों सैनिकों के मुख कटकर दूर जा पड़े। बौद्ध भिक्षु ने यह दुःखद दृश्य देखकर एक चीत्कार छोड़ी। नयान भिक्षु सैनिक धर्म की शक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण देख कर कुछ विस्मित हुआ कुछ मुस्कराया।

यथा समय चडगिरि के पास समाचार गया कि बौद्ध भिक्षु समुद्र ने प्रथम प्रेषित सैनिक की सहायता से चारों भानकों का मार डाला है। यह समाचार सुनकर चडगिरि के श्राव्य का सामा न रही। उसके मुख का वण तप्त सौंद के समान लाल हो उठा। उसकी बायीं बाँपने लगी। यह रूप पद दलित सब का तरह फुकारते हुए, ग्रसित सिद्ध की भाँति उदादत हुए तलवार लेकर उन दोनों के वध को चला।

जब वहाँ आकर, बिजली के समान अक्षिपर होकर,

मेघ के समान गरजते हुए कहा—“नराधमो, तुम्हें ज्ञात है ? तुम्हारे इस पाप का क्या दंड है ?”

समुद्र ने शांत शब्द से कहा—“किस पाप का ?”

चंड०—“महाराज अशोक के भेजे हुए इन सैनिकों के प्राण-वध का !”

समुद्र—“यह प्राण-वध किसने किया है ?”

चंड०—“तुमने !”

समुद्र—“मैंने ?—एक बौद्ध भ्रमण ने ? जिसका मंत्र प्रेम है, जिसका धर्म विश्व मात्र पर दया है, जिसका मोक्ष अहिंसा है, जिसका स्वर्ग भी अहिंसा ही है, वह प्राणि वध करेगा ?”

चंड०—“दांभिक भ्रमण ! पाखंडी भिलु ! आर्यावर्त में नास्तिकता फैलाने वालो ! मैं तुम्हें खूब जानता हूँ। तुमने इनका वध नहीं किया, तो क्या ये सैनिक स्वयं ही कटकर गिर गए ?”

समुद्र—“हाँ, स्वयं ही कटकर गिर गए। भ्रमण हिंसा नहीं करता; न वह बोधिसत्त्व की आज्ञा के अनुसार असत्य ही बोलता है।”

चंड०—“सैनिक तुम्हारा वध करने आए, और स्वयं उनका ही वध हो गया ! तलवार गर्दन काटने चली, और स्वयं दो-टुकड़े होकर भूमि पर गिर पड़ी। क्या इससे

अधिक अनिश्चयोंके अधिक् असत्य इस पृथ्वी पर कोर दूसरी बात हो सकती है ।

यदि आपका इसका विश्वास नहीं है, नो लीजिए, मैं गर्दन नीची करता हूँ, आप तलवार ऊँची करें—यह कह कर समुद्र ने अपनी गर्दन झुकाई ।

चङ्गिरि ने तलवार उठाकर कहा—‘हाँ, यह ठीक है ।’

अचानक वह रुक गया, धर्म के कथन की सत्यता के विचार से वह भय मीत हो गया । उसने सोचा—‘यदि भिन्न की बात सच हुई तो मेरा मुँह पृथ्वी पर होगा । तब सत्यासत्य का विचार करने वाला ही कहाँ रहेगा । दूसरे, मेरी नव विवाहिता पत्नी विधवा हो जायगी ।

प्राणों का मोह मरते बढ़ा है । धन के लिये मनुष्य धर्म की उल्लिखता है । भोग विलास के लिये धन को तुच्छ समझता है । किन्तु निमित्त विलास पूण इन्द्र की अमरावती के लिए भी वह प्राणों का निदायर नहीं कर सकता ।

चङ्गिरि ने तलवार नीची कर कुछ देर तक सोचा । एकाएक उसने कहा—‘इस तरह नहीं एक दूसरी तरह मैं तुम्हारे सत्य की परीक्षा करता हूँ । तुम अपना दाढ़ना हाथ शिला छड़ पर रक्खो, मैं इस पर आघात करता हूँ ।’

भिन्न ने अपना हाथ शिला छड़ पर रक्खा, चङ्गिरि ने उस पर तलवार चलाई । भिन्न का हाथ वायु निर्मित हाथ की तरह अन्त रह्यो । उसके स्थान में तलवार सहित पाठक

चंडगिरि की दाहनी भुजा दूर जा गिरी । आहत और भय-भीत चंडगिरि विकट चीत्कार करता हुआ, अपने दुर्दिन और दुर्भाग्य को कोसता हुआ, शोणितारु हाथ को लेकर नगर की ओर दौड़ा गया ।

(४)

महाराजा अशोक के समीप जाकर उसने कहा—
‘भगवन्, मेरे ऊपर दया करिए, अपना यह कठोर कार्य-भार मुझ से लेकर किसी और के सिर पर रखिए ।’

अशोक ने चकित होकर कहा—‘क्यों वीर ! तुम्हारी इस विद्वलता का क्या कारण है ? हैं ! तुम्हारा यह हाथ किसने काट डाला ?’

चंडगिरि ने कहा—‘यह मेरे पाप का प्रायश्चित्त है । इस हाथ से मैंने अपने जन्म देने वाले माता पिता का वध किया, अनेक निरापराध बौद्धों का वध किया, अनेक माता-पिताओं को पुत्र हीन और पुत्रों को अनाथ किया था, यह उसी का दंड है ।’

अशोक ने अधिक आश्चर्ययुक्त होकर कहा—‘इसे कौन दंड कहता है ? किसने तुम्हें यह दंड दिया ?’

चंड०—‘उसने, जो वास्तविक दंड दाता है ।’

अशोक—‘वह कौन है ? किसने सुतसिंह को छेड़ा है—मृत्यु को जगाया है ? क्या वह अशोक के आतंक से परिचित नहीं है ? चताओ, वह कौन है ?’

चड०—ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों का पिता परमेश्वर । मैं आप से बौद्धों का बंध नहीं करूँगा । प्रत्यक्ष परमेश्वर ने प्रकट होकर चेतावनी दी है ।'

अशोक ने शासक स्तर में कहा—'हैं तुम क्या कहते हो ? ससार शूद्र से इन नास्तिक बौद्धों का नाम श्रेय करना प्रत्येक का धर्म है । उपवन की उन्नति के लिये काटों को पकड़ कर चतुर उद्यान रत्नक उनमें अग्नि स्थापित करता है, जिसमें ये काटे उड़कर पुष्प लताओं के जीवन में बाधा न बनें ।'

चड०—'किंतु कोई भी उद्यान रत्नक वसंत की कुसुमित लता को काटकर अग्नि का समर्पित नहीं करता । क्या ये बौद्ध ससार के कटक हों ? इन्होंने आर्यावत का फौन सा अनिष्ट किया है ? यही न कि ये सचित्र अहिंसा और प्रेम के परिश्रम का प्रचार करते फिरते हैं । क्या अहिंसा और प्रेम अधर्म है ? आज तक मैं सोया हुआ था, मेरी दोनों आँखें बंद थीं । मुझ पर आपका जादू चल गया । आज मैं जाग गया हूँ, मेरे अंतर के नेत्र खुल गये हैं । मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ—ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों एक ही पिता की सतान हैं । आपको कोई अधिकार नहीं कि आप बौद्धों का रक्त बहावें, उनकी धन संपत्ति लूट लें, उनके वास स्थान में आग लगा दें उनके प्राण प्रिय दारा, पुत्र आदि को उनके सम्मुख ही काटकर दो टुकड़े कर दें ।'

प्रहरी ने विनम्र होकर कहा—“देव के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है।”

अशोक ने तलवार हाथ में ली, और वह घोड़े पर चढ़ कर स्वयं बौद्ध-भिक्षु का वध करने को चले।

भिक्षु समुद्र उसी वट-वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित होकर बैठे थे। नवीन संन्यासी वह सैनिक समीप के किसी ग्राम में भिक्षा के लिए गया हुआ था। भिक्षु को देखते ही अशोक का रक्त उबलने लगा। घोड़े का एक बकुल के वृक्ष से बांध कर अशोक तलवार झनकारते हुए आगे बढ़े। भिक्षु की उस ओर पीठ थी।

अशोक ने बिना कुछ वाक्य-व्यय किए अपने अंग की समस्त शक्ति भुजा में केन्द्रित कर उस भिक्षु के ऊपर तलवार चलाई।

मगर फल क्या हुआ? भिक्षु की गर्दन छूते ही तलवार कोमल पुष्प की माला बन कर उसके कापाय शोभित वक्षःस्थल पर झूलने लगी! अशोक ने भिक्षु को देखा। उसकी दृष्टि में आश्चर्य भरा था। भिक्षु ने अशोक को देखा। उसकी दृष्टि में प्रेम था। आश्चर्य और प्रेम का सम्मिलन हुआ। उस सम्मिलन से अशोक के हृदय के भीतर एक महाक्रांति पैदा हुई। हिंसा भाव के विरुद्ध प्रेम-भाव ने शस्त्र हाथ में लिया। अधर्म को पराजित कर धर्म ने हृदय के आसन पर अधिकार जमाया।

अशोक—“एक नास्तिक के भगवान् रक्षक है ।”

चड०— निस्सन्देह ।”

अशोक— ‘यह दुर्शीलता ! यह उद्दता !”

चड०— ‘सत्य उद्दता नहीं है । मैं या आप क्या ससार की कोई शक्ति उसका बाल भी बाका नहीं कर सकता ।”

अशोक— ‘शात हो ।’

चड०—“सत्य पर परदा डालना पाप है ।”

अशोक— ‘तुम्हें शात है इसका क्या फल होगा ?”

चड०—“हा, मेरा वध । उसके लिए प्रस्तुत हूँ, मुझ वदी काजिए ।’

अशोक की आँखें लाल हो गई, भ्रुकुटि ने वकिम रूप धारण किया, ओष्ठाधर क्रोध से कापने लगे । उन्होंने प्रहरा को आशा दी—जाओ, चार सैनिकों को घुलाओ, और हमारा घोड़ा तैयार करो ।’

सैनिकों के आने पर अशोक ने उन्हें आशा दी— ‘इसका वदी करो । आज के तीसरे दिन गंगातीरस्थ सुविस्तृत मदान में पाटलिपुत्र के समस्त नर नारी एकत्र किए जायेंगे । वहीं इस राज द्रोही को प्राण दंड और समस्त जनता की शिक्षा मिलेगी ।

जो आशा —कहकर सैनिकों ने अभिवादन किया और चले गए ।

अशोक ने पुकारा—“प्रहरा, अभ्य उपास्थित है !”

प्रहरी ने विनम्र होकर कहा—“देव के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है।”

अशोक ने तलवार हाथ में ली, और वह घोड़े पर चढ़ कर स्वयं बौद्ध-भिक्षु का वध करने को चले।

भिक्षु समुद्र उसी वट-वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित होकर बैठे थे। नवीन संन्यासी वह सैनिक समीप के किसी ग्राम में भिक्षा के लिए गया हुआ था। भिक्षु को देखते ही अशोक का रक्त उबलने लगा। घोड़े का एक बकुल के वृक्ष से बांध कर अशोक तलवार भनकारते हुए आगे बढ़े। भिक्षु की उस ओर पीठ थी।

अशोक ने बिना कुछ वाक्य-व्यय किए अपने अंग की समस्त शक्ति भुजा में केन्द्रित कर उस भिक्षु के ऊपर तलवार चलाई।

मगर फल क्या हुआ? भिक्षु की गर्दन छूते ही तलवार कोमल पुष्प की माला बन कर उसके कापाय शोभित वक्ष-स्थल पर झूलने लगी! अशोक ने भिक्षु को देखा। उसकी दृष्टि में आश्चर्य भरा था। भिक्षु ने अशोक को देखा। उसकी दृष्टि में प्रेम था। आश्चर्य और प्रेम का सम्मिलन हुआ। उस सम्मिलन से अशोक के हृदय के भीतर एक महाक्रांति पैदा हुई। हिंसा भाव के विरुद्ध प्रेम-भाव ने शस्त्र हाथ में लिया। अधर्म को पराजित कर धर्म ने हृदय के आसन पर अधिकार जमाया।

समुद्र ने ध्यान भंग होने पर देखा, एक सुन्दर काति विशिष्ट, राजकीय परिधान स शोभित, यत्नवान् युवक उसके समीप, एक अपराधी की भाति विनत वदन, यत्न कर और कपित हृदय लिए खड़ा है।

भिक्षु के स्पर्श से जब जड़ अपना स्वभाव भूल गया, तो मनुष्य की उनके दर्शन से क्या दशा हुई कौन कह सकता है !

भिक्षु ने करुणा मिश्रित वाणी से कहा—‘कौन ?’

अशोक—‘मगधाधिपति—अशोक ।’

भिक्षु—‘एक भिक्षु से मगधाधिपति क्या चाहते हैं ?’

अशोक—‘एक भिक्षा ।’

भिक्षु—‘कैसी ?’

अशोक—‘मेरे हाथ निरपराध मनुष्यों के रक्त से सने हैं। मेरी आँखों में प्रायश्चित के आसू दो, जिसमें मैं अपने रक्त रंजित हाथ उन आँसूओं से धो सकूँ ।’

भिक्षु—‘जाआ यही होगा । आज के एक सप्ताह बाद तुम्हें महास्थगिर उपगुप्त क दर्शन होंगे । उनके निकट बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करना, तुम्हारे सब सताप दूर होंगे ।’

अशोक आनन्दमग्न होकर भिक्षु के चरणों को छूकर विदा होने लगे ।

भिक्षु समुद्र न धाधा देकर कहा—‘और सुनो, ठहरो । जिस बौद्ध धर्म का सधनाश करने पर तुम कटि पद्म हुए थे अब उसकी उन्नति ही तुम्हारे जीवन की सर्वोच्च साधना

होगी । यह मेरा आशीर्वाद है । आज से तुम्हारा नाम 'प्रियदर्शी' हुआ ।'

अशोक ने भिक्षु के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया । भिक्षु ने स्नेह-पुलकित हृदय से उनके मुकुट मंडित मस्तक में अपने हस्तद्वय स्थापित किए ।

भारत, चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा, सिंधल, जावा, सुमात्रा, फ़ारस, रोम, यूनान, मिश्र, अरब के आदि लोगों ने एक भाषा और एक स्वर में उच्चारण किया—'नमो बुद्धाय !'

उस ध्वनि ने मर्त्य लोक, सुर लोक और नाग लोक, तीनों को प्रकंपित कर दिया !

श्री शिवपूजनसहाय

आपका निवास-स्थान बिहार प्रान्त में है । आपकी भाषा अपने ही ढंग की निराली है । जितना हिंदी-मुहावरों का समुचित प्रयोग आप करते हैं उतना किसी दूसरे ने अब तक नहीं किया । भाषा की उत्कृष्टता के साथ-साथ अलंकार का खूब मिश्रण रहता है । अलंकारों में भी अनुप्रास का अधिक । आपको भाषा के सच्चे कलावित् कहना अत्युक्ति नहीं । भाषा-सौन्दर्य-मुग्ध होकर कभी कभी आप ध्येय विषय से ज़रा दूर रह जाते हैं, पर जो लोग किसी एक धुन के पकड़े होते हैं उनके लिये यह बात साधारण है ।

आपकी 'महिमा-महत्त्व', 'देहाती दुनियां' पुस्तकों का अच्छा आदर हुआ है । पहले आप 'बालक' का सम्पादन करते थे और उसी में आपके कई लेख भी निकलते थे । अब आप 'गंगा' के सम्पादक हैं ।



मुण्डमाल्य

आज उदयपुर के चौक में चारों ओर बड़ी चढ़ल पढ़ल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ उठा है। मालूम होता है कि किसी ने यहा के कुओं में उमग का भग घोल दी है। नवयुवकों का मूँछों में पेंछ भरी हुए है। आँखों में ललार छा गइ है। सब की पगड़ी पर देशानुराग की कनगी लगी हुए है। हर तरफ़ से वीरता की ललकार सुन पड़ती है। बाँके लडाके वीरों के कलेजे रणभेरी सुन कर चागुने होते जा रहे हैं। नगाड़ों से तो नाकों में दम हो चला है। उदयपुर की घरती घोंसे की धुधकार से डगमग कर रही है। रण रोष से भरे हुए घोड़े उनके कीचोट पर उड़ रहे हैं। मतवाले हाथी हर ओर से, काले मेघ की तरह उमड़े चले आते हैं। घंटों की आवाज से समूचा नगर गूँज रहा है। शस्त्रों की भनकार और शब्दों के शब्द से दसों दिशाएँ सरस शब्द मयी हो रही हैं। बड़े अभिमान से फहराती हुए, विजय-पताका राजपूतों की कीर्ति लता सी लहराती है। स्वच्छ

आकाश के दर्पण में अपने मनोहर मुखड़े निहारने वाले महलों की ऊँची-ऊँची अटारियों पर चारों ओर सुन्दरी-सुहागिनियों और कुमारी कन्याएँ भर-भर अंचल फूल लिये खड़ी हैं, सूरज की चमकीली किरणों की उज्ज्वल धारा से घोंप हुए आकाश में चुभने वाले कलश, महलों के मुँड़ेरों पर, मुसकरा रहे हैं। बन्दीवृन्द विशद विरुदावली बखानने में व्यस्त है।

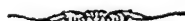
महाराणा राजसिंह के समर्थ सरदार चूड़ावतजी. आज औरंगज़ेब का दर्प दलन करने और उसके अन्धाधुन्ध अन्धेर का उचित उत्तर देने जाने वाले हैं। यद्यपि उनकी अवस्था अभी अठारह वर्षों से अधिक नहीं है, तथापि जङ्गी जोश के मोरे वे इतने फूल गये हैं कि कवच में नहीं अँटते। उनके हृदय में सामरिक उत्तेजना की लहर लहरा रही है। घोड़े पर सवार होने के लिए वे ज्यों ही हाथ में लगाम थाम कर उचकना चाहते हैं, त्यों ही अनायास उनकी दृष्टि सामने वाले महल की भँभरीदार खिड़की पर, जहाँ उनकी नवोढ़ा पत्नी खड़ी है, जा पड़ती है।

हाड़ा-वंश की सुलक्षणा, सुशीला और सुन्दरी सुकुमारी कन्या से आपका ब्याह हुए दो-चार दिनों से अधिक नहीं हुआ होगा। अभी नवोढ़ा रानी के हाथ का कंकण हाथ ही की शोभा बढ़ा रहा है। अभी चाँद बादल ही के अन्दर छिपा हुआ था; किन्तु नहीं, आज तो उदयपुर की

नाथो और व्यसनों से विरक्त होकर इस समय केवल वीरत्व धारण कीजिए । मेरा मोह-छोह छोड़ दीजिए । भारत की महिलाएँ स्वार्थ के लिये सत्य का संहार करना नहीं चाहती । आर्य महिलाओं के लिए समस्त संसार की सारी संपत्तियों से बढ़कर “सतीत्व ही अमूल्य धन है !” जिस दिन मेरे तुच्छ सौंसारिक सुखों की भोग-लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व-रत्न लुप्त जायगा, उसी दिन मेरा जातीय-गौरव अरवली-शिखर के ऊँचे मस्तक से गिर कर चकना-चूर हो जायगा । यदि नवविवाहिता उर्मिलादेवी ने वीर-शिरोमणि लक्ष्मण को सौंसारिक सुखोपभोग के लिए कर्त्तव्य-पालन से विमुख कर दिया होता तो, क्या कभी लखनलाल को अक्षय्य यश लूटने का अवसर मिलता ? वीर-बधूटी उत्तरादेवी ने यदि अभिमन्यु को भोग विलास के भयङ्कर बन्धन में जकड़ दिया होता तो, क्या वे देव-दुर्लभ गति को पाकर भारतीय क्षत्रिय-नन्दनों में अग्रगण्य होते ? मैं समझती हूँ कि याद तारा की बात मानकर वाली भी, घर के कोने में मुँह छिपा कर, डरपोक-जैसा छिपा हुआ, रह गया होता तो उसे वैसी पवित्र मृत्यु कदापि नसीब न होती । सती-शिरोमणि सीतादेवी की सतीत्व-रक्षा के लिए जरा-जर्जर जटायु ने अपनी जान तक गँवाई ज़रूर, लेकिन उसने जो कीर्ति कमाई और बधाई पाई, सो आज तक किसी कवि की कल्पना में भी नहीं समाई । वीरों का यह रक्त मांस का

अटारियों पर से सुन्दरियों ने भर-भर अञ्जली फूलों की वर्षा की, मानों स्वर्ग की मानिनी अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि की। बाजे-गाजे के शब्दों के साथ घबराता हुआ आकाश फाड़ने वाला, एक गम्भीर स्वर चारों ओर से गूँज उठा—

“धन्य मुण्डमाल्य” !!!



दिन रात झुकी रहती थी । इसी साधना ने उसकी कर्त्तव्य-शक्ति को अटूट बना दिया था । इसी कर्त्तव्य शक्ति के सहारे वह जीवन संग्राम में धीरता पूर्वक लड़ रही थी ।

मज़दूरी करके वह अपने वेटे को पढ़ा रही थी । आप भूखी रह जाती, पर दयानिधि को दिन में तीन बार अवश्य खिलाती । उसके तन पर वस्त्र है या नहीं, इसकी कोई परवाह नहीं, पर वेटे के शरीर पर कभी मैला वस्त्र न रहने देती, पुत्र की सुख-सुविधा के लिए वह जो कुछ कर सकती थी, करती थी । पर साथ ही इस बात का भी ध्यान रखती थी कि उसके दुलार का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है ? उसके अध्ययन और आचरण की निगरानी करते समय उसकी प्यार की आँखें प्रभुत्व के प्रकाश से चमकने लगती थी । उस समय वह माता से पिता बन जाती थी ।

(२)

माता की तपस्या व्यर्थ नहीं गई । दयानिधि बड़ा ही अच्छा लड़का निकला । स्कूल भर में उसके ऐसा सौम्य, सुशील और कर्त्तव्य-परायण बालक कोई था ही नहीं । उसकी गम्भीरता पर सभी मुग्ध रहते थे । उसकी अध्ययन-शीलता का अनुकरण करने के लिए उसके सहपाठी तरसते रहते थे । उसका चरित्र औरों के लिए आदर्श था । यह सब तो था, पर उसके हृदय के भीतर एक प्रकार की हलचल मची रहती थी । अब उसे अच्छा नहीं मालूम होता था कि

गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज़ हुई—रुको !

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बन्दूक छूटी, पलक मारते दोनों मुगल-सरदार जहाँ-के तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा। वे आँखें पूछ रही थी—क्या मेरे प्राण पाकर तुम निहाल हो जाओगे? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी हिंसा-वृत्ति नहीं हुई?

किन्तु यह क्या, शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नत-मस्तक खड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद-प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ !

राणा ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं। दोनों के हृदय गद्गद हो गये।

इस शुभ मुहूर्त्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प वर्षा की, नदी की कल-कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने डबडबाई हुई आँखों से ही देखा—उनका चिर-सहचर प्यारा 'चेतक' दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

